उत्तर-प्रदेश और जैनधर्म

विद्यावारिधि
डा० ज्योति प्रसाद जैन

उत्तर-प्रदेश और जैनधर्म

विद्यावारिधि

डा० ज्योति प्रसाद जैन

मूल्य १५ रु०

आमुख

भारतवर्ष का वास्तविक हृत्स्थल 'उत्तर प्रदेश' इतिहासातीत काल से ही इस महादेश की संस्कृति का केन्द्र एवं प्रेरणास्रोत और उसके इतिहास की धुरी रहता आया है। श्रमण तीर्थंकरों की जैन धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा का तो इस प्रदेश के साथ सदैव से घनिष्ठ एवं अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है। उस सम्बन्ध को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उजागर करना चिरअभीप्सित था। अतएव, प्रस्तुत कृति में उत्तर प्रदेश में जैनधर्म के उदय और विकास, उसके तीर्थस्थलों एवं सांस्कृतिक केन्द्रों, सन्तों और साहित्यकारों, पत्र-पत्रकारों, स्वतंत्रता सेनानियों, संस्थाओं, वर्तमान स्थिति और कला वैभव, आदि का निर्देश संक्षेप में करने का प्रयास किया गया है। विवक्षित विषय के पूरक रूप में कतिपय विशेषज्ञ मित्रों के लेख भी प्राप्त किये हैं, जिनसे इस विवरण की उपयोगिता में वृद्धि हुई है। आशा है, जिज्ञासु जगत में कृति का स्वागत होगा।

—ज्योति प्रसाद जैन

महावीर जयन्ति
१२-४-१९७६

क्या कहाँ है ?

६–अर्हत् महावीर (देवगढ़)

उत्तर प्रदेश में जैन धर्म
का
उदय और विकास

—०—

प्रदेश

'उत्तर प्रदेश' सर्वतन्त्र, जनतन्त्रीय गणतन्त्र भारतीय संघ का एक प्रमुख राज्य है। उत्तर में तिब्बती पठार एवं नेपाल राज्य, दक्षिण में राजस्थान एवं मध्य प्रदेश, पूर्व में बिहार राज्य और पश्चिम में हिमाचल प्रदेश, दिल्ली (केन्द्र प्रशासित क्षेत्र), हरयाणा और पंजाब राज्यों से परिसीमित लगभग नौ करोड़ जनसंख्या का यह प्रदेश लगभग तीन लाख वर्ग किलो मीटर में फैला हुआ है। जनसंख्या की दृष्टि से वह भारतीय संघ की सभी इकाइयों से बड़ा है, गृहसंख्या एवं ग्राम संख्या में भी वह सर्वप्रथम है, किन्तु नगरों की संख्या की दृष्टि से उसका दूसरा तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से चौथा स्थान है। जलवायु समशीतोष्ण है, भूमि बहुधा उर्वरा है, वन्य सम्पत्ति प्रभूत है और खनिज भी अपर्याप्त नहीं हैं। राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक ही नहीं, नृतात्त्विक, भाषयिक एवं सांस्कृतिक दृष्टियों से प्रायः एकसूत्रता है। प्राचीन भारत की दो प्रधान सांस्कृतिक धाराओं, श्रमण और ब्राह्मण का ही नहीं, उनकी प्रमुख उप-धाराओं, जैन और बौद्ध तथा वैदिक एवं पौराणिक (शैव, वैष्णवादि) का भी तथा कालान्तर में मुस्लिम और ईसाई जैसी विदेशी संस्कृतियों का भी सुखद संगमस्थल यह प्रदेश रहा है।

मस्तक पर हिमकिरीट से सुशोभित और वक्षस्थल पर पुण्यतोया भागीरथी गंगा एव सूर्यतनया यमुना तथा उन दोनों के परिवार की दसियों सहायक सरिताओं से सिंचित भारतवर्ष का यह हृतप्रदेश, भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति और सभ्यता का उद्गम स्थल, उनके विकास का क्रीड़ाक्षेत्र और भारतीय इतिहास का चिरकालीन केन्द्र बिन्दु रहा है। प्राचीन काल में इसे आर्यावर्त, ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षि देश, मध्यदेश जैसी संज्ञाएं दी गयीं। आर्यावर्त की सीमाएं पूर्वी समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्र और हिमालय से विन्ध्याचल पर्यन्त बताई गयी हैं, और उसके अंतर्गत मध्यदेश की सीमाएँ पूर्व में पारियात्र या प्रयाग से लेकर पश्चिम में विनशन अथवा कुरुक्षेत्र पर्यन्त बताई गई हैं। वैदिक आर्य सभ्यताका प्रधान केन्द्र ब्रह्मावर्त या ब्रह्मर्षि देश उक्त मध्यदेश के पश्चिमार्ध से सूचित होता था। ये मध्यदेशादि नाम किसी भौगोलिक या राजनैतिक इकाई के सूचक नहीं थे, वरन् सांस्कृतिक एकसूत्रता के द्योतक थे। मुसलमानों के भारत प्रवेश के उपरान्त उनके द्वारा प्रायः उक्त मध्यदेश ही 'हिन्दुस्तान' कहलाया। पूरे मध्यकाल में सामान्यतया पूरे उत्तर भारत के लिए और विशेषतया गंगा-यमुना अन्तर्वेद (दोआब) से व्याप्त, अब के बहुभाग ऊत्तर प्रदेश के लिए हिन्दुस्थान या हिन्दुस्तान शब्द ही प्रयुक्त होता रहा। आज भी बंगाली हो या पंजाबी अथवा दक्षिण भारतीय हो, इस प्रदेश को हिन्दुस्तान तथा इसकी भाषा और निवासियों को हिन्दुस्तानी ही प्रायः कहता है। अठारहवीं शताब्दी के मध्य के लगभग जब व्यापारी अंग्रेज भारत में अपना राज्य जमाने के लिए प्रयत्नशील हुए तो बंगाल को उन्होंने अपना केन्द्र बनाया था—कलकत्ता ही उनके गवर्नर जनरल की राजधानी थी। सन् १७६४ ई० की इलाहाबाद की संधि के परिणामस्वरूप उन्होंने जब पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुछ ज़िले दिल्ली के मुग़ल बादशाह शाहआलम और

सुन्दरी नाम की दो कन्याएं उत्पन्न हुईं। उन्होंने पुत्रियों को भी पुत्रों के समान शिक्षा दी—ब्राह्मी को अक्षर ज्ञान की शिक्षा देने के निमित्त से ही प्राचीन ब्राह्मी लिपि का आविष्कार हुआ, और सुन्दरी को अंकज्ञान दिया। इस प्रकार चिरकाल पर्यन्त आदिदेव ने प्रजा का पालन एवं पथप्रदर्शन किया।

एकदा अपनी राजसभा में नर्तकी नीलांजना की नृत्य के बीच में ही मृत्यु हो जाने पर भगवान को संसार-देह-भोगों की क्षणभंगुरता का भान-हुआ, और उन्होंने सब कुछ त्यागकर वन की राह ली। सर्व परिग्रह विमुक्त यह निर्ग्रन्थ मुनिश्रेष्ठ दुर्धर तपश्चरण द्वारा आत्मसाधन में लीन हुआ। एक स्थान पर ही कायोत्सर्ग योग से खड़े रहकर उस योगीश्वर ने छः मास की समाधि लगाई, जिसके उपरान्त वह अगले छः मास पर्यन्त यत्र-तत्र विचरते रहे, किन्तु पारणा नहीं हुआ। अन्ततः गजपुर (उ. प्र. के मेरठ जिले में हस्तिनापुर) में वहां के राजा सोमयश के अनुज कुमार श्रेयांस ने उन्हें वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन इक्षुरस का आहार दिया। अतः वह दिन 'अक्षयतृतीया' के नाम से लोक प्रसिद्ध हुआ। श्रेयांस ने दान-स्थल पर एक स्तूप का निर्माण कराया। अपने मुनिजीवन में गढ़वाल हिमालय के पर्वतशिखरों पर योगीश्वर ऋषभ ने तप किया और प्रयाग में त्रिवेणी संगम के निकट एक वटवृक्ष (जो इसीलिए अक्षयवट कहलाया) के नीचे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। तभी और वहीं उन्होंने अपना धर्मचक्र प्रवर्तन किया—इस कल्पकाल में अहिंसामयी आत्मधर्म का उपदेश लोक को सर्वप्रथम दिया। इस प्रकार धर्म के भी आदि पुरस्कर्ता प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुए। पौराणिक हिन्दू परम्परा में उन्हे विष्णु का आठवां अवतार बताया गया है, और भागवत आदि मुख्य पुराणों में उनका वर्णन जैन अनुश्रुति से प्रायः मिलता जुलता ही मिलता है। ऋग्वेदादि वेद ग्रन्थों में भी उनके स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं तथा प्रागऐतिहासिक सिन्धुघाटी सभ्यता के अवशेषों में उन दिगम्बर-कायोत्सर्ग-ध्यानस्थ योगीश्वर के अंकन से युक्त मृण्मुद्राएं मिली हैं। कई विद्वान तो शिव (महादेव, शंकर)और ऋषभदेव को अभिन्न रहा मानते हैं। सेमेटिक परम्परा के आद्यमानव 'बाबा आदम' से भी आदिपुरुष ऋषभ का ही अभिप्राय रहा हो तो आश्चर्य नहीं।

चक्रवर्ती भरत—ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र महाराज भरत सभ्य संसार के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट थे। उन्हीं के नाम पर यह महादेश भारत या भारतवर्ष कहलाया, इस विषय में जैन एवं ब्राह्मणीय पौराणिक अनुश्रुतियां एकमत हैं। भरत ने धर्मात्मा, सन्तोषी एवं ज्ञान-ध्यान रत व्यक्तियों को ब्राह्मण संज्ञा देकर चतुर्थ वर्ण की स्थापना की थी। भरत चक्रवर्ती की राजधानी अयोध्या ही थी। अन्त में राज्य त्यागकर उन्होंने भी अपने पिता तीर्थंकर के मार्ग का अनुसरण किया और मुक्ति प्राप्त की। उनके अनुज बाहुबली भी अद्भुत तपस्वी योगिराज हुए। उन्हीं के पुत्र सोमयश हस्तिनापुर के प्रथम नरेश थे, जिनसे प्राचीन क्षत्रियों का चन्द्रवंश चला—अयोध्या में स्वयं भरत के पुत्र एवं उत्तराधिकारी अर्ककीर्ति से सूर्यवंश चला। सोमयश के एक वंशज कुरु के नाम पर कुरुवंश चला और हस्तिनापुर के आस-पास का प्रदेश कुरुदेश कहलाया, तथा एक अन्य वंशज महाराज हस्तिन के समय से गजपुर का नाम हस्तिनापुर प्रसिद्ध हुआ। कुरुवंश की ही एक शाखा पांचाल कहलाई, जिसकी उत्तरी शाखा की राजधानी अहिच्छत्रा (बरेली जिले में) तथा दक्षिणी शाखा की राजधानी काम्पिल्य (फरुखाबाद जिले में) हुईं।

अन्य तीर्थंकर—ऋषभ निर्वाण के बहुत समय उपरान्त अयोध्या में ही इक्ष्वाकुवंशी-काश्यपगोत्रीय राजा जितशत्रु की रानी विजया की कुक्षि से दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ का जन्म हुआ। उनके निर्वाण के कुछ समय पश्चात इसी नगर एवं वंश में जैन अनुश्रुति के अनुसार दूसरा चक्रवर्ती सगर हुआ। तीसरें तीर्थंकर भी इसी वंश के थे, किन्तु उनका जन्म श्रावस्ती (उ. प्र. के बहराइच जिले का सहेट-महेट) में हुआ था। चोथे तीर्थंकर अभिनन्दन नाथ और पांचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ का जन्म भी अयोध्या में हुआ। छठे तीर्थंकर पद्मप्रभु का जन्म

कौशाम्बी (इलाहाबाद जिले का कोसम) में हुआ था और पभोसा नाम की निकटवर्ती पहाड़ी पर उन्होंने तपस्या की थी तथा केवलज्ञान प्राप्त किया था। सातवें तीर्थंकर सुपार्श्व का जन्म स्थान वाराणसी नगरी के भदैनी क्षेत्र से चीन्हा जाता है। मथुरा के कंकाली टीले का प्राचीन देवनिर्मित जैन स्तूप इन्हीं तीर्थंकर के उक्त नगर में पधारने की स्मृति में मूलतः निर्मित हुआ माना जाता है। आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु के जन्म स्थान चन्द्रपुरी या चन्द्रावती की पहिचान वाराणसी से लगभग २३ कि. मी. पर गंगा के किनारे स्थित तन्नाम गांव से की जाती है। नौवें तीर्थंकर पुष्पदंत अपर नाम सुविधिनाथ की जन्मभूमि काकंदी (देवरिया जिले का खुखुन्दो) है। कुछ विद्वानों ने इन तीर्थंकर का समीकरण पौराणिक महाराज ककुदि या ककुत्स्थ के साथ किया है। तीसरे से नौवें पर्यन्त सात तीर्थंकर इस प्रदेश में वैदिक धर्म और संस्कृति के उदय से पूर्व, सिन्धुघाटी सभ्यता के उत्कर्षकाल के समसामयिक रहे प्रतीत होते हैं। जैन अनुश्रुतियों से ऐसा इंगित मिलता है कि उनके उपरान्त, दशवें तीर्थंकर शीतलनाथ के समय से ब्राह्मण वैदिक संस्कृति का प्रभाव वृद्धिगत हुआ। ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ का जन्म सिंहपुरी में हुआ था, जिसकी पहिचान वाराणसी के निकट सारनाथ क्षेत्र से की जाती है। तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ का जन्म काम्पिल्य (फरुखाबाद जिले का कम्पिल) में हुआ था। इनके समय में कई अन्य शलाका पुरुष भी इस प्रदेश में हुए। चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथ का जन्म अयोध्या में हुआ, इनके समय में भी कई शलाकापुरुष हुए। पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाम कुरुवंशी थे और इनका जन्म रत्नपुरी (फैजाबाद जिले का रौनाई) में हुआ था। इनके समय में भी कई शलाकापुरुष हुए और थोड़े समय उपरान्त एक-एक करके मघवा एवं सनत्कुमार नाम के दो सूर्यवंशी चक्रवर्ती सम्राट अयोध्या में हुए। इसके पश्चात कुछ काल के लिए श्रमणधर्म एवं मुनिमार्ग का विच्छेद रहा बताया जाता है। तदनन्तर शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ नाम के तीन तीर्थंकर हस्तिनापुर (मेरठ जिले में) क्रमशः हुए। ये तीनों चन्द्रवंश की कुरुशाखा में उत्पन्न हुए थे और अपने-अपने समय में चक्रवर्ती सम्राट भी रहे थे। इनके समय में फिर से जैनधर्म का उत्कर्ष इस प्रदेश में रहा। अरनाथ के निर्वाणोपरान्त सुभौम नामक चक्रवर्ती तथा नन्दी, पुण्डरीक एवं निशुंभ नाम के अन्य शलाकापुरुष इसी प्रदेश में हुए। सुभौम के प्रसंग में परशुराम और कार्तवीर्य सहस्रबाहु के भीषण संघर्ष की जैन अनुश्रुति मिलती है। बीसवें तर्थंकर मुनिसुव्रत के तीर्थ में हुए अयोध्यापति रघुवंशी महाराज रामचन्द्र, उनके अनुज लक्ष्मण और महासती सीता आदि का जैन परम्परा में अत्यन्त सम्माननीय स्थान है। भगवान राम ने दीक्षा लेकर पद्ममुनि नाम से तपश्चर्या की, अर्हत् केवलि पद प्राप्त किया और अन्त में वह निर्वाण प्राप्त कर सिद्ध परमात्मा हुए। जैन पद्मपुराण अथवा जैन रामायणों में इन महापुरुषों के पुण्यचरित्र विस्तार के साथ वर्णित हैं। इसके कुछ समय उपरान्त हस्तिनापुर में मुनि विष्णुकुमार द्वारा बलिबंधन, सात सौ मुनियों की रक्षा एवं रक्षाबन्धन पर्व की प्रवृत्ति का प्रसंग आता है। इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ के तीर्थ में वत्सदेश की कौशाम्बी नगरी में जयसेन नाम का चक्रवर्ती सम्राट हुआ।

तीर्थंकर अरिष्टनेमि—या नेमिनाथ (२२वें तीर्थंकर) का जन्म हरिवंश की यादव शाखा में शौरिपुर में (आगरा जिले में बटेश्वर के निकट) हुआ था। उनकी जननी शिवादेवी और पिता यदुवंशी राजा शूरसेन के वंशज महाराज समुद्रविजय थे, जिनके अनुज वसुदेव अत्यन्त साहसिक एवं कामदेवोपम रूपवान थे। उनके साहसिक भ्रमणों एवं कार्यकलापों का रोचक वर्णन जैन हरिवंश पुराण में प्राप्त होता है। इन्हीं वसुदेव के पुत्र कृष्ण और बलराम थे, जो अपने समय के नारायण एवं बलभद्र संज्ञक शलाकापुरुष थे, बड़े शूरवीर, प्रतापी और विचक्षण बुद्धि थे। अपने प्रबल प्रतिद्वन्द्वी जरासंध के आतंक से त्रस्त होकर यादवगण शौरिपुर एवं मथुरा का परित्याग करके पश्चिमी समुद्रतटवर्ती द्वारिका नगरी में जा बसे थे। हस्तिनापुर के कुरुवंशी कौरव-पाण्डवों का पारस्परिक संघर्ष एवं कुरुक्षेत्र का सुप्रसिद्ध महाभारत युद्ध इसी काल की घटनाएं हैं। उस युग की राजनीति के प्रधान सूत्रधार नारायण कृष्ण ही थे। वे पाण्डवों के मित्र थे और उनकी विजय में प्रधान निमित्त हुए थे। यदि कृष्ण उस युग के

राजनीतिक एवं सामाजिक नेता थे तो उनके ताऊजात भाई अरिष्टनेमि धार्मिक एवं आध्यात्मिक नेता थे। उन्होंने मनुष्य के भोजन के लिए पशुपक्षियों के बध को एक अधार्मिक अनैतिक कृत्य और घोर पाप घोषित किया था। मांसाहार का निषेध करके और निवृत्तिरूप तप: साधना का आदर्श प्रस्तुत करके उन्होंने भारी क्रान्ति की थी तथा श्रमणधर्म पुनरुत्थान किया था। जैन परम्परा में वसुदेव, कृष्ण, बलराम, कृष्णपुत्र प्रद्युम्न, आदि को तथा पांडवों को जिनमार्ग का अनुसर्त्ता प्रतिपादित किया है। नेमिनाथ के निर्वाणोपरान्त काशी में ब्रह्मदत्त नाम का शक्तिशाली नरेश हुआ जो जैन परम्परा के बारह चक्रवर्तियों में अन्तिम था—उसकी ऐतिहासिकता भी मान्य की जाती है।

आधुनिक इतिहासकार महाभारत युद्ध के उपरान्त भारतवर्ष का नियमित इतिहास प्रारम्भ करते हैं तथा उसके पूर्वकाल के इतिहास को अनुश्रुतिगम्य इतिहास कहते हैं। उक्त अनुश्रुतिगम्य इतिहास काल में—सुदूर अस्पष्ट प्रागैतिहासिक एवं प्राग्वेदिक अतीत से लेकर महाभारत युद्ध के उपरान्त काल तक उत्तर प्रदेश में जैनधर्म एवं उसकी संस्कृति का प्राय: अविच्छिन्न प्रवाह रहता रहा, जैसा कि उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है।

तीर्थंकर पार्श्व (ईसापूर्व ८७७-७७७)—जैन परम्परा के २३वें तीर्थंकर हैं। इनका जन्म व्रात्यक्षत्रियों की नागजाति के उरगवंश में हुआ था, गोत्र काश्यप था। इनके पिता काशिनरेश अश्वसेन थे और जननी वामादेवी थीं। इनका जन्मस्थान वाराणसी का भेलूपुर क्षेत्र रहा माना जाता है। राजकुमार पार्श्व शैशवावस्था से ही अत्यन्त शान्तचित्त, दयालु, मेधावी और चिन्तनशील थे, साथ ही अतुल वीर्य-शौर्य के धनी एवं परम पराक्रमी भी थे। उनके मातुल कुशस्थलपुर 'कान्यकुब्ज-फर्रुखाबाद जिले का कन्नौज' नरेश पर जब कालयवन नामक एक प्रबल आततायी ने आक्रमण किया तो कुमार पार्श्व तुरन्त सेना लेकर उनकी सहायता के लिए गये और भीषण युद्ध करके उन्होंने शत्रु को पराजित किया तथा बन्दी बनाया। कृतज्ञ मातुल अपनी सुपुत्री का विवाह इनके साथ करना चाहता था, किन्तु इसी बीच गंगातटवर्ती एक तापसी आश्रम में उन्होंने तापसी प्रमुख द्वारा प्रज्वलित अग्नि में जलाये जाते नाग-नागिन युगल की रक्षा की, इस घटना को देखकर पार्श्व को वैराग्य हुआ और वह बालब्रह्मचारी आत्मशोधनार्थ तपश्चरण करने के लिए वन में चले गये। अपनी कठोर साधना के बीच वह एकदा हस्तिनापुर पहुंचे और वहाँ उपवास का पारणा करके गंगा के किनारे-किनारे बिजनौर जिले के उस स्थान पर पहुँचे जो बाद में 'पारसनाथ किला' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ से चलकर वह उत्तर पांचाल की राजधानी (जो कालान्तर में अहिच्छत्रा नाम से प्रसिद्ध हुई और बरेली जिले के रामनगर से चीन्ही जाती है) के निकटवर्ती भीमाटवी नामक महावन में पहुँचे। वहाँ शंवर नामक दुष्ट असुर ने उन पर भीषण उपसर्ग किये। नागराज धरणीन्द्र और यक्षेश्वरी पद्मावती ने उपसर्ग निवारण का यथाशक्य प्रयत्न किया। नागराज (अहि) ने योगिराज पार्श्व के शिर के ऊपर अपने फणों का छत्राकार मंडप बना दिया था, जिस कारण वह स्थान अहिच्छत्रा नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी समय भगवान पार्श्व को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, उनकी समवसरण सभा जुड़ी और उन्होंने अपने धर्मचक्र का प्रवर्त्तन किया।

तीर्थंकर पार्श्व की ऐतिहासिकता असन्दिग्ध है। जैन तीर्थंकरों में वह प्राय: सर्वाधिक लोकप्रिय रहे हैं। भारत वर्ष के कोने-कोने में अनगिनत मूर्त्तियाँ, मदिर एवं तीर्थस्थान उनके नाम से सम्बद्ध पाये जाते हैं। हस्तिनापुर नरेश स्वयंभू, कन्नौज के राजा रविकीर्ति आदि अनेक भूपति उनके परम भक्त थे। नाग, यक्ष, असुर आदि अनार्य देशी जातियों में, जिनका ब्राह्मणीय साहित्य में बहुधा व्रात्यक्षत्रियों के रूप में उल्लेख हुआ है, तीर्थंकर पार्श्व का प्रभाव विशेष रहा प्रतीत होता है। उत्तर प्रदेश के बाहर बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश पर उनका प्रत्यक्ष प्रभाव था। भारत की प्रश्चिमोत्तर सीमाओं को पार करके मध्य एशियाई देशों एवं यूनान पर्यन्त उनकी कीर्तिगाथा एवं विचार प्रसारित हुए लगते हैं। साथ ही, तीर्थंकर महावीर के समय तक उनकी धर्म परम्परा अविच्छिन्न चलती रही—महावीर का पितृकुल एवं मातृकुल तीर्थंकर पार्श्व के ही अनुयायी थे। अनेक पार्श्वापित्य (पार्श्व की आम्नाय

के) साधु और गृहस्थ उत्तर प्रदेश में भी यत्र-तत्र उस समय तक विद्यमान थे। महावीर द्वारा धर्मचक्र प्रवर्तन के उपरान्त वे लोग महावीर के अनुयायियों में सम्मिलित हो गये। पार्श्व द्वारा उपदेशित मार्ग का बहुधा चातुर्याम धर्म के नाम से उल्लेख हुआ है। कहा जाता है कि उन्होंने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, और अपरिग्रह पर ही विशेष बल दिया था—ब्रह्मचर्य नाम के किसी व्रत का पृथक से विधान नहीं किया था, उसे अपरिग्रह का ही अंग प्रतिपादित किया था। भगवान पार्श्व चारित्रिक नैतिकता पर ही विशेष बल देते थे और तत्कालीन जनमानस पर अपने विचारों का महत्त्व जमाने में बहुत कुछ सफल हुए थे। इसके अतिरिक्त पंचाग्नि जैसे कृश तपों और हठयोगादि की निरर्थकता एवं निर्दयता की ओर उन्होंने लोक का ध्यान आकर्षित किया। अपने समय में वह 'पुरिसदानिय' (पुरुष श्रेष्ठ) उपाधि से प्रसिद्ध हुए। वह उत्तर वैदिक काल के उस श्रमणधर्म पुनरुत्थान के सर्वमहान एवं सफल नेता थे, जिसका प्रारम्भ नेमिनाथ ने किया था और जो वर्द्धमान महावीर द्वारा निष्पन्न हुआ।

वर्द्धमान महावीर (५९९-५२७ ई० पू०)—चौबीसवें एवं अन्तिम तीर्थंकर महावीर का जन्म तो बिहार राज्य में हुए था, वहीं उनका कुमारकाल एवं तपस्वी जीवन का बहुभाग भी व्यतीत हुआ, उसी प्रदेश में उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ और वहीं उनका निर्वाण हुआ माना जाना जाता है, किन्तु अपने तपस्याकाल में भी अनेक बार तथा तीर्थंकर के रूप में धर्मोपदेशार्थ उत्तर प्रदेश में प्राय: सर्वत्र उनका विहार हुआ था। उस काल के इस प्रदेश के प्रसिद्ध नगरों वाराणसी, श्रावस्ती, कौशाम्बी, प्रयाग या पुरिमताल, मथुरा और हस्तिनापुर में वह पधारे थे। इस प्रदेश के जिन अन्य स्थानों में भगवान महावीर के विहार करने के संकेत मिलते हैं, उनमें से श्वेतांबिका की पहचान कुछ विद्वान बलरामपुर के निकटस्थ बसेदिला नामक स्थान से करते हैं और कुछ सीतामढ़ी से। इसी प्रकार आलभिका की पहचान उन्नाव जिले के नवलगाँव अथवा इटावा जिले के ऐरवा नामक ग्राम से की जाती है। विसाखा की पहचान कुछ विद्वान लखनऊ से करते हैं। कयंगला श्रावस्ती के निकट स्थित था और नंगला भी कोसल प्रदेश में ही था तथा हलिद्दुग कोलियगण की राजधानी रामनगर के निकट स्थित था। भोगपुर देवरिया जिले में कुशिनगर के निकट रहा प्रतीत होता है और कुछ विद्वानों की तो यह भी धारणा है कि भगवान महावीर का निर्वाणस्थल (पावा) बिहार में न होकर देवरिया जिले का सठियांवडिह-फाजिलनगर है, जिसे इधर कुछ समय से पावानगर नाम दे दिया गया गया है। इनके अतिरिक्त, महावीर के भ्रमण सम्बन्धी अनुश्रुतियों में लिखित उत्तर वाचाला और दक्षिण वाचाला से क्रमश: उत्तर पांचाल (राजधानी अहिच्छत्रा) और दक्षिण पांचाल (राजधानी कम्पिला) से तथा कनखल आश्रम से हरिद्वार के निकट स्थित कन्खल से अभिप्राय रहा हो सकता है। अनुश्रुतियों में प्राप्त नामों में अनेक ऐसे भी हैं, जिनकी पहचान नहीं हो पाई है। जिनका उल्लेख नहीं हुआ किन्तु जहाँ महावीर पधारे थे, ऐसे भी स्थान रहे हो सकते हैं।

भगवान महावीर के समय में वर्तमान उत्तर प्रदेश काशि, कोसल, वत्स, चेदि, कुरु, पांचाल और शूरसेन नामके सात महाजनपदों या राज्यों में विभाजित था, जिनके अतिरिक्त शाक्य, मल्ल, मोरिय, कोलिय, लिच्छवि आदि जातियों के कई गणतन्त्र तथा अन्य कुछ छोटे-छोटे राज्य भी थे। उक्त सभी जनपदों में भगवान ने विहार करके धर्मोपदेश दिया था। जनसामान्य में से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि प्राय: सभी वर्णों एवं जातियों के अनगिनत स्त्री-पुरुष, अनेक विशिष्टजन, कई राज परिवारों के व्यक्ति तथा स्वयं कई राजे-महाराजे तीर्थंकर महावीर के भक्त हुए। इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं वत्स (कौशाम्बी) नरेश शतानीक और उसकी पट्टराणी मृगावती जो पति की मृत्यु के उपरान्त पुत्र उदयन की स्थिति राज्यसिंहासन पर सुदृढ़ करके साध्वी बन गई थी और महावीर के आर्यिका संघ में सम्मिलित हो गयी थी। उसकी ननद, राजकुमारी जयन्ती बड़ी विदुषी और महावीर की परम-भक्त थी। वत्सराज उदयन और रानी वासवदत्ता भी तीर्थंकर के भक्त थे। श्रावस्ती नरेश कोसलाधिपति प्रसेन-जित एवं उनकी पट्टराणी मल्लिकादेवी महावीर और बुद्ध का ही नहीं, मक्खलि गोशाल आदि अन्य तत्कालीन श्रमण

एवं ब्रह्मण धर्माचार्यों का समान रूप से आदर करते थे। उन्होंने श्रावस्ती में विभिन्न धर्मों की तत्त्वचर्चा के लिए एक विशाल सभाभवन भी बनवाया था। वाराणसी के राजा जितशत्रु, राजपुत्री मुण्डिका, कपिलवस्तु के शाक्य बप्प (गौतम बुद्ध के चाचा), मथुरा नरेश उदितोदय एवं अवन्तिपुत्र तथा उनका राज्य सेठ, पांचाल नरेश जय, हस्तिनापुर के नृप शिवराज और नगरसेठ पोत्तलि, पलाशपुर के राजा विजयसेन और राजकुमार ऐमत्त, इत्यादि महावीर भक्त थे। महावीर के दस प्रसिद्ध गृहस्थ उपासकों में पलाशपुर का कोट्याधीश कुंभकार शब्दालपुत्र, जो वर्ण से शूद्र था, व उसकी पत्नी अग्निमित्रा, वाराणसी का चौबीस कोटि मुद्राओं का धनी सेठ चूलिनीपिता और उसकी पत्नि श्यामा, काशि का ही श्रेष्ठि सुरादेव व उसकी पत्नी धन्या, आलंभिका का चुल्लशतक व पत्नी बहुला, काम्पिल्य का गृहपति कुण्डकोलिक व उसकी भार्या पुष्पा, और श्रावस्ती के सेठ सालिहिपिता एवं नन्दिनीपिता अपनी-अपनी पत्नियों अश्विनी एवं फाल्गुणी सहित, परिगणित हैं। श्रावस्ती का धनाधीश मिगार या अनाथपिण्डक भी, जिसकी बुद्धभक्त पुत्रवधु विशाखा ने प्रसिद्ध जेतवन विहार बनवाया था, महावीर का अनुयायी था।

अन्तिम केवलि जम्बूस्वामि ने वीर निर्वाण संवत् ६२ (ई. पू. ४६५) में मथुरा नगर के चौरासी नामक स्थान पर निर्वाण लाभ किया था। मथुरा में ही उनके द्वारा मुनिधर्म में दीक्षित दस्युराज विद्युच्चर और उसके पाँच सौ साथियों ने तपस्या करके सद्गति प्राप्त की थी, जिनके स्मारक रूप से ५०१ स्तूप वहां निर्मित हुए थे, ऐसी अनुश्रुति है।

महावीर निर्वाणोपरान्त—प्राचीन युग

ईसापूर्व ५वीं शती के मध्य के लगभग से ई. पू. २री शती के प्राय: प्रारम्भ तक उत्तर प्रदेश पर क्रमश: मगध के नन्द वंशी नरेशों और मौर्य सम्राटों का आधिपत्य रहा। इन दोनों वंशों के अधिकांश राजे जैनधर्मानुयायी थे अथवा जैनधर्म के प्रति अत्यन्त सहिष्णु थे। अतएव प्रदेश में जैनधर्म फलता फूलता रहा। अशोक के शासनकाल में बौद्धधर्म का प्रभाव एवं प्रसार बहुत बढ़ा अनुमान किया जाता है, किन्तु जैनधर्म को विशेष क्षति नहीं पहुँची। स्वयं अशोक के शिलालेखों से स्पष्ट है कि वह निर्ग्रन्थों (जैनों) का आदर करता था और जीवहिंसा निषेध एवं मांसाहार त्याग के उनके सिद्धान्तों का स्वयं भी पालन करता था तथा अपनी प्रजा को भी उनका पालन करने की प्रेरणा देता था। कुछ विद्वानों का तो यह मत है कि अशोक कम से कम अपने जीवन के पूर्वार्ध में तो जैन ही रहा था। अशोक के उत्तराधिकारी सम्प्रति की गणना तो आदर्श जैन नरेशों में है। उसने अनेक स्थानों में अनगिनत जैन मंदिर बनवाये कहे जाते हैं।

नन्द-मौर्य युग में जैन इतिहास की विशेष महत्वपूर्ण घटना द्वादशवर्षीय भीषण दुष्काल के कारण जैन मुनियों के बहुभाग का दक्षिण पक्ष की ओर विहार कर जाना था।

मौर्यवंश के उपरान्त मगध में क्रमश: शुंगों और कण्वों का शासन रहा, जिन्होंने ब्राह्मण धर्म पुनरुत्थान के लिए अपूर्व उद्योग किया, और परिणामस्वरूप जैन, बौद्धादि श्रमण धर्मों को हानि भी पहुंची। किन्तु उत्तर प्रदेश के बहुभाग पर उनका अधिकार नाम मात्र का ही रहा प्रतीत होता है। कौशाम्बी, अहिच्छत्रा, मथुरा आदि में स्थानीय राज्यवंश, जो बहुधा 'मित्रवंश' कहलाते हैं, स्थापित हुए। इनमें परस्पर सम्बन्ध भी थे और इन प्राय: सभी राज्यों के मित्रवंशी राजे जैनधर्म के प्रति आदर भाव रखते थे। मथुरा के राजा पूतिमुख की एक रानी बौद्ध थी और दूसरी जैन, जिन्हें अपना-अपना नेता बनाकर बौद्धों और जैनों के बीच मथुरा के प्राचीन देवनिर्मित स्तूप के अधिकार को लेकर झगड़ा चला। उसका निर्णय अन्तत: जैनों के पक्ष में हुआ। अहिच्छत्रा के महाराज आषाढ़सेन ने अपने भानजे कौशाम्बी नरेश बृहस्पतिमित्र के राज्य में स्थित तीर्थंकर पद्मप्रभु की तप-ज्ञान भूमि

पभोसा (प्रभासगिरि) पर जैन मुनियों के लिए गुफाएँ निर्माण कराई थीं, जैसाकि वहां से प्राप्त उसके शिलालेखों से पता चलता है।

ईसापूर्व प्रथमशती के मध्य के लगभग से लेकर प्राय एक शताब्दी तक मथुरा में शक क्षत्रपों का अधिकार रहा और तदनन्तर अगले लगभग दो सौ वर्ष तक कुषाण सम्राटों का शासन रहा। मथुरा के इन विदेशी शासकों का, कम से कम कुषाणों का तो प्राय: पूरे उत्तर प्रदेश पर अधिकार था। ये शासक सर्वधर्मसमभावी थे और जैनधर्म के प्रति पर्याप्त सहिष्णु रहे। मगध (बिहार) से जैन मुनियों का दक्षिणापथ की ओर सामूहिक विहार (४ थी शती ई० पू० के मध्य के लगभग) हो जाने के उपरान्त उत्तर भारत में मथुरा जैनधर्म का प्रमुख केन्द्र बन चला और मित्र-शक-कुषाण काल में मथुरा का जैनसंघ बड़ा सुगठित, विस्तृत एवं प्रभावशाली था। मथुरा के कंकाली टीले से जिस प्राचीन देवनिर्मित जैन स्तूप के अवशेष पुरातात्त्विक उत्खनन में प्राप्त हुए हैं, उसी के चारों ओर एक विशाल जैन संस्थान विकसित हो गया था जहां अनेक जैन साधु एवं साध्वियां निवास करते थे। काष्ठा, उच्चनगर या वरण (वर्तमान बुलन्दशहर), कोल, हस्तिनापुर, वज्रनगरी, संकिसा आदि में उसकी शाखाएँ स्थापित थीं। संभवतया मथुरा के जैनों की प्रार्थना पर ही कलिंग के सुप्रसिद्ध जैन सम्राट खारवेल ने इतनी दूर आकर यवन राज दिमित्र को मथुरा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश से निकाल भगाया था। उस सम्राट द्वारा कलिंग में आयोजित महामुनि सम्मेलन में भी मथुरा के जैनमुनि सम्मिलित हुए थे, और उन्होंने वह 'सरस्वती आन्दोलन' चलाया था जिसके फलस्वरूप जैनसंघ में श्रुतागम के लिपिबद्ध करने की तथा पुस्तक साहित्य के प्रणयन की प्रवृत्ति शुरू हुई। मथुरा के इन जैन साधुओं की एक विशेषता यह थीं कि उन्होंने एक दूसरे से कटकर दूर होती हुई दक्षिणी एवं पश्चिमी शाखाओं से, जो कालान्तर में क्रमश: दिगम्बर और श्वेताम्बर नामों से प्रसिद्ध हुईं, स्वयं को पृथक रक्खा तथा उन दोनों के समन्वय का ही प्रयत्न किया। वस्तुत:, मथुरा के तत्कालीन जैन गृहस्थ और साधु अपेक्षाकृत कहीं अधिक उदार और विशाल दृष्टि वाले थे। यही कारण है कि विभिन्न वर्णों और जातियों के भारतीय ही नहीं, अनेक यवन, शक, पह्लव, कुषाण आदि विदेशी स्त्री पुरुषों ने भी जैनधर्म अङ्गीकार किया था।

शक महाक्षत्रप शोडास (ई० पू० प्रथम शती) के शासनकाल में मथुरा में प्रसिद्ध जैन सिंहध्वज (तीर्थंकर महावीर का प्रतीक) स्थापित हुआ, श्रमण महारक्षित के शिष्य वात्सीपुत्र श्रावक उत्तरदासक ने जिनेन्द्र के प्रासाद का तोरण निर्माण कराया, हारीतिपुत्र पाल की भार्या श्रमण श्राविका कौत्सी अमोहिनी ने अपने पुत्रों पालघोष, प्रोस्थघोष एवं धनघोष के सहयोग से अर्हत् वर्धमान के नमस्कारपूर्वक आर्यावती (भगवान की माता) की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की, तथा गणिका लवणशोभिका ने अपनी माता, बहनों, पुत्रियों, पुत्रों तथा अन्य सर्व परिजनों के साथ श्रेष्ठियों की निगम के अर्हतायतन (जिनमन्दिर) में वर्धमान भगवान की पूजा के लिए वेदीग्रह, पूजामंडप, प्रपा, शिलापट्ट आदि निर्माण कराकर समर्पित किये थे। नगर की यह प्रमुख गणिका भी श्रमण-श्राविका थी। एक शिलालेख के अनुसार जिस कौशिकी शिवमित्रा ने अर्हतपूजार्थ मथुरा में एक आयागपट्ट प्रतिष्ठापित किया था, उसका पति वीर गौतीपुत्र (गौप्तीपुत्र) पोठय (पह्लव या पार्थियन) और शक लोगों के लिए काल-व्याल (कालानाग या साक्षात काल) था। इस गौप्तिपुत्र वीर इन्द्रपाल ने स्वयं भी एक जिन प्रतिमा प्रतिष्ठापित की थी। ऐसा लगता है कि इसी पराक्रमीवीर को प्रथमशती ईस्वी में मथुरा में शक क्षत्रयों की सत्ता समाप्त कराने का तथा पुराने अथवा एक नवीन राज्यवंश की स्थापना का श्रेय है। इस काल के अन्य शिलालेखों में श्राविका धर्मघोषा, बलहस्तिनी, फल्गुयश नर्त्तक की भार्या शिवयशा, मथुरावासी लवाडनामक एक विदेशी की भार्या आदि के धार्मिक निर्माणों का उल्लेख है। मथुरा से प्राप्त क्षत्रपकालीन शिलालेखों में जैन शिलालेखों की संख्या अन्य सबसे

अधिक है। इस काल में जैनाचार्य लोहार्य, शिवार्य, स्वामीकुमार, विमलसूरि आदि की इस प्रदेश के साथ अल्पाधिक रूप में सम्बद्ध होने की सम्भावना है।

कुषाण सम्राटों के शासनकाल (लगभग ७५-२५० ई०) में तो इस प्रदेश में, विशेषकर मथुरा जनपद में जैनधर्म पर्याप्त उन्नत एवं प्राणवान रहा, जैसा कि उस काल के साधिक एक सौ शिलालेखों से प्रकट है। इन अभिलेखों में साधु-साध्वियों के नामों के अतिरिक्त कनिष्क, हुविष्क, वशिष्क, वासुदेव आदि कुषाण सम्राटों के तथा सैकड़ों धर्म भक्त श्रावकों एवं धर्मप्राण महिलाओं के नाम प्राप्त होते हैं। विविध प्रकार के धर्मकार्य, निर्माण एवं दान पूजादि करने वाले उक्त स्त्री-पुरुषों में विभिन्न जातियों, वर्गों एवं व्यवसायों से सम्बन्धित व्यक्तियों के नाम हैं, जिनमें कई एक यवन, शक, पह्लव आदि विदेशी भी हैं। श्रेष्ठि, मानिकर (जौहरी), हैरण्यक (स्वर्णकार या सर्राफ), काष्ठवणिक, लोहवणिक, लोहिककारुक, गन्धिक, रंगरेज, वणिक, सार्थवाह, ग्रामिक, गोष्ठिक, नर्त्तक, पुजारी, माली, शस्त्रोपजीवि आदि विभिन्न व्यवसायों में रत स्त्री-पुरुषों के नाम उस काल में जैनधर्म की व्यापकता के सूचक हैं। मथुरा आदि में ही ईस्वी सन् के प्रारम्भ के लगभग जैन संघ संभवतया सर्वप्रथम गण-कुल-शाखा आदि में व्यवस्थित हुआ—कम से कम उसके पूर्व वैसा होने के कोई सुनिश्चित सामयिक प्रमाण नहीं हैं। यह भी स्पष्ट है कि ईस्वी सन् के प्रारम्भ से पूर्व ही उत्तर प्रदेश के मथुरा आदि नगरों में जैन स्तूप, मन्दिर, जैन सांस्कृतिक प्रतीकों के अंकन से युक्त कलापूर्ण आयागपट, चौबीसों तीर्थंकरों में से प्रायः सभी की खड्गासन या पद्मासन दिगम्बर प्रतिमाएं, आर्यावती, सरस्वती आदि की मूर्तियां, कई जैन पौराणिक दृष्यों के अंकन आदि निर्मित एवं 'सर्व सत्त्वांनां हिताय-सर्व सत्त्वानां सुखाय' प्रतिष्ठापित होने लगे थे।

तीसरीं शती ई० के मध्य के लगभग कुषाणों का पराभव होने पर मथुरा, कौशाम्बी, अहिच्छत्रा आदि में स्थानीय मित्रवंशी राज्य, कई प्रदेशों में यौधेय, मद्रक, अर्जुनायन आदि युद्धोपजीवि गणराज्य और अनेक क्षेत्रों में भारशिव नागों की स्वतन्त्र सत्ताएं स्थापित हुई। इनमें से शायद कोई भी जैनधर्म के अनुयायी नहीं थे, किन्तु धर्म के विषय में प्रायः सभी उदार और सहिष्णु थे। मथुरा, कोशाम्वी, अहिच्छत्रा वाराणसी, हस्तिनापुर आदि जैन धर्म के पवित्र तीर्थ उसके अच्छे केन्द्र अब भी चलते रहे। दूसरी शती ई० के उत्तरार्ध के लगभग हुए दिग्गज जैनाचार्य समन्तभद्र स्वामी के उत्तर प्रदेश की वाराणसी आदि में दक्षिण देश से आकर शास्त्रार्थ करने के संकेत मिलते हैं। यतिवृषभाचार्य भी संभव है कि इस प्रदेश से सम्बद्ध रहे हों। अयोध्या केइक्ष्वाकु वंशी राजा गंगदत्त का एक वंशज विष्णुगुप्त, अच्छित्रा का राजा था। उसके वंशज पद्मनाभ के दो पुत्र, दद्दिग और माधव, दक्षिण देश चले गये थे, जहाँ २री शती ई० के अन्त के लगभग जैनाचार्य सिंहनंदि की प्रेरणा और सहायता से उन्होंने कर्णाटक के प्रसिद्ध गंगराज्य की स्थापना की थी।

गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल—३२० ई० के लगभग गुप्त राज्य की स्थापना हुई और कुछ ही दशकों में उसने एक शक्तिशाली साम्राज्य का रूप ले लिया, जो छठी शताब्दी के प्रायः मध्य पर्यन्त उत्तर एवं मध्य भारत की प्रायः सर्वोपरि राज्य सत्ता रहा। यह युग भारतीय साहित्य और कला का स्वर्णयुग माना जाता है। देश समृद्ध और सुखी था। संभवतया रामगुप्त (३७५-३७९ ई०) को छोड़कर प्रायः सभी गुप्त नरेश वैष्णव धर्मानुयायी परम भागवत थे और पौराणिक हिन्दू धर्म के विकास के साधक तथा उसके प्रबल पोषक थे। जैनधर्म के प्रति वे असहिष्णु नहीं थे, किन्तु उसे राज्याश्रय भी प्राप्त नहीं था। तथापि प्रदेश में अनेक पुराने जैन केन्द्र फलते फूलते रहे। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही जैन सम्प्रदायों के साधुओं का प्रदेश में सर्वत्र स्वच्छन्द विहार था।

चीनी यात्री फाह्यान, (४०९-४१३ ई०) के यात्रा वतान्त से तो प्रकट है कि उस काल में जनसामान्य पर खान-पान विषयक जैनी अहिंसा का पूरा प्रभाव था—मद्य-मांस सेवन का प्रचार अत्यन्त विरल था। संभवतया गुप्त संवत् ५७ (३७६ ई०) में मथुरा में एक जिन प्रतिमा प्रतष्ठित हुई थी। वहीं

एक अन्य जिनप्रतिमा कोटेयगण की वेर शाखा के किसी साधु के उपदेश से वर्ष ९७ (४१६ ई०) में, तथा एक अन्य वर्ष ११३ (४३२ ई०) में सम्राट कुमारगुप्त के शासन काल में कोट्टिय गण की विद्याधरी शाखा के दतिलाचार्य के उपदेश से भट्टिभव की पुत्री और प्रातारिक गृहमित्रपालित की कुटुम्बिनी (भार्या) शामाढ्या ने प्रतिष्ठित कराई थी। गुप्त सं० १४१ (४६० ई०) में सम्राट स्कंदगुप्त के शासनकाल में ब्राह्मण सोमिल के प्रपौत्र, महात्मा भट्टिसोम के पौत्र यशस्वी रुद्रसोम के पुत्र, संसार चक्र से भयभीत पुण्यात्मा भद्र ने ककुभ (गोरखपुर जिले का कहाऊँ) नामक स्थान में पञ्च-जिनेन्द्र स्तंभ की स्थापना की थी। इसी पांचवीं शती ई० के जैन शिलालेख राजगृह (विहार) की सोन भंडार गुफा (लगभग ४०० ई०) में, विदिशा (मध्यप्रदेश) की उदयगिरि गुफा (४२५ ई०) में और पहाड़पुर (बंगाल) के ताम्रपत्र (४७९ ई०), आदि में प्राप्त हुए हैं। पहाड़पुर ताम्रपत्र से तो विदित होता है कि इस काल में काशि निवासी निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य गुहनन्दि विशेष प्रभावशाली थे—उत्तर प्रदेश ही नहीं, बिहार और बंगाल में भी उनके शिष्य-प्रशिष्य फैले थे। वह स्वयं पंचस्तूप निकाय के साधु थे। इस जैन संघ का निकास संभवतया हस्तिनापुर (जहां प्राचीन पांच जैन स्तूप थे) अथवा मथुरा से हुआ था और कालान्तर में इसका विस्तार दक्षिण भारत के महाराष्ट्र, कर्णाटक एव तमिल प्रदेशों तक हुआ था। गुप्तकाल के जैन मंदिरों, मूर्तियों आदि के भाजन शेष उत्तर प्रदेश में मथुरा, हस्तिनापुर, देवगढ़, कहाऊँ, श्रावस्ती, कौशाम्बी, वाराणसी, अहिछत्रा आदि में प्राप्त हुए हैं, जो उस काल में भी प्रसिद्ध केन्द्र रहे। सुप्रसिद्ध जैन तार्किक आचार्य सिद्धसेन के भी इस प्रदेश में रहे होने की सम्भावना है।

गुप्तत्तोर काल में कन्नौज के प्रतापी सम्राट हर्षवर्धन (६०६-६४७ ई०) का विशेष झुकाव यद्यपि बौद्ध धर्म की ओर था, वह प्रायः सर्वधर्म समदर्शी, विद्वानों का आदर करने वाला, उदार और दानी नरेश था। वह राजधानी कन्नौज तथा प्रयाग में जो आवधिक विद्वत्सम्मेलन किया करता था उनमें विभिन्न धर्मों के साधुओं एवं विद्वानों को आमन्त्रित करता था, जिनमें निर्ग्रन्थ (जैन) साधु और विद्वान भी होते थे। उन सबको वह दान-मान से सन्तुष्ट करता था। उसके शासनकाल में चीनी बौद्ध यात्री ह्वेनसांग इस प्रदेश में आया था, और उसके यात्रा वृत्तान्त से पता चलता है कि प्रदेश के विभिन्न भागों में जैन साधु, उनके अनुयायी और देवायतन उस काल में विद्यमान थे। वीरदेव क्षपणक नामक जैन विद्वान हर्ष के राजकवि बाणभट्ट का मित्र था और सुप्रसिद्ध भक्तामर स्तोत्र के रचयिता जैनाचार्य मानतुंग भी इसी काल और प्रदेश में हुए माने जाते हैं।

८वीं शती ई० के पूर्वार्ध में कन्नौज के प्रतापी विजेता एवं विद्यारसिक नरेश यशोवर्मन का राजकवि और प्राकृत काव्य 'गौड़वहो' का रचियता वाक्पति जैन था। उसी शती के उत्तरार्ध में कन्नौज के आयुधबंशी नरेशों में से इन्द्रायुध का उल्लेख पुन्नाटसंघी जैनाचार्य जिनसेन ने अपनी हरिवंश पुराण (७८३ ई०) में किया है। वह स्वयं भी उत्तर प्रदेश में विचरे प्रतीत होते हैं। इसी समय के लगभग अपभ्रंश के प्रसिद्ध महाकवि स्वयंभू हुए जिन्होंने अपभ्रंश भाषा में जैन रामायण तथा अन्य काव्यों की रचना की थी। वह मूलतः उत्तर प्रदेश, सम्भवतया कन्नौज के ही निवासी थे और वहां से चलकर दक्षिणा पथ में राष्ट्रकूट सम्राटों की राजधानी में जा बसे थे। कर्णाटक के सान्तर आदि कई सामन्त वंशों का पूर्वपुरुष जिनदत्तराय (लगभग ८०० ई०) भी मूलतः उत्तर प्रदेश के मथुरा नगर का निवासी था। मथुरा के उग्रवंशी नरेश राहु उपनाम मथुरा-भुजंग का वंशज सहकार एक दुष्ट प्रकृति का राजा था, जो अन्ततः नरमांसभक्षी हो गया था। उसकी धर्मात्मा जैन पत्नी से जिनदत्तराय का जन्म हुआ था, जिसे अपने पिता के आचरण पर बड़ी ग्लानि हुई। अतएव अपनी माता की सहमति से वह दक्षिण देश चला गया जहां उसने बड़ा पराक्रम दिखाया और कनकपुर अपरनाम पोम्बुर्च्चपुर (हुमच्च) में अपने राज्य की स्थापना की। जिनदत्तराय और उसके वंशज अपने नाम के साथ 'मथुराधीश्वर' विरुद का प्रयोग चिरकाल तक करते रहे। कालान्तर में इस बंश की कई शाखाएं-प्रशाखाएं हुईं।

कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार—इस वंश का मूल स्थान मारवाड़ का भिन्नमाल (श्रीमाल) नगर था, और उसके नागभट प्रथम, कक्कुक, वत्सराज (७७५-८००ई०) आदि प्रारम्भिक राजे जैनधर्म के अनुयायी थे। 'रणहस्ति', 'परभट-भृकुटि-भंजक' आदि विरुदधारी वत्सराज ही कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य का संस्थापक था और प्राय: पूरे उत्तर प्रदेश पर उसका शासन था। वह जैनधर्म का समर्थक एवं पोषक था। जैनयति बप्पभट्टिसूरि का वह बड़ा सम्मान करता था। जिनसेन ने हरिवंश में और उद्योतन सूरि ने कुवलयमाला में उसका उल्लेख किया है। अपने साम्राज्य के कई स्थानों में उसने जिनमंदिर और मूर्त्तियाँ स्थापित कराई थीं। कहा जाता है कि स्वयं राजधानी कन्नौज में उसने एक सौ हाथ ऊँचा भव्य जिनमंदिर बनवाया था, जिसमें भगवान महावीर की स्वर्णमयी प्रतिमा प्रतिष्ठापित की थी। वत्सराज का पुत्र एवं उत्तराधिकारी नागभट द्वितीय नागावलोक 'आम' (८००-८३३ ई०) भी बड़ा प्रतापी, विजेता और जैनधर्म का भारी प्रश्रयदाता था। जैन साहित्य एवं अनुश्रुतियों में उसकी प्रभूत प्रशंसा पाई जाती है। आचार्य बप्पभट्टिसूरि उसके गुरु रहे बताये जाते हैं। अनेक विद्वानों के अनुसार बप्पभट्टिचरित्र में उल्लिखित ग्वालियर नरेश 'आम' यह गुर्जर-प्रतिहार नागभट द्वि० ही था; कुछ अन्य विद्वान कन्नौज नरेश यशोवर्मन के पुत्र एवं उत्तराधिकारी के साथ उक्त 'आम' का समीकरण करते हैं। प्रभावकचरित्र के अनुसार इस नरेश की मृत्यु ८३३ ई० में गंगा में जलसमाधि द्वारा हुई थी। मथुरा के प्राचीन 'देवनिर्मित' जैन स्तूप का जीर्णोद्धार भी इसी के समय में हुआ बताया जाता है। यह धर्मात्मा राजा जिनेन्द्रदेव की भाँति विष्णु, शिव, सूर्य और भगवती का भी उपासक था। नागभट द्वि. का पौत्र एवं उत्तराधिकारी मिहिर भोज (८३६-८८५ ई०) कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार वंश का सर्वमहान नरेश था। अपनी कुलदेवी भगवती का वह भक्त था, किन्तु बड़ा उदार और सहिष्णु था और जैनधर्म का भी प्रश्रयदाता था। इस काल में प्रदेश में जैनधर्म की सन्तोषजनक स्थिति थी। सन् ८६२ ई० में इस परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोजदेव के शासनकाल में उसके महासामन्त विष्णुराम के प्रश्रय में लुअच्छगिरि (ललितपुर जिले के देवगढ़) में आचार्य कमलदेव के शिष्य श्रीदेव ने श्रावक बाजू और गंगा नामक दो भाइयों द्वारा भगवान शान्तिनाथ के प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार कराके उसके सन्मुख कलापूर्ण मुखमंडप तथा सुन्दर मानस्तंभ निर्मापित एवं प्रतिष्ठापित कराया था। इन धर्मात्मा भ्रातृद्वय की उपाधि 'गोष्ठिक' थी, जिससे लगता है कि वे किसी व्यापारिक निगम के सम्भ्रान्त पदाधिकारी थे और उक्त शान्तिनाथ जिनालय के ट्रस्टी थे। भोज का एक वंशज महेन्द्रपाल द्वितीय (९४०-९४६ ई०) भी भारी विद्या प्रेमी, एवं उदार था। उसके लिए जैनाचार्य सोमदेव ने राजनीतिशास्त्र के अपने महान ग्रन्थों, नीतिवाक्यामृत एवं महेन्द्र-मातलि-संजल्प की रचना की थी, ऐसा विश्वास करने के कारण हैं।

११वीं शती के प्रथम पाद के अन्त के लगभग महमूद गजनवी के आक्रमणों ने गुर्जर-प्रतिहारों की सत्ता पर मारणान्तिक आघात किया। कुछ दशकों के उपरान्त कन्नौज में गाहडवाल रजपूतों की सत्ता स्थापित हुई, जिसके अंतिम राजा जयचंद को व उसके राज्य को १२वीं शती के अन्त के लगभग मुहम्मदगोरी ने समाप्त कर दिया। इस काल में उत्तर प्रदेश मुख्यतया कन्नौज-वाराणसी के गाहडवालों, महोबा के चन्देलों और दिल्ली के तोमरों तथा उनके उपरान्त चौहानों के बीच बँटा रहा। अनेक छोटी-छोटी राज्यसत्ताएं भी थीं। ये सब छोटे-बड़े राजे परस्पर नित्य लड़ते-भिड़ते रहते और अपनी शक्ति का ह्रास करते रहते थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमान आक्रमणकारी उनका दमन करके सहज ही इस प्रदेश पर अधिकार करने में सफल हो गये।

९वीं-१०वीं शताब्दी में ही मथुरा आदि में दिगम्बर और श्वेताम्बर उभय सम्प्रदायों के पृथक-पृथक मंदिर सर्वप्रथम बनने प्रारम्भ हुए। दोनों के ही साधुओं ने अपने-अपने माथुर संघ या माथुरगच्छ भी गठित किये। दिगम्बर परम्परा का माथुर संघ और काष्ठासंघ, जिसकी एक प्रमुख शाखा माथुरगच्छ तथा एक दूसरी नदीतटगच्छ थी, इसी काल में उदय में आये। श्वेताम्बर माथुर संघ के सर्वप्रथम उल्लेख भी मथुरा से प्राप्त ९८१ ई० और

१०७७ ई० के प्रतिमालेखों में ही मिलते हैं। उक्त दोनों प्रतिमाओं के अतिरिक्त १०वीं शती में एक पार्श्व प्रतिमा, १००६ ई० में एक तीर्थंकर प्रतिमा, १०१४ में पार्श्वप्रतिमा, १०२३ में एक वर्धमान चतुर्बिंब तथा एक अन्य प्रतिमा सर्वतोभद्रिका, १०४७ में नेमिनाथ प्रतिमा, ११५० में आदिनाथ प्रतिमा, आदि के मथुरा, आगरा, नौगाव आदि में निर्मित एवं प्रतिष्ठित होने के उल्लेख मिलते हैं।

लगभग ८३० से १३१० ई० पर्यन्त उत्तर प्रदेश के बुन्देलखंड भूभाग (झांसी, ललितपुर, बांदा, हमीरपुर और जालौन जिलों) पर चन्देलवंशी नरेशों का शासन रहा। उनकी प्रारम्भिक राजधानियाँ, जुझौती और खजुराहो, तो मध्यप्रदेश में हैं, किन्तु परवर्ती राजधानियाँ, कालिंजर और महोबा, उत्तर प्रदेश में ही स्थित थीं। चन्देलनरेश प्राय: सब शिवभक्त थे और मनिया उनकी कुलदेवी थी, तथापि वे सर्वधर्म सहिष्णु थे और उनके राज्य में जैनधर्म को पर्याप्त प्रश्रय प्राप्त था। उनके राज्य के वर्तमान में मध्यप्रदेश में स्थित खजुराहो, अजयगढ़, चन्देरी, ग्यारसपुर, विलासपुर, अहार, पपौरा आदि प्रमुख नगरों में ही नहीं, उत्तरप्रदेश के महोबा, कालंजर, देवगढ़, करगवां, बानपुर, चन्दपुरा, दूदाही, सैरोन, आदि स्थानों में भी समृद्ध जैनों की बड़ी-बड़ी बस्तियां थीं, जहाँ उस काल में अनेक जैन मंदिरों एवं मूर्त्तियों आदि का निर्माण हुआ। जैन कला के चन्देलकालीन अवशेषों की तत्कालीन भारतीय मूर्त्ति एवं स्थापत्य शिल्प के सर्वोत्कृष्ट उदाहरणों में गणना है। राज्य के जैनों ने उस राज्य की सर्वतोमुखी उन्नति में पूरा योगदान दिया था। कमलदेव, श्रीदेव, वासवचन्द्र, कुमुदचन्द्र, शुभचन्द्र, गुणभद्र आदि अनेक प्रभावक दिगम्बर जैन मुनियों एवं विद्वान आचार्यों का राज्य में उन्मुक्त विहार होता था। जहांतक उत्तरप्रदेश का सम्बन्ध है, १०६३ ई० में, कीर्त्तिवर्मन चन्देल के शासनकाल में देवगढ़ में एक सहस्रकूट चैत्यालय का निर्माण हुआ था, १०९७ ई० में कीर्त्तिवर्मन के मन्त्री वत्सराज ने देवगढ़ का नवीन दुर्ग बनवाकार उसका नाम कीर्त्तिगिरि रखा था और उस समय एक जिनमन्दिर भी वहाँ बना था। जयवर्मा चन्देल के समय में, ११९२ ई० में महोबा में कई जिन प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हुई थीं। मदनवर्मा के शासनकाल में ११४५ ई० से ११६३ ई० तक की एक दर्जन के लगभग जैन प्रतिमाएँ महोबा में प्राप्त हुई हैं, जिनमें ११५४ ई० की नेमिनाथ और ११५६ ई० की सुमतिनाथ प्रतिमाएँ रूपकार लाखन द्वारा निर्मित हैं, तथा ११६३ ई० की तीर्थंकर अजितनाथ आदि कई प्रतिमाएँ महोबा के प्रसिद्ध जैन सेठ रत्नपाल एवं उसके पुत्रों, कीर्तिपाल, अजयपाल, वस्तुपाल और त्रिभुवनपाल ने एक जिनमंदिर बनवाकर प्रतिष्ठित की थीं। मण्डलिपुर में गृहपतिवंशी श्रेष्ठि महीपति के परिवार ने ११५१ ई० में नेमिनाथ जिनालय बनावाकर उसकी प्रतिष्ठा करायी थी। चन्देल परमाल (११६५-१२०३ ई०) के समय में अनेक जिनमंदिर एवं जिन-प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हुई स्वयं राजधानी महोबा में ११६७ ई० में राज्याश्रय में एक जैनमंदिर का निर्माण हुआ था। वीरवर्मन चन्देल के समय की १२७४-१२७८ ई० की लेखांकित जैन मूर्त्तियाँ मिली हैं। अकेले देवगढ़ में ९५९ से १२५० ई० तक के डेढ़ दर्जन से अधिक जैन शिलालेख, प्रतिमालेख, आदि प्राप्त हुए हैं। उस युग में पाड़ाशाह (भैंसाशाह) नाम का एक बड़ा उदार दानी अग्रवाल जैन धनकुबेर हुआ जिसे प्रचलित किम्बदंतियाँ बुन्देलखंड में सैकड़ों जैनमंदिरों, कूप, बावड़ी, तड़ाग आदि के निर्माण का श्रेय देती हैं।

८वीं शती के अन्त से लेकर १२वीं शती के मध्य पर्यन्त दिल्ली राज्य पर तोमर वंश का शासन था, जिनके राज्य में उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिले (वर्तमान मेरठ कमिश्नरी) सम्मिलित थे। तोमर वंश के राजे जैनधर्म के प्रति अति सहिष्णु थे। अनंगपाल तृतीय (११३२ ई०) का राज्य-मन्त्री नट्टलसाहु बड़ा धनवान एवं धर्मात्मा जैन श्रावक था। उसने दिल्ली में तथा अन्यत्र अनेक जैन मंदिर बनवाये और कई विद्वानों एवं कवियों को प्रश्रय देकर उनसे अपभ्रंश भाषा के कई जैन काव्य रचवायें थे।

तोमरों के उपरान्त दिल्ली राज्य पर सांभर-अजमेर के चौहानों का अधिकार हुआ। प्रसिद्ध राय पिथौरा (पृथ्वीराज) का पिता 'प्रतापलंकेश्वर' सोमेश्वर चौहान तो जैनधर्म का भारी प्रश्रयदाता था। जब वह अजमेर से दिल्ली आया तो अपने नगर सेठ देवपाल को भी अपने साथ लाया था। दोनों ने हस्तिनापुर जैन तीर्थ की यात्रा की और वहाँ देवपाल ने ११७६ ई० में तीर्थंकर शान्तिनाथ की एक खड्गासन विशाल पुरुषाकार मनोज्ञ प्रतिमा प्रतिष्ठापित की थी ?

आगरा और इटावा के मध्य चन्द्रपाठदुर्ग (चन्दवाड, वर्तमान फिरोजाबाद) में १० वीं शती के अन्तिम पाद में चन्द्रपाल नामक एक चौहान ने अपना राज्य स्थापित किया था। वह स्वयं तथा उसका दीवान रामसिंह-हारूल जैन धर्मानुयायी थे। चन्द्रपाठदुर्ग का निर्माण करके उनदोनों ने ९९६-९९९ ई० में वहाँ मुख्य जैनमंदिर बनवाया और उसमें अपने इष्टदेव तीर्थंकर चन्द्रप्रभु की मनोज्ञ स्फटिकमयी प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। चन्द्रपाल के वंश में ११-१२वीं शती में क्रमशः भरतपाल, अभयपाल, जाहड और श्रीबल्लाल नाम के राजे हुए जो सब जैन थे या नहीं, जैनधर्म के पोषक अवश्य थे, और उनके मन्त्री तो जैन ही होते रहे। अभयपाल के मंत्री अमृतपाल ने चन्दवाड में एक जैनमंदिर बनवाया था, और संभवतया जाहड के मंत्री सोडूसाहु ने भी। वहीं ११७३ ई० में माथुरवंशी नारायण साहु की देव-शास्त्र-गुरुभक्त भार्या रूपिणी ने श्रुतपंचमीव्रत के फल को प्रकट करने वाली भविष्यदत्त कथा अपभ्रंश भाषा के कवि श्रीधर से लिखवाई थी। इटावा जिले के असाइखेड़ा में भी इसी चौहान वंश की एक शाखा स्थापित थी—उस स्थान से भी उस काल की अनेक जिनमूर्त्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

मथुरा (महावन) में यदुवंशी राजपूतों का छोटा सा राज्य था, महमूद गजनवी के आक्रमण में मथुरा के ध्वस्त हो जाने पर ये लोग बयाना (जिला भरतपुर) में जा बसे थे। उस काल की (९८१,१००६, १०१४ ई० आदि की) मथुरा से प्राप्त जैन मूर्त्तियों से प्रकट है कि ये यदुवंशी राजे भी जैनधर्म के प्रति सहिष्णु थे।

इलाहबाद जिले के कौशाम्बी, जसो आदि स्थानों से भी उस काल की तीर्थंकर प्रतिमाएं मिली हैं। अकेले जसो में लगभग एक दर्जन मूर्त्तियाँ मिली हैं जिन से, प्रयाग संग्रहालय के अध्यक्ष डा० सतीशचन्द काला के मतानुसार, प्रकट है कि किसी समय जसो जैनधर्म का एक अच्छा केन्द्र रहा है, यद्यपि अब चिरकाल से वहाँ किसी जैनी का निवास नहीं है।

श्रावस्ती (बहराइच-गोंडा) में ९वीं–११वीं शती में जैनधर्मानुयायी ध्वजवंशी नरेशों का राज्य था, जिनमें क्रमशः सुधन्वध्वज, मकरध्वज, हंसध्वज, मोरध्वज, सुहिलध्वज और हर्रसिंहदेव नाम के राजा हुए। इसवंश का सम्बंध सरयूपारवर्ती कलचुरियों (चेदियों) की किसी शाखा से अथवा प्राचीन भरजाति से रहा प्रतीत होता है। उन दोनों में ही जैनधर्म की प्रवृत्ति थी। मोरध्वज का उत्तराधिकारी सुहिलध्वज या सुहेलदेव बड़ा वीर, पराक्रमी और जिनभक्त था। उसने १०३३ ई० के लगभग महमूद गजनवी के पुत्र के सिपहसालार सैयद मसऊद गाजी को बहराइच के भीषण युद्ध में बुरीतरह पराजित करके ससैन्य समाप्त कर दिया बताया जाता है। स्थानीय लोककथाओं में वीर सुहेलदेव प्रसिद्ध है और उनसे उसका जैन रहा होना भी प्रकट है।

उत्तर प्रदेश के अवध आदि पूर्वी भागों में बहुलता के साथ पायी जाने वाली कायस्थों की उपजाति श्रीवास्तव का निवास मूलतः श्रावस्ती नगरी से हुआ बताया जाता है। इनके एक नेता, चन्द्रसेनीय श्रीवास्तव त्रिलोकचन्द्र ने ९१८ई० में सरयू नदी को पार करके अयोध्या में अपना राज्य स्थापित किया, जिसका अन्त ११९४ई० में मुहम्मद गोरी के भाई मखदूम शाह जूरन गोरी ने अयोध्या पर आक्रमण करके किया था। उसी ने वहाँ आदिदेव ऋषभ के जन्मस्थान के प्राचीन मंदिर को ध्वस्त करके उस स्थान पर एक मस्जिद बनवाई थी। वह स्थान आज भी

'शाहजूरन का टीला' कहलाता है, और भग्न मस्जिद के पीछे की ओर ऋषभ जन्मस्थान की सूचक टोंक विद्यमान है। पी० कारनेगी (१८७० ई०) के अनुसार अयोध्या का यह सरयूपारी श्रीवास्तव राज्यवंश जैनधर्मानुयायी था और उन्हीं के द्वारा बनवाये हुए अनेक प्राचीन देहुरे (जिनायतन) अभी भी विद्यमान है। इनमें से जो बच रहे उनका जैनों द्वारा जीर्णोद्धार हो चुका है। अवध गजेटियर (१८७७ ई०) से भी उक्त श्रीवास्तव राजाओं के जैन रहा होने की पुष्टि होती है, और ला० सीताराम कृत 'अयोध्या के इतिहास' में भी लिखा है कि 'अयोध्या के श्रीवास्तव अन्य कायस्थों के संसर्ग से बचे रहे तो मद्य नहीं पीते और बहुत कम मांसाहारी हैं। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि ये लोग पहले जैन ही थे।'

उसी काल में अवध के रायबरेली, सुल्तानपुर, उन्नाव आदि कुछ जिलों में अनेक स्थानों पर छोटे-छोटे भर राज्य स्थापित थे। ये भर लोग वीर, स्वतन्त्रता के उपासक और ब्राह्मण विद्वेषी थे। राजपूत भी उनसे घृणा करते थे, और अन्ततः राजपूतों एवं मुसलमानों ने मिलकर १४वीं शती में उन्हें समाप्त कर दिया। उक्त ज़िलों में भरों के समय की अनेक जिन मूर्त्तियाँ मिली हैं। कारनेगी, कनिंघम आदि सर्वेक्षकों का मत है कि भर लोग जैनधर्मानुयायी थे। प्रायः यही बात हापुड़-बरन-कोल के धोर राजपूतों के विषय में है।

इस प्रकार पूर्व-मध्यकाल (लगभग ८००-१२०० ई०) में उत्तर प्रदेश के प्रायः सभी भागों में अल्पाधिक संख्या में जैनों का निवास था, उनके साधु-सन्त निर्द्वन्द्व विचरते थे, और प्रदेश में स्थित उनके प्रमुख तीर्थक्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य अनेक नगरों, कस्बों और ग्रामों में उनके देवालय विद्यमान थे। प्रदेश के कई जैन अतिशय क्षेत्र एवं कलाधाम तो संभवतया इसी युग में उदय में आये। साहित्य सृजन भी हुआ। उस पूरे काल में इस प्रदेश में जैनधर्म को शायद कभी भी सुनिश्चित या उल्लेखनीय राज्याश्रय प्राप्त नहीं रहा—किसी भी बड़े राज्यवंश का कुलधर्म, या किसी भी राज्य का राज्यधर्म वह नहीं रहा लगता तथापि उस युग में पौराणिक ब्राह्मण धर्म के पश्चात प्रदेश का दूसरा प्रधान धर्म जैनधर्म ही था। प्राचीन भारत के तीसरे प्रधान धर्म, बौद्धधर्म का, प्रदेश के बहुभाग पर उस युग में प्रायः कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। वैश्यवर्ण का तो बहुभाग जैनधर्म का अनुयायी था और ब्राह्मण, राजपूत, भर, कायस्थ आदि वर्णों एवं जातियों में भी उसके अनुयायी पाये जाते थे। कालान्तर में (१५वीं-१६वीं शताब्दियों में) दक्षिणाचार्यों के प्रयत्नों से प्रदेश में वैष्णव धर्म की राम एवं कृष्ण भक्ति शाखाओं के प्रचार-प्रसार के परिणाम स्वरूप जैनवैश्यों का बहुभाग शनैः-शनैः वैष्णवधर्म में दीक्षित होता गया, क्योंकि इन सम्प्रदायों का आचार-विचार जैन आचार-विचार से निकटतम था।

वस्तुतः, प्रदेश में जैन जनता की संख्या एवं स्थिति जैसी उक्त पूर्वमध्यकाल में रही, उसके पूर्ववर्ती गुप्त एवं गुप्तोत्तर कालों में उससे विशेष भिन्न नहीं थी। यदि उक्त कालों से सम्बन्धित पुरातात्त्विक आदि प्रमाण अति विरल हैं, तो कोई ऐसा संकेत भी नहीं है कि प्रदेश में कहीं भी और कभी भी जैनों पर कोई भीषण अत्याचार हुआ हो, उनका सामूहिक संहार हुआ हो, अथवा प्रदेश से बड़ी संख्या में उनका निष्कासन हुआ हो।

जहाँ तक जैनधर्म के आन्तरिक विकास और स्वरूप का सम्बन्ध है, दिगम्बर-श्वेताम्बर संघभेद होने के समय (प्रथमशती ई० का अन्त) से लेकर मध्ययुग के प्रारम्भ (लगभग १२०० ई०) पर्यन्त उत्तर प्रदेश में दिगम्बर सम्प्रदाय का बाहुल्य रहा—यही स्थिति उसके उपरान्त भी प्रायः वर्तमान काल तक चली आ रही है। किन्तु उस पूर्वकाल की यह विशेषता थी कि सम्प्रदायभेद साधुओं तक ही सीमित था, जनता में दिगम्बर-श्वेताम्बर जैसा कोई भेद प्रायः नहीं था। प्रदेश में दोनों ही आम्नायों के तीर्थस्थान, मन्दिर, अन्य धार्मिक स्मारक तथा देवमूर्त्तियाँ अभिन्न थीं। उस काल की समस्त उपलब्ध अर्हत या तीर्थंकर मूर्त्तियाँ दिगम्बर हैं। जनता दोनों ही आम्नायों के साधु-

साध्वियों का समान रूप से आदर करती थी। नौवीं-दसवीं शती में ही सर्वप्रथम दिगम्बरों और श्वेताम्बरों के मंदिर पृथक-पृथक बनना प्रारम्भ हुए, और प्रतिमाओं में भिन्नता तो और भी बहुत बाद में आई। दूसरे, यद्यपि तत्कालीन तान्त्रिक मतों एवं वाममार्गों के प्रभावों से जैनधर्म ने स्वयं को सावधानीपूर्वक बचाये रक्खा, उसमें यक्ष-यक्षियों (शासनदेवियों), क्षेत्रपाल आदि की पूजा और उनके आश्रय से मन्त्र-तन्त्रों का प्रचार, अहिंसा एवं सदाचार की सीमा में रहते हुए, बढ़ा। तत्कालीन नाथपंथ के प्रभाव में कतिपय जैनसाधुओं ने आदिनाथी, नेमिनाथी, पारसनाथी जैसे योग प्रधान पंथ भी चलाये जो जोगी पन्थों में अन्तर्भूत हो गये लगते हैं। जोइन्दु, रामसिंह, देवसेन प्रभृति कई जैन सन्तों ने अपने सरल अपभ्रंश दोहों के माध्यम से जैन धर्म का वह आध्यात्मिक रूप प्रस्तुत किया जो प्रारंभिक मध्यकाल के गोरख, कबीर, नानक, दादू आदि निर्गुण धारा के रहस्यवाद का आधार बना लगता है। तीसरे, पूर्व-मध्यकाल का जैनधर्म तत्कालीन पौराणिक ब्राह्मणधर्म, विशेषकर भागवत तथा उससे उद्भूत वैष्णव धर्म से भी पर्याप्त प्रभावित हुआ। विशेषकर गृहस्थ के षोडश संस्कारों, पूजा-अनुष्ठान आदि के आडम्बर और वर्ण एवं जाति प्रथा के क्षेत्रों में जैनधर्म की मौलिक जातिभेद विरोधी नीति के विपरीत जैनसमाज में भी जातिवाद आने लगा और जातियाँ रूढ़ होने लगीं।

मध्ययुग

मध्ययुग के प्रारंभ में ऊपरी दृष्टि से देखने वाले किसी विदेशी को एक स्थान में साथ-साथ रहने वाले, बहुधा एक जातीय, समान भाषा, नामादि, वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन एवं रीति-रिवाजों वाले जैनों और वैष्ण-वादि हिन्दुओं के मध्य कोई भेद न दिखाई पड़ना या न किया जाना स्वाभाविक था। बहुधा एक ही परिवार के विभिन्न स्त्री-पुरुष सदस्य जैन, वैष्णव, शैव, नाथपंथी आदि होते थे। उनके विभिन्न धार्मिक विश्वासों का उनके पारिवारिक सम्बन्धों एवं पारिवारिक एकसूत्रता पर भी प्रायः विशेष प्रभाव नहीं पड़ता था। यहाँ तक होने लगा कि एक जैन अपने सजातीय वैष्णव के साथ तो रोटी-बेटी व्यवहार निस्संकोच कर लेता था, किन्तु भिन्न-जातीय जैन के साथ वैसा करने में झिझकता था—यथा एक अग्रवाल जैन स्वयं को खंडेलवाल जैनों की अपेक्षा अग्रवाल वैष्णवों के अधिक निकट समझता था—कम से कम जातीय एवं सामाजिक दृष्टि से। यही बात अन्य जैन जातियों के विषय में थी। मध्यकाल में विदेशी शासन से उत्पन्न विषम परिस्थितियों के कारण परदा प्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह पर प्रतिबन्ध, सतीप्रथा, जातिप्रथा की रूढ़ता, आदि उदय में आईं और उत्तरोत्तर बढ़ती गयीं। साथ ही गृहस्थों के धर्म-कर्म पर साधुओं, यातियों, भट्टारकों, श्रीपूज्यों आदि महंतशाही धर्मगुरुओं और ब्राह्मण पुरोहितों का प्रभाव एवं नियन्त्रण भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया। संख्या, शक्ति और प्रभाव में भी हानि होती गयी। जातीय एवं धार्मिक जीवन के ह्रास का ही वह युग था।

१२वीं शती के अन्त से लेकर १८वीं शती के अन्त पर्यन्त, लगभग ६०० वर्ष के इस मध्यकाल की सबसे बड़ी ऐतिहासिक विशेषता इस देश में मध्य एशियाई मुसलमानों के आक्रमण और स्वदेशी राजसत्ताओं को धीरे-धीरे समाप्त करके अथवा पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ कर अपने राज्यों की स्थापना है। भारतीय राजनीति, अर्थ व्यवस्था, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में एक नवीन, अपरिचित, प्रबल एवं विरोधी या प्रतिकूल तत्व का प्रवेश हुआ, जिसने विविध प्रकार की उथल-पुथल, क्रान्तियों और आन्दोलनों को जन्म दिया, और देश का स्वरूप बहुत कुछ बदल डाला।

उत्तर प्रदेश की जनता को मुसलमानों का प्रथम साक्षात् परिचय ११वीं शती ई० के प्रथम पाद में मंदिर-मूर्ति-भंजक महमूद ग़ज़नवी के लुटेरे आक्रमणों के माध्यम से हुआ था। महमूद ने १०१८ई० में बरन (बुलन्दशहर) के राजा केहरदत्त पर आक्रमण करके उसे पराधीन किया, महावन और मथुरा को लूटा, वहाँ स्थित विशाल एवं कलापूर्ण

देवमन्दिरों को जलाकर भस्म कर डाला, तदनन्तर कन्नौज को लूटा और फिर चन्देलों के राज्य पर आक्रमण किये। न जाने कैसे महमूद की विध्वंसलीला से मथुरा के कंकाली एवं चौरासी पर स्थित जैन मन्दिर और मूर्त्तियाँ बच गईं। या तो ये स्थान उसके मार्ग से हटकर पड़ते थे, अथवा इतने जीर्ण-शीर्ण एवं धन सम्पत्ति विहीन थे कि उनकी ओर लुटेरों का ध्यान ही नहीं गया। महमूद के उत्तराधिकारी के सिपहसालार मसऊद ने भी १०३३ ई० में प्रायः समस्त उत्तर प्रदेश को रौंद डाला था, ऐसी किंवदन्तियां हैं, और यह भी कि अन्ततः बहराइच के युद्ध में श्रावस्ती के जैन नरेश सुहिलदेव ने उसे पराजित करके ससैन्य मार डाला था। उसके बाद भी दो-एक बार गज़नी के सुल्तानों के सेनानियों ने इस प्रदेश पर लुटेरे आक्रमण किये। धन, जन, मंदिरों और मूर्त्तियों की बहुत कुछ क्षति होने पर भी इन आक्रमणों का प्रदेश पर विशेष या स्थायी कोई प्रभाव नहीं हुआ।

१२वीं शती के अंतिम दशक में गज़नी के ही सुलतान मुहम्मद गोरी ने भारी सेना लेकर प्रदेश पर आक्रमण किये, तलावड़ी के युद्ध (११९२ ई०) में दिल्लीश्वर पृथ्वीराज और उसके राज्य को समाप्त किया, तदनन्तर चन्द्रवाड के युद्ध में कन्नौज नरेश जयचन्द और उसके राज्य का अन्त किया। दो-तीन वर्ष के भीतर ही गोरी और उसके गुलाम एवं सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक ने मेरठ से वाराणसी पर्यन्त प्रायः पूरे उत्तर प्रदेश पर अपना फौजी शासन स्थापित कर दिया। आगे के लगभग ३०० वर्ष पर्यन्त क्रमशः गुलाम, खिलजी, तुगलुक, सैयद और लोदी वंशों के मुसल्मान सुलतानों ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाकर प्रायः पूरे उत्तर प्रदेश पर शासन किया। वस्तुतः गंगा-यमुना के दोआबे का यह धन-जनपूर्ण प्रदेश ही दिल्ली के सुलतानों की शक्ति एवं समृद्धि का प्रधान स्रोत था, और इसे ही वे हिन्दुस्तान कहते थे। प्रदेश की देशी राज्य सत्ताएँ, दो-एक छोटे-मोटे अपवादों को छोड़कर सब शनैः शनैः समाप्त कर दी गईं। जिन राजधानियों, नगरों, दुर्गों आदि पर सुलतानों ने अधिकार किया उन्हें तो जी भर के लूटा और ध्वस्त किया। मंदिरों और मूर्त्तियों को तोड़ना, मंदिरों को मस्जिदों में परिवर्तित करना, साधु-संतों, पंडितों और धर्मात्माओं को काफिर कह कर उनका अपमान करना, त्रास देना, हत्या करने में भी न चूकना उस काल के मुसलमान शासक और इनके साधर्मी अनुचर सवाब का काम समझते थे। उनके द्वारा अधिकृत एवं शासित प्रदेशों में स्वभावतः भारतीय धर्मों और उनके अनुयायियों की शोचनीय स्थिति थी। प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग या समुदाय के लिए अपने जान, माल, इज्जत, धर्म और संस्कृति की रक्षा की समस्या सतत् और सर्वोपरि थी। और यदि वे हिन्दू, जैन आदि तथा उनका धर्म और संस्कृति जैसे-तैसे बचे रहे तो इसीलिए कि उन्हें सर्वथा समाप्त कर देना अथवा मुसलमान बना डालना उन शासकों के लिए भी अशक्यानुष्ठान था। वैसा करना उनके राजनीतिक, प्रशासनिक और आर्थिक हितों में भी नहीं था। इसके अतिरिक्त बाहरी दबाव एवं अरक्षाभय की प्रतिक्रिया भीतरी संगठन एवं आत्मरक्षा की प्रवृत्ति को बल देती है। इन्हीं कारणों से उस काल में प्रदेश में जैनीजन, उनका धर्म और संस्कृति जीवित रह सके। संख्या अवश्य घटती गई और व्यापारप्रधान वैश्य वर्ग में सीमित होती गई। उत्तर-मध्यकाल में प्रदेश के अनेक जैन समजातीय एवं प्रायः समान आचार-विचार वाले वैष्णवों में परिवर्तित हुए।

दिल्ली के सुलतानों में कोई-कोई अपेक्षाकृत उदार और विभिन्न धर्मों के विद्वानों का आदर करने वाले भी हुए। अलाउद्दीन खिलजी (१२९६-१३१६ ई०) के शासनकाल में दिल्ली का नगर सेठ पूर्णचन्द्र नामक अग्रवाल जैन था। बादशाह के संकेत पर उसने दक्षिणापथ से दिगम्बराचार्य माधवसेन से दिल्ली पधारने की प्रार्थना की। आचार्य आये और उन्होंने दिल्ली में काष्ठासंघ का पट्ट स्थापित किया, जो गत शताब्दी के अन्त तक चलता रहा। उत्तर प्रदेश के अग्रवाल जैनों में मुख्यतया इसी पट्ट के भट्टारकों की आम्नाय चलती रही। कुछ ही वर्षों बाद आचार्य प्रभाचन्द्र ने दिल्ली में नन्दिसंघ का पट्ट स्थापित किया, सेनसंघ की भी गद्दी स्थापित हुई और श्वेताम्बर पट्ट भी स्थापित हुआ। सुलतान मुहम्मद तुगलुक ने दिगम्बराचार्य प्रभाचन्द्र का और श्वेताम्बराचार्य जिनप्रभसूरि

का सम्मान किया बताया जाता है। इन आचार्यों ने, विशेषकर जिन प्रभसूरि ने सुलतान से फरमान प्राप्त करके संघसहित उत्तर प्रदेश के मथुरा, हस्तिनापुर आदि जैन तीर्थों की यात्रा की थी। उस काल की फारसी तवारीखों में जैनों का उल्लेख सयूरगान (सरावगान-श्रावक का अपभ्रन्श) नाम से हुआ है। फिरोज तुगलुक ने भी इन सयूरगान के पंडितों से अशोकस्तंभ-लेखों को पढ़ने में सहायता ली थी। इन स्तंभों में से एक तो वह सुलतान मेरठ से ही उठवाकर दिल्ली ले गया था।

१४२४ ई० में संघपति साहु होलिचन्द्र नामक धनवान, दानशील एवं धर्मात्मा श्रावक ने देवगढ़ आदि में अनेक जिनमन्दिरों का निर्माण कराया था और धर्मोत्सव किये थे। नन्दिसंघ के आचार्य प्रभाचन्द्र के प्रशिष्य और आचार्य पद्मनन्दि के शिष्य भट्टारक शुभचन्द्र उसके गुरु थे। उनकी प्रेरणा से उसने उक्त वर्ष देवगढ़ में मुनि वसन्तकीर्ति और मुनि पद्मनन्दि की तथा कई तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित कराई थीं। उसके द्वारा किये गये धर्मोत्सवों में उसके स्वयं के पुत्र-पौत्रों आदि का तथा अन्य अनेक श्रावक श्रेष्ठियों का भी सहयोग रहा। देवगढ़ में १४३६ ई० में भी एक जिन मन्दिर-मूर्ति प्रतिष्ठा हुई थी।

आगरा के पूर्व-दक्षिण और ग्वालियर के उतर में, यमुना और चम्बल के मध्यवर्ती प्रदेश में असाईखेड़ा (जिला इटावा) के भरों का राज्य पूर्वकाल में था। असाईखेड़ा के भर जैन धर्मानुयायी थे, जैसा कि वहां से प्राप्त ९वीं-१०वीं शती की जैन मूर्तियों एवं मन्दिरों के भग्नावशेषों से विदित होता है। उन भरों के उपरान्त चन्द्रपाल चौहान ने चन्द्रवाड़ (फिरोजाबाद) में अपना राज्य जमाया था। उसका तथा उसके निकट उत्तराधिकारियों और उनके जैन मंत्रियों का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। चन्द्रपाल के इस चौहान राज्य में रायबद्दिय, रपरी, हथिकन्त, शौरिपुर, आगरा आदि अन्य प्रसिद्ध नगर या दुर्ग थे। कालान्तर (१५वीं-१६वीं शती) में अटेर, हथिकन्त और शौरिपुर (ये सब स्थान आगरा जिले में हैं) में नन्दिसंघ के दिगम्बर जैन भट्टारकों की गद्दियां भी स्थापित हो गईं। चन्द्रवाड़ के चौहान नरेश बल्लाल के उत्तराधिकारी आहवमल्ल (लगभग १२५७) के समय में उसके पिता के मन्त्री सोढ़ू साहु का ज्येष्ठ पुत्र रत्नपाल (रल्हण) राज्य का नगरसेठ था और कनिष्ठ पुत्र कृष्णादित्य (कण्ह) प्रधान मन्त्री एवं सेनापति था। दिल्ली के गुलामवंशी सुलतानों के विरुद्ध इस जैन वीर ने कई सफल युद्ध किये थे। उसने राज्य में अनेक जिनमन्दिरों का भी निर्माण कराया था और १२५६ ई० में त्रिभुवनगिरि (बयाना जिला) निवासी जैसवाल जैन कवि लक्ष्मण (लाखू) से अपभ्रंश भाषा में 'अणुव्रतरत्नप्रदीप' नामक धर्मग्रंथ की रचना कराई थी। कवि ने इस धर्मप्राण वीर राजमंत्री के सद्गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कृष्णादित्य का भतीजा शिवदेव भी श्रेष्ठ विद्वान एवं कलामर्मज्ञ था और अपने पिता रत्नपाल के पश्चात् राज्य का नगरसेठ नियुक्त हुआ था। कई पीढ़ी पर्यन्त राज्यमान्य बना रहने वाला सम्पन्न एवं धर्मधुरन्धर सेठों और कुशल राज मंत्रियों का यह परिवार चन्द्रवाड़ के चौहान राज्य का प्रमुख स्तम्भ था। इस समय तक सम्भवतया रायवद्दिय मुख्य राजधानी रही और चन्द्रवाड़ उपराजधानी, तदनन्तर चन्द्रवाड़ ही मुख्य राजधानी हो गई। कहा जाता है कि चन्द्रवाड़ में ५१ जिनप्रतिष्ठाएं हुई थीं। राजा संभरिराय का मंत्री यदुवंशी-जैसवाल जैन साहु जसधर या जसरथ (दशरथ) था और राजा सारंगदेव का मंत्री दशरथ का पुत्र गोकर्ण था जिसने 'सूपकारसार' नामक पाकशास्त्र की रचना की थी। गोकर्ण का पुत्र सोमदेव राजा अभयचन्द (अभयपाल द्वितीय) तौर उसके उत्तराधिकारी जयचन्द का प्रधान मंत्री था। इसी काल में (१३७१या १३८१ ई० में) चन्द्रपाठदुर्ग निवासी महाराजपुत्र रावत गओ के पौत्र और रावत होतमी के पुत्र चुन्नीददेव ने अपनी पत्नी भट्टो तथा पुत्र साधुसिंह सहित काष्ठासंघी भट्टारक अनन्तकीर्तिदेव से एक जिनालय की प्रतिष्ठा कराई थी। राजा जयचन्द का उत्तराधिकारी राजा रामचन्द्र था जिसके प्रधान मन्त्री सोमदेव के पुत्र साहु वासाधर थे। उनके छह अन्य भाई तथा जसपाल, रत्नपाल, पुण्यपाल,

चन्द्रपाल आदि आठ पुत्र भी सुयोग्य, धर्मात्मा एवं राज्य की सेवा में तत्पर थे। वासाधार की भार्या उदयश्री पतिव्रता, सुशील और चतुर्विध संघ के लिए कल्पद्रुम थी। स्वयं मन्त्रीश्वर वासाधर परम जिनभक्त, देवपूजादि षटकर्मों में रत, अष्टमूलगुणों के पालन में तत्पर, विशुद्ध चित्तवाले, परोपकारी, दयालु, उदारदानी, बहुलोक मित्र, राजनीति पटु एवं स्वामीभक्त थे। चन्द्रवाड़ में उन्होंने एक विशाल एवं कलापूर्ण जिनमन्दिर बनवाया था तथा अनेक पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया था। उन्होंने १३९७ ई० में गुजरात निवासी कवि धनपाल से अपभ्रंश भाषा में बाहुबलिचरित्र नामक काव्य की रचना कराई थी। यह कवि भट्टारक प्रभाचन्द्र के भक्त-शिष्य थे और उन्हीं के साथ तीर्थयात्रा करते हुए चन्द्रवाड़ आ पहुँचे थे। वासाधर ने उक्त प्रभाचन्द्र के पट्टधर दिल्ली-पट्टाचार्य भट्टारक पद्मनन्दि से संस्कृत भाषा में 'श्रावकाचारसारोद्धार' नामक ग्रंथ की रचना कराई थी। इस ग्रन्थ में वासाधर को लम्बकंचुक (लमेचु) वंशी लिखा है—सम्भव है कि जैसवालों की ही एक शाखा लमेचु नाम से प्रसिद्ध हुई हो। इसी काल में चन्द्रवाड़ के पद्मावतपुरवाल जातीय धनकुबेर सेठ कुन्थुदास हुए, जिन्होंने राजा रामचन्द्र और उनके पुत्र रुद्रप्रताप के समय में अपनी अपार सम्पत्ति से राज्य की आड़े वक्त में प्रशंसनीय सहायता की थी। उन्होंने चन्द्रवाड़ में एक भव्य जिनालय बनवाकर उसमें हीरा, पन्ना, माणिक्य, स्फटिक आदि की अनेकों बहुमूल्य प्रतिमाएं प्रतिष्ठित कराई थीं तथा अपभ्रंश भाषा के ग्वालियर निवासी महाकवि रईन्धु से 'पुण्यास्रवकथा' एवं 'त्रेसठ-महापुरुष-गुणालंकार' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना कराई थी। राजा रुद्रप्रताप द्वारा सम्मानित चन्द्रवाड़ के एक अन्य जैन सेठ साहु तोसउ के पुत्र साहु नेमिदास थे जिन्होंने धातु, स्फटिक, मूंगे आदि की अनेक प्रतिमाएं बनवाकर प्रतिष्ठित कराई थीं।

इटावा जिले के करहल नामक स्थान में चौहान सामन्त राजा भोजराज का राज्य था। उसके मन्त्री यदुवंशी अमरसिंह जैनधर्म संपालक थे। उन्होंने १४१४ ई० में वहां रत्नमयी जिनबिंब निर्माण कराके महत् प्रतिष्ठोत्सव किया था। उनके चार भाई, पत्नी कमलश्री और नन्दन, सोणिग एवं लोणासाहु नाम के तीनों पुत्र भी उदार, धर्मात्मा और विद्यारसिक थे। विशेषकर साहु लोणा मल्लिनाथचरित्र के रचयिता कवि जयमित्र हल्ल और 'पार्श्वनाथचरित्र' के कर्त्ता कवि असवाल के प्रशंसक एवं प्रश्रयदाता थे। उन्होंने १४२२ ई० में, भोजराज के पुत्र राजा संसारचंद (पृथ्वीसिंह) के शासनकाल में, अपने भाई सोणिग के लिए उक्त कवि असवाल से 'पार्श्वनाथ चरित्र' की रचना कराई थी।

१४वीं शती के अन्त और १५वीं के प्रारम्भ में, लगभग दो दशक पर्यन्त दिल्ली में फिरोज तुगलुक के अयोग्य वंशजों का शासन था, जिसे तैमूरलंग के लुटेरे आक्रमण (१३९८ ई०) ने ध्वस्त प्रायः कर दिया। उसने उत्तर प्रदेश के मेरठ आदि पश्चिमी जिलों को भी रौंद डाला था। तदनन्तर दिल्ली में लगभग आधी शती पर्यन्त सैयद सुलतानों का और तत्पश्चात् पौन शती पर्यन्त लोदी सुलतानों का शासन रहा। इस काल में प्रायः सभी प्रांतों में स्वतन्त्र सुलतानी शासन स्थापित हो गये थे। उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में भी जौनपुर के शर्की सुलतानों का शासन था। इस काल से ही जौनपुर में जैन जौहरियों व व्यापारियों की अच्छी बस्ती थी। सुलतान महमूदशाह शर्की ने तो १४५० ई० के लगभग कर्णाटक के जैनाचार्य सिंहकीर्ति को अपने दर्बार में सम्मानित भी किया प्रतीत होता है। दिल्ली के सुलतानों का शासन क्षेत्र बहुत संकुचित हो गया था, किन्तु बहुभाग उत्तर प्रदेश पर फिर भी उनका अधिकार बना रहा। इन सुलतानों में स्यात् सिकन्दर लोदी (१४८९-१५१७ ई०) सर्वाधिक शक्तिशाली था। उसने वर्तमान आगरा नगर बसाकर वहां दुर्ग बनवाया और उसे अपनी उपराजधानी बनाया। इसमें उसका मुख्य उद्देश्य आगरा के आसपास फैले चन्द्रवाड़, असाईखेड़ा, करहल आदि के चौहानों और अटेर, हथिकंत आदि के भदौरिया राजाओं को नियन्त्रण में रखना तथा दोआब की आय को सुरक्षित रखना था। सिकन्दर लोदी के राज्य

में अपेक्षाकृत अत्यधिक सुकाल था, चीजें सस्ती थीं और प्रजा में सुख-शान्ति थी, किन्तु वह अपने धर्म का कट्टर पक्षपाती और हिन्दू, जैन आदि के प्रति असहिष्णु भी था। मथुरा आदि के मन्दिरों को तोड़कर उसने उनके स्थान में मसजिदें भी बनवाई थीं।

विचित्र संयोग है कि उसी युग में, १४९०-१४९२ ई० में एक राजस्थानी जैन धनकुबेर शाह जीवराज पापड़ीवाल ने दिल्लीपट्टाधीश भट्टारक शुभचन्द्र के उत्तराधिकारी आचार्य जिनचन्द्र से अनगिनत जिन-प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित कराई थीं और छकड़ों में उक्त प्रतिमाओं को भरकर वह सेठ तथा उसके गुरु एक विशाल संघ के साथ समस्त जैनतीर्थों की यात्रा को निकले थे। मार्ग में पड़ने वाले प्रत्येक जिनमन्दिर में वे यथावश्यक प्रतिमाएँ पधराते गये थे। जहां कोई मन्दिर नहीं था वहां नवीन चैत्यालय स्थापित करते गये। आज भी उत्तर प्रदेश के प्रायः प्रत्येक दिगम्बर जैन मन्दिर में एक या अधिक श्वेत संगमर्मर की प्रतिमाएं वि० सं० १५४८ (१४९१ ई०) में शाहजीवराज पापड़ीवाल के लिए उक्त भट्टारक जिनचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठत पाई जाती हैं। प्रायः उसी युग में, दूसरी ओर कई जैन सन्तों ने सुधारक आन्दोलन उठाये, जिनमें मध्य प्रदेश के तारणस्वामी का तारणपंथ, गुजरात में कडुवाशाह का श्रावकपंथ और लौंकाशाह का लौंकागच्छ, जो कालान्तर में स्थानकवासी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ, प्रमुख थे। ये नवीन जैन पंथ अधिकांशतः साधुमार्गी थे और मूर्तिपूजा एवं मन्दिरों का विरोध करते थे। उत्तर प्रदेश में इन पंथों का जो कुछ थोड़ा सा प्रभाव हुआ, वह तत्काल नहीं, बहुत पीछे हुआ।

प्रायः इसी काल में हथिकन्त (हस्तिकांत)—शौरिपुर में नन्दिसंघ के दिगम्बर भट्टारकों की गद्दी स्थापित हुई। उक्त दोनों स्थान आगरा जिले में हैं और उन दोनों में ही उक्त पट्ट के पीठ थे। इस पट्ट में क्रमशः ललित कीर्ति, धर्मकीर्ति (१५५४ ई०), शील भूषण, ज्ञानभूषण (१६३० ई०), जगतभूषण, विश्वभूषण (१६६५ ई०), देवेन्द्रभूषण (१६७७ ई०), सुरेन्द्र भूषण (१७०३–३४ई०), जिनेन्द्र भूषण (१७७१ ई०), महेन्द्र भूषण (१८१८ ई०), राजेन्द्र भूषण (१८६३ ई०), और हरेन्द्र भूषण (१८८८ ई०) नाम के भट्टारक १६वीं शती के प्रारम्भ से १९वीं के अन्त पर्यन्त हुए। इन भट्टारकों ने शौरिपुर आदि तीर्थों का संरक्षण एवं प्रभावना तो की ही, अपने पीठ को एक उत्तम सांस्कृतिक एवं ज्ञान केन्द्र बनाये रक्खा और स्वयं तथा अपने अनेक त्यागी एवं गृहस्थ शिष्यों से पर्याप्त साहित्य की रचना भी कराई। प्रायः पूरी आगरा कमिश्नरी (वर्तमान) के जैन जन उनके सीधे प्रभावक्षेत्र में थे, उत्तर प्रदेश के शेष भाग में दिल्ली के विभिन्न पट्टों से सम्बन्धित भट्टारकों और यतियों की आम्नायें चलती थीं।

पूर्व मुगलकाल या मध्ययुग के पूर्वार्ध के मुनियों, भट्टारकों, यतियों, ब्रह्मचारियों आदि जैन साधु-सन्तों ने प्राकृत और संस्कृत जैसी प्रतिष्ठित भाषाओं को छोड़कर अपभ्रंश तथा उससे विकसित हुई देशभाषा हिन्दी को अपने उपदेशों एवं रचनाओं का माध्यम बनाया और इस प्रकार न केवल हिन्दी के प्रारम्भिक विकास को प्रोत्साहन दिया वरन आने वाली शताब्दियों के गृहस्थ जैन कवियों एवं साहित्यकारों का मार्ग भी प्रशस्त किया। उन्होंने अपनी धर्मसंस्था में समयानुकूल परिवर्तन भी किये, साम्प्रदायिक वैमनस्य (हिन्दू-मुस्लिम आदि) को कम करने में योग दिया, अपने प्रभाव से जनता एवं कभी-कभी शासकों को प्रभावित करके अपने धर्म और संस्कृति की सुरक्षा की, जनता में स्फूर्ति, धर्मभाव एवं नैतिकता को सजग बनाये रखने में योग दिया। तथापि आततायियों की कुदृष्टि से अपनी बहूबेटियों की रक्षा करने के लिए परदा, बाल विवाह, अनमेल विवाह, सती, छूतछात, जाति-पाँति की कठोरता आदि कुप्रथाएँ भी सामान्य हिन्दुओं की भाँति जैन समाज में भी घर करती गईं।

१५२६ ई० में पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी को हराकर मुगल बादशाह बाबर ने आगरा और दिल्ली पर अधिकार किया और मुगल राज्य की नींव डाली। किन्तु इतिहास प्रसिद्ध मुगल साम्राज्य का वास्तविक

संस्थापक, निर्माता और उसका सर्वमहान, प्रतापी एवं शक्तिशाली नरेश अकबर महान (१५५६-१६०५ ई०) था। न्यायप्रिय, उदारनीति, धार्मिक सहिष्णुता, गुणग्राहकता, वीरों, विद्वानों एवं कलाकारों का समादर आदि गुणों के लिए यह सम्राट प्रसिद्ध है। उसने हिन्दू और जैन तीर्थों पर पूर्ववर्ती सुलतानों द्वारा लगाये गये करों और जजिया कर को समाप्त कर दिया। हिन्दुओं की भाँति अनेक जैन भी राजकीय पदों पर नियुक्त हुए और राज्य मान्य हुए।

कट्टर मुल्ला-मौलवियों के प्रभाव से शासन को मुक्त करने के लिए १५७९ ई० में सम्राट ने धर्माध्यक्ष का पद भी स्वयं ग्रहण कर लिया। उसी वर्ष राजधानी आगरा के जैनों ने वहां एक दिगम्बर जैन मन्दिर का निर्माण करके बड़े समारोह के साथ बिम्बप्रतिष्ठा महोत्सव किया।

अकबर के राज्यकाल में इस प्रदेश में लगभग दो दर्जन जैन साहित्यकारों एवं कवियों ने साहित्य सृजन किया, कई प्रभावक जैन सन्त हुए, यत्र-तत्र जिन मन्दिरों का निर्माण हुआ, जैन तीर्थयात्रा संघ चले, और जैन जनता ने कई शतियों के पश्चात पुनः धार्मिक संतोष एवं शान्ति की सांस ली। स्वयं सम्राट ने प्रयत्न पूर्वक तत्कालीन जैन गुरुओं से सम्पर्क किया और उनके उपदेशों का लाभ उठाया।

उसके आमन्त्रण पर आचार्य हीरविजयसूरि १५८२ ई० में गुजरात से चलकर आगरा पधारे। सम्राट ने धूमधाम के साथ उनका स्वागत किया और उनकी विद्वत्ता एवं उपदेशों से प्रभावित होकर उन्हें 'जगद्गुरु' की उपाधि दी। विजयसेनगणि ने अकबरी दर्बार में 'ईश्वर कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है' विषय पर भट्टनामक ब्राह्मण पंडित को शास्त्रार्थ में पराजित करके बादशाह से 'सवाई' उपाधि प्राप्त की। यति भानुचन्द्र सूर्य-सहस्रनाम की रचना करके 'पातशाह अकबर जलालुद्दीन सूर्य-सहस्रनामाध्यापक' कहलाए और अपने फारसी भाषा के ज्ञान के लिए सम्राट से 'खुशफ़हम' उपाधि प्राप्त की। उनके निवेदन पर बादशाह ने अपने नीरोग होने की खुशी में की जाने वाली कुर्बानी को बन्द करवा दिया था। इसी प्रकार मुनि शान्तिचन्द्र के उपदेश से सम्राट ने ईदुज्जुहा (बकरीद) पर होने वाली कुर्बानी बन्द करा दी थी। मुनिजी ने कुरान की आयतों तथा मुसलमानों के अन्य अनेक धर्मग्रंथों के आधार से शाही दर्बार में यह सिद्ध कर दिया था कि 'कुर्बानी का मांस और रक्त खुदा को नहीं पहुंचता, वह रहीमुलरहमान इस हिंसा से प्रसन्न नहीं होता, बल्कि परहेजगारी से प्रसन्न होता है, रोटी और शाक खाने से ही रोजे कबूल होते हैं।' बीकानेर के निर्वासित राज्यमंत्री कर्मचन्द बच्छावत की प्रेरणा से खम्भात के मुनि जिनचन्द्र सूरि को सम्राट ने आमन्त्रित किया। मुनि जी ने 'अकबर-प्रतिबोधरास' लिखा और 'युगप्रधान' उपाधि प्राप्त की। उनके साथ उनके कई शिष्य साधु भी आये थे। मुनि पद्मसुन्दर ने बादशाह के लिए 'अकबर शाही-श्रृंगारदर्पण' की रचना की। कहा जाता है कि जब शाहजादे सलीम के घर मूलनक्षत्र में कन्या का जन्म हुआ तो ज्योतिषियों ने उसे बड़ा अनिष्टकर बताया। बादशाह ने अपने प्रमुख आमात्यों से परामर्श करके कर्मचन्द बच्छावत को जैनधर्मानुसार ग्रहशान्ति का उपाय करने का आदेश दिया। अस्तु, चैत्र शुक्ल पूर्णिमा के दिन स्वर्ण-रजत कलशों से तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा का बड़े समारोहपूर्वक अभिषेक और शान्ति-विधान किया गया। अनुष्ठान की समाप्ति पर सम्राट अपने पुत्रों एवं दरबारियों सहित वहां आया, अभिषेक का गन्धोदक विनयपूर्वक मस्तक पर चढ़ाया, अन्तःपुर में बेगमों के लिए भी भिजवाया, और उक्त जिन मन्दिर को दस सहस्र मुद्राएँ भेंट कीं।

सम्राट अकबर ने गुजरात आदि प्रान्तों के सूबेदारों को इस आशय के फरमान भी जारी किये कि मेरे राज्य में जैनों के तीर्थों, मन्दिरों और मूर्तियों को जो तनिक भी क्षति पहुंचायेगा वह भीषण दण्ड का भागी होगा। उसने जैन तीर्थों को राज्यकर से मुक्त किया, खम्भात की खाड़ी में मछलियों के शिकार पर प्रतिबन्ध लगाया, आषाढ़ी अष्टान्हिका के जैन पर्व में अमारि घोषणा की, वर्ष में सब मिलाकर डेढ़-पौनेदो सौ दिनों में सम्पूर्ण राज्य में पशुबध बन्द किया, गोरक्षा को प्रोत्साहन दिया।

उस काल के शिलालेखों, फरमानों आदि के अतिरिक्त तत्कालीन जैन साहित्यकारों ने भी सम्राट की भूरि-भूरि प्रशंसा की है—पाण्डे राजमल्ल (१५७५ ई०) ने लिखा है कि 'धर्म के प्रभाव से सम्राट अकबर ने जजियाकर बन्द करके यश का उपार्जन किया है, हिंसक वचन उसके मुख से भी नहीं निकलते थे, जीवहिंसा से वह सदा दूर रहता था, अपने धर्म राज्य में उसने द्यूतक्रीड़ा और मद्यपान का भी निषेध कर दिया था क्योंकि मद्यपान से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वह कुमार्ग में प्रवृत्ति करता है।' पाण्डे जिनदास ने भी 'जम्बूस्वामीचरित्र' (१५८५ ई०) में अकबर की सुनीति और सुराज्य की प्रशंसा की। कवि परिमल ने 'श्रीपालचरित्र' (१५९४ ई०) में सम्राट की प्रशंसा, उसके द्वारा गोरक्षा के लिए किये गये प्रयत्नों, आगरा नगर की सुन्दरता, वहां जैनविद्वानों के सत्समागम और उनकी नित्य होने वाली विद्वद्गोष्ठियों का वर्णन किया है। विद्याहर्षसूरि ने 'अंजनासुन्दरीरास' (१६०४ ई०) में जैन गुरुओं के प्रभाव से सम्राट द्वारा गाय, भैंस, बैल, बकरी आदि पशुओं के बध का निषेध, पुराने कैदियों की बन्दीगृह से मुक्ति, जैन संतों के प्रति आदर भाव, दान-पुण्य के कार्यों में उत्साह आदि का उल्लेख किया है। महाकवि बनारसीदास ने अपने आत्मचरित्र में लिखा है कि जब जौनपुर में अपनी किशोरावस्था में उन्होंने सम्राट अकबर की मृत्यु का समाचार सुना था तो वह मूर्छित होकर गिर पड़े थे तथा जनता में सर्वत्र त्राहि त्राहि मच गई थी।

सम्राट के मित्र एवं अमात्य अबुलफ़जल ने अपनी सुप्रसिद्ध 'आईने-अकबरी' में भी जैनों और उनके धर्म का विवरण दिया है। इस ग्रन्थ के निर्माण में उसने जैन विद्वानों का भी सहयोग लिया था—बंगाल आदि की राज्यवंशावली उन्हीं की सहायता से संकलित की गयी बताई जाती है। हीरविजयसूरि आदि कई जैन गुरुओं का उल्लेख भी उस ग्रन्थ में हुआ है। फतेहपुर सीकरी के महलों में अपने जैन गुरुओं के बैठने के लिए सम्राट ने विशिष्ट जैन कलापूर्ण पाषाणनिर्मित छतरी बनवाई थी जो 'ज्योतिषी की बैठक' कहलाती है। 'आईने-अकबरी' में सम्राट अकबर की कुछ उक्तियाँ भी संकलित हैं जो उसके जीवदया, शाकाहार, सामाजिक नैतिकता आदि विषयक मनोभावों की परिचायक हैं। पुर्तगाली जेसुइट पादरी पिन्हेरो ने १५९५ ई० में अपने बादशाह को आगरा से भेजे गये पत्र में लिखा था कि अकबर जैनधर्म का अनुयायी हो गया है, वह जैन नियमों का पालन करता है, जैन विधि से आत्मचिन्तन और आत्माराधन में बहुधा लीन रहता है, मद्य-मांस और द्यूत के निषेध की उसने आज्ञा प्रचारित कर दी है, इत्यादि। स्मिथ आदि अनेक आधुनिक इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं कि सम्राट अकबर जैनधर्म पर बड़ी श्रद्धा रखता था और जैनगुरुओं का बड़ा आदर करता था तथा यह कि उसके अहिंसा धर्म का पालन करने के कारण मुल्ला-मौलवी और अनेक मुसलमान सर्दार उससे असन्तुष्ट हो गये थे।

अस्तु, जैनधर्म के साथ इस सर्वधर्म समदर्शी उदार नरेश के क्या और कितने, कम या अधिक, सम्बन्ध रहे, यह विवादास्पद हो सकता है, तथापि जैन इतिहास में उसका उल्लेखनीय स्थान है, और वह इसलिए कि किसी भी जैनेतर, विशेषकर मुसलमान, सम्राट से जैनधर्म, जैनगुरुओं और जैन जनता को उस युग में जो उदार सहिष्णुता, संरक्षण, पोषण और सन्मान प्राप्त हो सकता था वह सम्राट अकबर के शासनकाल में जितना हुआ, उतना किसी भी अन्य शासन काल में नहीं हुआ। यहां तक कहा जाता है कि कई स्थानों से उसने जिन मन्दिरों को तोड़ कर उनके स्थान में बनाई गयी मस्जिदों को भी तुड़वाकर फिर से जिन मन्दिर बनवाने की आज्ञा दे दी थी। स्वयं उत्तर प्रदेश के सहारनपुर नगर के प्रसिद्ध सिंघियान जैन मन्दिर के विषय में ऐसी ही किंवदंती है। इसमें सन्देह नहीं है कि मुगल सम्राट अकबर के समय में उत्तर प्रदेश में जैनधर्म भली प्रकार फल-फूल रहा था। प्रायः सभी प्रमुख नगरों एवं कस्बों में धनी जैनों की अच्छी बस्तियाँ थीं और उनके धर्मायतन विद्यमान थे।

अकबर के उत्तराधिकारी जहांगीर (१६०५-२७ ई०) ने सामान्यतया अपने पिता की धार्मिक नीति का अनुसरण किया, अपने पूरे जन्ममानस में, सप्ताह में प्रत्येक गुरुवार एवं रविवार के दिन और अपने राज्याभिषेक

के दिन सम्पूर्ण राज्य में मांसाहार एवं प्राणिबध का निषेध कर दिया। यति मानसिंह को उसने 'युगप्रधान' उपाधि दी और उनके तथा अन्य जैन गुरुओं के साथ जब-तब दार्शनिक चर्चा भी करता था। उसके शासनकाल में प्रदेश में कई नवीन जिनमन्दिर भी बने, अपने धर्मोत्सव मनाने और तीर्थयात्रा करने की भी जैनों को स्वतन्त्रता थी। राजा भारमल, हीरानन्द मुकीम जैसे कई जैन सेठ सम्राट के कृपापात्र थे। ब्रह्मरायमल्ल, बनवारीलाल, विद्याकमल, ब्रह्मगुलाल, गुणसागर, त्रिभुवनकीर्ति, भानुकीर्ति, सुन्दरदास, भगवतीदास, कवि विष्णु, कवि नन्द, कवि जगत् आदि अनेक जैन साधु एवं गृहस्थ विद्वानों ने उस युग में निराकुलतापूर्वक साहित्य सेवा की, कवि जगत ने तो 'यशोधर चरित' में आगरा नगर की सुन्दरता, 'नृपति नूरदीशाहि' (जहांगीर) के चरित्र एवं प्रताप का तथा उसके सुख-शान्ति पूर्ण राज्य में हुए धर्मकार्यों का अच्छा वर्णन किया है। पण्डित बनारसीदास की विद्वद्गोष्ठी उस काल में आगरा नगर में जम रही थी और यह जैन महाकवि अपनी उदार काव्यधारा द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता को प्रोत्साहन दे रहे थे तथा अध्यात्मरस प्रवाहित कर रहे थे। ऐसी अनुश्रुति है कि यह पण्डित प्रवर जौनपुर के नवाब चिनकलीचखां के हिन्दी-संस्कृत के शिक्षक रहे थे, और जहांगीर के उत्तराधिकारी शाहजहां (१६२८-५८ई०) के मुसाहब भी रहे तथा बहुधा उसके साथ शतरंज खेला करते थे। जब चित्तवृत्ति राज्यसम्पर्क आदि लौकिक कार्यों से और अधिक विरक्ति हुई तो उन्होंने बादशाह की मुसाहबी से छुट्टी ले ली। उनकी विद्वद्गोष्ठी उत्साह के साथ चलती रही, जिसमें उच्च कोटि के दसियों विद्वान सम्मिलित होते थे। दिल्ली, लाहौर, मुल्तान आदि सुदूरस्थ प्रमुख नगरों के जैन विद्वानों से भी इस सत्संग का सम्पर्क बना रहता था। श्वेताम्बर यति एवं दिगम्बर भट्टारक, ऐल्लक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि राजधानी आगरा एवं प्रदेश में विचरते रहते थे। शीतल (या शान्ति) नामक एक नग्न जैन मुनि का भी उस काल में आगरा में आना पाया जाता है। संभवतया यह वही शीतलमुनि हैं जिनका १६४७ ई० में अयोध्या में समाधिमरण हुआ था—वहां एक टोंक में उनके लेखांकित चरणचिन्ह स्थापित हैं। उस काल में स्वयं बनारसीदास, भगवतीदास, पाण्डे हेमराज, पाण्डे रूपचन्द, पाण्डे हरिकृष्ण, भट्टारक जगत्भूषण, कवि सालिवाहन, यतिलूणसागर, पृथ्वीपाल, वीरदास, कवि सधारू, मनोहरलाल, खरगसेन, रायचन्द्र, जगजीवन आदि अनेक जैन विद्वानों ने विपुल साहित्य सृजन किया। स्वयं पं० बनारसीदास के 'अर्धकथानक' (१६४१ ई०) नामक अद्वितीय आत्मचरित्र में तो तत्कालीन केन्द्रीय एवं प्रान्तीय व स्थानीय शासन, वाणिज्य-व्यापार, लोकदशा राज्य में जैनों की स्थिति आदि का सजीव चित्रण प्राप्त होता है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से भी अमूल्य है। उससे यह भी विदित होता है कि प्रदेश के अयोध्या, वाराणसी, मथुरा, हस्तिनापुर, अहिच्छा आदि जैन तीर्थों पर यात्रियों का गमनागमन होता रहता था, और प्रायः सभी नगरों में अल्पाधिक संख्या में अग्रवाल, ओसवाल, श्रीमाल आदि जैन सेठ एवं व्यापारी पाये जाते थे। आगरा, फिरोजाबाद, जौनपुर, खैराबाद, शाहजहांपुर, इलाहाबाद, मेरठ, इटावा, कोल (अलीगढ़), सहारनपुर, वाराणसी, आदि जैनों के अच्छे केन्द्र थे।

शाहजहां का उत्तराधिकारी औरंगजेब (१६५८-१७०७ ई०) कट्टर मुसलमान और धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त असहिष्णु था, अतएव उसके समय में राज्य की नीति में भारी परिवर्तन हुआ। किन्तु प्रायः सम्पूर्ण भारतवर्ष पर उसका प्रभुत्व था, उसकी शक्ति और समृद्धि सर्वोपरि थी, शासनतन्त्र भी सुदृढ़ रहा और सामान्यतया साम्राज्य के केन्द्रीय भागों में अराजकता नहीं थी। उसके शासनकाल में जैनों को भी पहले जैसी धार्मिक स्वतन्त्रता तो नहीं थी, फिर भी उपाध्याय यशोविजय, आनन्दघन, देवब्रह्मचारी, भैया भगौतीदास, जगतराय, शिरोमणिदास, जीवराज, लक्ष्मीचन्द्र, भट्टारक विश्वभूषण, सुरेन्द्र भूषण, कवि विनोदीलाल आदि श्रेष्ठ जैन साहित्यकार हुए। अलाहाबाद के निकट शहजादपुर के निवासी कवि विनोदीलाल ने तो 'श्रीपाल चरित्र' (१६९० ई०) में लिखा है कि 'इस समय औरंगशाह बली का राज्य है, जिसने स्वयं अपने पिता को बन्दी बनाकर सिंहासन प्राप्त किया था और चक्रवर्ती के समान समुद्र से समुद्र पर्यन्त अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया।'

१५५६–१७०७ ई०, लगभग १५० वर्ष का अकबर आदि चार बादशाहों का समय मुगल साम्राज्य का उत्कर्षकाल एवं स्वर्णयुग था। मध्यकालीन उत्तर प्रदेश के जैन धर्म का भी वह स्वर्णयुग था। उस काल में प्रदेश में अनेक प्रसिद्ध धर्मप्राण एवं लौकिक अभ्युदय प्राप्त करने वाले जैन हुए, जिनमें से कई विशेष उल्लेखनीय हैं। भटानियाकोल (अलीगढ़) से आकर अर्गलपुर (आगरा) में बसने वाले अग्रवाल जैन पासा साहु के सुपुत्र टोडर साहु सम्राट अकबर के कृष्ण मंगल चौधरी नामक एक उच्चपदस्थ अधिकारी के विश्वस्त मन्त्री थे। आगरा की शाही टकसाल के अधीक्षक थे। स्वयं सम्राट तक उनकी पहुँच थी। उनकी धर्मात्मा भार्या का नाम कसूम्भी था, और ऋषभदास, मोहनदास, रूपचन्द एवं लछमनदास नाम के चार सुयोग्य पुत्र थे। सारा परिवार धार्मिक, विद्यारसिक और दानशील था। साहु टोडर ने राजाज्ञा लेकर मथुरा नगर के प्राचीन जैन तीर्थ का उद्धार किया था, प्राचीन स्तूपों के जीर्ण-शीर्ण हो जाने के कारण वहां ५१४ नवीन स्तूप निर्माण कराये, द्वादश दिक्पाल आदि की स्थापना की और १५७३ ई० में बड़े समारोह के साथ वहां प्रतिष्ठोत्सव किया जिसमें चतुर्विध संघ को आमन्त्रित किया था। आगरा नगर में भी उन्होंने एक भव्य जिनमंदिर बनवाया था, जिसमें १५९४ ई० में हमीरीबाई नाम की आत्मसाधिका ब्रह्मचारिणी रहती थी। मथुरातीर्थ के उद्धार के उपलक्ष्य में साहु टोडर ने पांडे राजमल्ल से संस्कृत में और पं० जिनदास से हिन्दी में 'जम्बूस्वामीचरित्र' की रचना कराई थी। उनके सुपुत्र साहु ऋषभदास ने पंडित नयविलास से आचार्य शुभचन्द्र के 'ज्ञानार्णव' नामक प्रसिद्ध जैन योगशास्त्र की संस्कृत टीका लिखाई थी।

सम्राट अकबर के एक शाही खजांची, शाही टकसाल के एक अधिकारी तथा कृपापात्र अनुचर अग्रवाल जैन साहरनवीरसिंह थे, जिनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर सम्राट ने उन्हें पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक जागीर प्रदान की थी। वहाँ उन्होंने सहारनपुर नगर बसाया, जिसकी शाही टकसाल के अध्यक्ष भी वही नियुक्त हुए। उन्होंने कई स्थानों में जैन मंदिर बनवाये। उनके पिता राजा रामसिंह भी राज्यमान्य व्यक्ति थे और सुपुत्र सेठ गुलाबराय भी।

कर्मचन्द बच्छावत बीकानेर राज्य के मन्त्री थे, किन्तु राजा रामसिंह किसी कारण उनसे रुष्ट हो गया तो वह आगरा सम्राट अकबर की शरण में चले आये और मृत्यु पर्यन्त यहीं रहे। सम्राट उनका बहुत मान करता था और मुख्यतया उन्हीं के माध्यम से उसका गुजरात के श्वेताम्बराचार्यों से सम्पर्क हुआ। आगरा के ओसवाल जैन सेठ हीरानन्द मुकीम अत्यन्त धनवान एवं धर्मात्मा सज्जन थे। शाहजादा सलीम (जहांगीर) के तो वह खास जौहरी और विशेष कृपापात्र थे। सन् १६०४ ई० में वह सम्राट एवं शाहजादे की अनुमतिपूर्वक एक विशाल जैन यात्रा संघ समोद शिखर ले गये। इस संघ में अनेक स्थानों के जैन सम्मिलित हुए, जिनमें जौनपुर से पं० बनारसीदास के के पिता खरगसेन जौहरी भी थे। बड़े ठाठ-बाट से यह तीर्थ यात्रा हुई, विपुल द्रव्य व्यय हुआ और पूरा एक वर्ष लग गया। जहांगीर के राज्याभिषेक के उपरान्त उनके उपलक्ष्य में सेठ हीरानन्द ने १६१० ई० में सम्राट को दरबारियों सहित अपने घर आमन्त्रित किया और बड़ी शानदार दावत दी। सेठ के आश्रित कवि जगत् ने इस समारोह का बड़ा आलंकारिक एवं आकर्षक वर्णन किया है। अगले वर्ष सेठ ने आगरा में यति लब्धिवर्धनसूरि से एक बिम्ब प्रतिष्ठा कराई। उनके पुत्र साह निहालचन्द्र ने भी १६३१ ई० में आगरा में एक प्रतिष्ठा कराई थी।

जहाँगीर के शासनकाल में ही आगरा में एक अन्य जैन धनकुबेर संघपति सबल सिंह मोठिया थे, जिनके राजसी वैभव और शाही ठाठ का पं० बनारसीदास ने आँखोदेखा वर्णन किया है। उससे प्रकट है कि उस काल के प्रमुख जैन साहूकार स्वयं मुगलों की राजधानी में भी कितने धन-वैभव सम्पन्न एवं प्रभावशाली थे। आगरा के जैन संघ की ओर से आचार्य विजयसेन को १६१० ई० में जो विज्ञप्तिपत्र भेजा गया था, उस पर वहां के जिन ८८ श्रावक-प्रमुखों और संघपतियों के हस्ताक्षर थे, उनमें सबलसिंह का भी नाम था। अन्य हस्ताक्षर करने वालों में वर्धमान कुँवरजी दलाल, जिनके साथ बनारसीदास आदि ने १६१८ ई० में अहिच्छत्रा और हस्तिनापुर की यात्रा

की थी, आगरा के मोतीकटरे में मोतियों का व्यापार करने वाले साह बन्दीदास, ताराचन्द्र साहु आदि सेठ थे। पं० बनारसीदास ने भी प्रारम्भ में जौनपुर में पिता के साथ जवाहरात का पैतृक व्यापार किया, फिर इलाहाबाद में भी कुछ दिन किया और अन्त में आगरा में आकर बस गये—वहीं अन्त तक व्यापार भी करते रहे और धर्म एवं साहित्य की साधना भी करते रहे।

आगरा जिले के टापू या टप्पल ग्राम के निवासी पद्मावती पुरवाल जैन ब्रह्मगुलाल चन्द्रवाड़ के चौहान राजा कीर्त्तिसिंह के दरबारी, सिद्धहस्त अभिनेता और कुशल लोक कवि थे—बाद में जैन मुनि हो गये थे। आगरा के अग्रवाल जैन सेठ तिहुना साहु ने एक विशाल जिनमंदिर (देहरा) बनवाया था जिसमें १६३५ ई० में प्रसिद्ध सिद्धान्त-मर्मज्ञ पं० रूपचन्द्र कुछ दिन रहे थे—पं० बनारसीदास और उनके साथियों ने इन्हें गुरु मान्य किया था। स्वयं पं० रूपचन्द कुहदेशस्थ सलेमपुर (शायद फर्रुखाबाद जिले में) के निवासी थे और वाराणसी में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी, कुछ दिन दरियापुर (बाराबंकी जिले का दरियाबाद) में भी रहे, दिल्ली और आगरा में भी रहे—अधिकतर समय उनका यत्र-तत्र भ्रमण, साहित्य सृजन और ज्ञान प्रसार में व्यतीत हुआ। शौरिपुर के भट्टारक जगत्भूषण की आम्नाय के गोलापूर्ववंशी श्रावक दिव्यनयन के पौत्र और मित्रसेन के पुत्र संघपति भगवानदास ने, जो बड़े धन सम्पन्न एवं धर्मात्मा थे, इन्हीं पंडितजी से १६३५ ई० में 'भगवत्-समवसरणार्चन-विधान' की संस्कृत भाषा में रचना कराई थी।

१६७१ ई० फतेहपुर के नवाब अलफखाँ के दीवान ताराचन्द्र ने यति लक्ष्मीचन्द्र से शुभचन्द्राचार्यकृत 'ज्ञानार्णव' का ब्रजभाषा में पद्यानुवाद कराया था। कुँवरपाल एवं सोनपाल दो ओसवाल जैन सहोदर थे और कुशल व्यापारी थे। ये आगरा के निवासी थे, किन्तु पटना जा बसे। उन्होंने मिर्जापुर में एक जिन मंदिर बनवाया था। बंगाल-बिहार के सुप्रसिद्ध जगत्सेठ घराने के पूर्वपुरुष हीरानन्द शाह भी आगरा के ही निवासी थे, जो १६६१ ई० के लगभग पटना में जा बसे थे।

१७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त मुग़ल साम्राज्य की शक्ति, विस्तार, समृद्धि और प्रतिष्ठा का द्रुतवेग से ह्रास होने लगा। नादिरशाह दुर्रानी और अहमदशाह अब्दाली के भयंकर आक्रमणों, लूटमार और नरसंहार ने उसे मृतप्राय कर दिया। रही-सही कसर मराठों और सिक्खों की लूट-पाट ने पूरी कर दी। साम्राज्य के सभी प्रान्तों के सूबेदार स्वतन्त्र हो गये, और स्वयं उत्तर प्रदेश में, अवध के नवाब, रुहेलखण्ड के रुहेले पठान और फर्रुखाबाद के बंगश पठान प्रायः स्वतन्त्र शासक बन गये। इस दुरावस्था का लाभ अंग्रेज व्यापारियों ने उठाया और बंगाल, कर्नाटक-मद्रास, बम्बई से शुरू करके अपनी राज्यसत्ता जमानी और उसका विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि एक सौ वर्ष के भीतर ही देश का राजनैतिक मानचित्र सर्वथा बदल गया, और १८५७ ई० के स्वातन्त्र्य समर की सफलता के बाद तो अंग्रेज ही पूरे देश के निष्कंटक शासक बन गये। इस प्रकार डेढ़ सौ वर्ष (१७०७-१८५७) का यह काल भारतीय इतिहास का अन्धयुग है और उसका इतिहास अराजकता, विश्रृंखलता, अशान्ति, नैतिक पतन तथा थोड़े से सर्वथा अपरिचित विदेशियों द्वारा इस महादेश को पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ते जाने का ही लज्जाजनक इतिहास है। उस युग में घोर अराजकता, अशान्ति, मारकाट, लूटखसोट, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध एवं सर्वव्यापी पतन के बीच, जब छोटे-बड़े किसी की भी मान-मर्यादा, प्राण और धन सुरक्षित नहीं थे, धर्म और संस्कृति जैसे प्रकाशपुंजों की बात उठाना ही व्यर्थ है—उनकी ओर ध्यान देने का किसे अवकाश था। भारतवर्ष के अन्य भागों की अपेक्षा भी उत्तर प्रदेश में स्थिति अधिक शोचनीय थी। उस काल के बादशाह, राजे, रईस, नवाब, सामन्त और सरदार अधिकतर या तो निर्मम लुटेरे एवं क्रूर अत्याचारी थे, अथवा कायर, आलसी, विलासी और दुराचारी थे। किसी को भी अपनी स्थिति के स्थायित्व का

भरोसा न था। प्रदेश में उस काल में किसी भी तेजस्वी महात्मा, सन्त, समाज सुधारक या निस्पृह जननेता के हुए होने का पता नहीं चलता। लोगों की समस्त उच्च एवं शुभ या सद्प्रवृत्तियाँ लुंठित-कुंठित हो गईं थीं। जनजीवन सत्त्वविहीन सा था। सार्वजनिक शिक्षा का अभाव, रूढ़िवादिता, संकीर्णता, अंधविश्वास और कुरीतियाँ प्राय: प्रत्येक समाज में घर कर गई थीं। प्रदेश की जैन जनता भी इन दुष्प्रभावों से अछूती नहीं बची। पंथवाद और साम्प्रदायिक वैमनस्य भी उभरने लगे।

जैनों की संख्या, समृद्धि और धार्मिकता पर भी विपरीत प्रभाव पड़े ही। तथापि प्रदेश के जिन नगरों, कस्बों और ग्रामों में वे बसे हुए थे, वहाँ-वहाँ बने भी रहे, और जब कभी तथा जहाँ-कहीं कुछ शान्ति या सुशासन रहा तो उन्होंने उसका लाभ भी उठाया। जब १७२२ ई० में सादतखाँ अवध का सूबेदार नियुक्त हुआ, जो अवध की नवाबी का संस्थापक भी हुआ, तो उसके साथ दिल्ली से उसके खजांची लाला केशरीसिंह भी साथ आये, जो अग्रवाल जैन थे। अयोध्या ही उस समय सूबे की राजधानी थी। उन्होंने १७२४ ई० में ही उक्त तीर्थ के पाँच प्राचीन जिनमंदिरों एवं टोंकों का जीर्णोद्धार कराया और इस आदि जैन तीर्थ के विकास एवं जैनों के लिए उसकी यात्रा का मार्ग प्रशस्त किया। इस समय के लगभग झांसी ज़िले के निवासी मंजु चौधरी उड़ीसा प्रान्त के कटक नगर में जा बसे और थोड़े ही वर्षों में वहाँ अत्यधिक मान और प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। अवध के नवाब आसफ़ुद्दौला (१७७५–१७९७ ई०) के समय में नवाब के ख़ास जौहरी लखनऊ के ओसवाल जैन बच्छराज नाहटा थे जिन्हें नवाब ने 'राजा' की उपाधि दी थी। उसी समय खरतरगच्छाचार्य जिनअक्षयसूरि ने लखनऊ के सोंधी टोला स्थित यतिछत्ता में अपनी गद्दी स्थापित की और पार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर बनवाया, जो इस नगर का सर्वप्राचीन श्वेताम्बर मन्दिर है। दिगम्बर मन्दिर मच्छीभवन (लछमन टीला) के निकट, जहाँ विक्टोरिया पार्क है, पहले से ही विद्यमान था। राजा बच्छराज नाहटा आदि लखनऊ निवासी ३६ श्वेताम्बर श्रावक-श्राविकओं ने एक सचित्र विज्ञप्तिपत्र भेज कर दिल्ली से भट्टारक जिनचन्द्रसूरि को भी आमन्त्रित किया था। सन् १८०० ई० के लगभग दिल्ली के शाही ख़ज़ांची राजा हरसुखराय एवं उनके सुपुत्र राजा सुगनचन्द्र ने हस्तिनापुर तीर्थ का पुनरुद्धार किया और वहाँ एक अति विशाल दिगम्बर जैन मन्दिर निर्माण कराया था। उन्होंने अन्य अनेक स्थानों में भी जिनमन्दिर बनवाये थे। प्रयाग (इलाहाबाद) के साहु होरीलाल ने १८२४ ई० में कौशाम्बी के निकट प्रभास पर्वत (पभोसा) पर जिनमन्दिर बनवाया था। प्राय: इसी समय सहारनपुर के संस्थापक साह रनवीरसिंह के वंशज सालिगराम अंग्रेज सरकार की ओर से दिल्ली के खजांची नियुक्त हुए थे। मथुरा के प्रसिद्ध सेठ घराने का उदयकाल भी प्राय: यही है। इस घराने के प्रथम पुरुष सेठ मनीराम ने मथुरा के चौरासी टीले पर जम्बूस्वामी का मन्दिर बनवाया और नगर में द्वारकाधीश का सुप्रसिद्ध मन्दिर भी बनवाया। अलीगढ़ निवासी आध्यात्मिक संतकवि पं० दौलतराम जी का सेठ मनीराम बड़ा आदर करते थे और उन्हें कुछ समय अपने पास बुलाकर भी रखा था। मनीराम के सुपुत्र सेठ लक्ष्मीचन्द के समय में मथुरा का यह सेठ घराना अपने चरमोत्कर्ष पर था और वे अंग्रेजों द्वारा भी सम्पूर्ण भारत के अग्रणी साहूकारों में मान्य किये जाते थे। तदनन्तर, सेठ रघुनाथ दास एवं उनके पुत्र राजा लक्ष्मणदास के समय तक भी इस सेठ घराने की आन-बान बहुत कुछ बनी रही। कलकत्ता के विश्वविश्रुत उद्यान-मन्दिर (शीतलनाथ जिनालय) के निर्माता राय बद्रीदास मूलत: लखनऊ के ही निवासी थे जो १९वीं शती के मध्य के लगभग कलकत्ता जा बसे थे और वहीं जवाहरात का अपना पैतृक व्यापार अपूर्व सफलता के साथ चलाया था।

इस अराजकता काल में उत्तर प्रदेश में कई जैन विद्वान, साहित्यकार एवं कवि भी हुए, यथा हथिकन्त के भट्टारक विश्वभूषण, पं० जिनदास, पं० हेमराज (इटावा), कवि बुलाकीदास (आगरा), कविवर द्यानतराय

(आगरा), कवि भूधरमल्ल या भूधरदास (आगरा), जयपुर के सुप्रसिद्ध वचनिकाकार पं० दौलतराम भी कुछ समय आगरा में रहे, भट्टारक ललितकीर्ति, भ० सुरेन्द्र भूषण, पांडे हरिकृष्ण, केशोदास, पांडे लालचन्द, नथमल बिलाला, विलासराय, कवि देवदत्त, इन्द्रजीत, गुलाबराइ, झुनकलाल, प्रागदास, मनसुखसागर, भूधर मिश्र, कमल नयन, सदानन्द, हीरालाल, सन्तकवि पं० दौलतराम, नन्दराम, छत्रपति आदि।

आधुनिक युग

१८५७ से १९४७ ई० पर्यन्त के समय को आधुनिक युग ही कह सकते हैं, जिसका प्रारम्भ १८५७ ई० के स्वातन्त्र्य समर की विफलता के परिणामस्वरूप प्रदेश में अंग्रेजी शासन की पूर्णतया स्थापना से होता है। उक्त समर का, जिसे इतिहास पुस्तकों में बहुधा ग़दर या सिपाहीविद्रोह कहा गया है, प्रधान रणक्षेत्र उत्तर प्रदेश ही था, और प्रदेश के निवासी जैनों ने भी उसके कुफल एवं सुफल भोगे तथा उसमें योग भी दिया। एक ओर देश विदेशी दासता में बंधा और शासकों ने अपने देश और जाति के हित में उसका भरपूर शोषण किया, तो दूसरी ओर चिरकाल के उपरान्त पुनः जनता ने सुख-शान्ति की सांस ली। सुचारु शासन व्यवस्था, न्याय प्रशासन, धन-जन की सुरक्षा, व्यापार आदि की उन्नति, शिक्षा का प्रचार-प्रसार, धार्मिक स्वतन्त्रता, सामाजिक सुधार, राष्ट्रीय भावना की जागृति और स्वतन्त्रता के लिए छिड़ा चिरकालीन संघर्ष—इस युग की प्रयुख विशेषताएँ रहीं। उद्योग-धन्धों और यातायात एवं संचार के साधनों में द्रुत विकास, छापेखाने का प्रचार, समाचार पत्रों का प्रकाशन और राष्ट्रीय, सामाजिक एवं धार्मिक जागृति के उद्भावक प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में अनेक सच्चे नेताओं का उदय—सबने मिलकर देश के सर्वतोमुखी पुनरुत्थान की साधना में योग दिया।

उत्तर प्रदेश की जैन समाज ने भी उपरोक्त सभी सद्प्रवृत्तियों में अपने आन्तरिक उत्थान के हित भी, और प्रदेश एवं राष्ट्र के सार्व उत्थान के लिए भी, अपनी संख्या एवं शक्ति के अनुपात में पर्याप्त योग दिया और परिणामों का लाभ उठाया। विविध प्रकार के अनेक संगठन, सभाएँ, संस्थाएँ स्थापित कीं, सुधार आन्दोलन चलाकर अनेक सामाजिक कुरीतियाँ दूर कीं। जहाँ कहीं भी जैनों की तनिक भी अच्छी बस्ती रही, एकाधिक समाजसेवी, धर्मप्रेमी, शिक्षा प्रचारक नेता और कार्यकर्त्ता हुए। उनमें त्यागी संत भी थे यथा यति नयनसुखदास, ब्र० भगवानदास, ब्र० शीतल प्रसाद, पं० गणेश प्रसाद वर्णी, बाबा भागीरथ वर्णी, बाबा लालमनदास, महात्मा भगवानदीन आदि; पुरानी शैली के शास्त्री पं० भी थे, यथा पं० वृन्दावनदास, पं० बलदेवदास पाटनी, गुरु गोपालदास बरैया, पं० पन्ना लाल न्यायदिवाकर, पं० उमराव सिंह, पं० माणिक चन्द्र, पं० नरसिंहदास, पं० श्रीलाल आदि; पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त समाजचेता यथा राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद, बाबू दयाचन्द गोयलीय, बैरिस्टर जगमन्दर लाल जैनी, बैरिस्टर चम्पतराय, मास्टर चेतन लाल, मुंशी मुकुन्दराय, बाबा सूरजभान वकील, पं० जुगल किशोर मुख्तार, जोती प्रसाद 'प्रेमी', भोलानाथ दरख्शाँ, बाबू सुल्तान सिंह वकील, बाबू ऋषभदास वकील, बाबू अजित प्रसाद वकील, रा० ब० द्वारका प्रसाद इंजीनियर, डिप्टी कालेराय, डिप्टी नन्दकिशोर, डिप्टी उजागरमल आदि; सेठों में मथुरादास टड़ैया ललितपुर, मथुरा के सेठ रघुनाथदास और राजा लक्ष्मणदास, साहु चंडी प्रसाद धामपुर, लाला

जम्बूप्रसाद सहारनपुर, साहु सलेखचन्द एवं रा०ब० जुगमन्दर दास नजीबाबाद इत्यादि। विभिन्न क्षेत्रों के अनगिनत महानुभाव रहे। उत्तर प्रदेश के जैनधर्म, संस्कृति और समाज का जैसा कुछ भवन वर्तमान है, इस युग में उसकी नींव बनकर उसके पुनर्निर्माण का श्रेय उपरोक्त तथा तद्प्रभृति सज्जनों को ही है।

अस्तु सभ्य युग के आदिम काल से वर्तमान पर्यन्त महादेश भारतवर्ष के सांस्कृतिक हृत्प्रदेश इस उत्तर प्रदेश का जैन धर्म और उसकी संस्कृति के साथ अविच्छिन्न घनिष्ठतम सम्बन्ध रहता आया है। प्रदेश के सौभाग्य-दुर्भाग्य, उत्थान-पतन, सुख-दुख को प्रदेश के जैनों ने सदैव से उसके अभिन्न अंग के रूप में भोगा है और सदैव भोगेंगे। प्रदेश के जनजीवन और राष्ट्रीय जीवन के वे अभिन्न अंग हैं और रहेंगे। उनकी संस्कृति समृद्ध है और धर्म एवं दर्शन प्राणवान हैं—

पत्ता-पत्ता बूटा-बूटा हाल हमारा जाने है।
जाने न जाने गुल ही न जाने, बाग तो सारा जाने है॥

उत्तर प्रदेश के जैन तीर्थ एवं सांँस्कृतिक केन्द्र

"सिद्धक्षेत्रे महातीर्थे पुराणपुरुषाश्रिते ।
कल्याणकलिते पुण्ये ध्यानसिद्धिःप्रजायते ।।" --ज्ञानार्णवः

अमरकोषकार ने 'निपान-आगमयोस्तीर्थम्-ऋषि जुष्टे जलेगुरौ' सूत्र द्वारा 'तीर्थ' शब्द के अनेक अर्थ किये हैं । मूलतः सागरतीरवर्ती वह स्थान अथवा नदी का वह घाट जहाँ से उसे पार किया जाता है, 'तीर्थ' कहलाता है । अतएव जो तिरादे या पार करा दे, अथवा तिरने या पार हो जाने में जो सहायक हो, साधक हो वही 'तीर्थ' है । प्रतीकार्थ में, जिस धर्मशासन के आश्रय से जन्म-मरण रूप दुःखार्णव से पार होकर समस्त आत्मविकारों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है, उसे भी 'तीर्थ' कहते हैं, और तब वह 'धर्म' का पर्यायवाची होता है । उस धर्म-तीर्थ के प्रवर्त्तक, उद्धारक एवं व्यवस्थापक 'तीर्थंकर' कहलाते हैं । वे तथा उनके अनुसर्त्ता, मोक्षमार्ग के एकनिष्ठ साधक मुनि, आर्यिका आदि गुरु जंगमतीर्थ कहलाते हैं—इसीलिए उन्हें 'तिन्नाणं तारयाणं' अर्थात् तरण-तारण कहा जाता है । उनसे सम्बद्ध भूमियाँ, स्थल आदि स्थावर तीर्थ कहलाते हैं ।

ऋषभादि चौवीस तीर्थंकरों में से अंतिम, वर्धमान महावीर के उदय से पूर्व प्रबुद्ध जगत में एक बेचैनी थी, जिसकी अभिव्यक्ति पार्श्वपरम्परा के महावीरकालीन केशिमुनि के शब्दों में ध्वनित है—

**अंधियारे तमे घोरे, चिट्ठंति पाणिणो बहू ।
को करिस्सेइ उज्जोयं, सव्व लोगंमि पाणिणं ।।**

और उसका उत्तर महावीर के प्रधान शिष्य, गौतम गणधर ने तत्काल दिया था—

**उग्गओ विमलो भाणू, सव्वलोगप्पभकरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्व लोगंमि पाणिणं ।।**

और समस्त लोक के हृदय को आलोकित करने वाला वह विमल भास्कर था—

**णिस्संसयकरो महावीरो जिणुत्तमो ।
रागदोस-भयादीदो धम्मतीत्थस्सकारओ ।।**

इस प्रकार, महावीर प्रभृति तीर्थंकरों ने सर्वज्ञ-वीतराग-सर्वहितंकर बनकर धर्म-तीर्थ की स्थापना द्वारा प्राणियों के अभ्युदय एवं निःश्रेयस का पथ प्रशस्त किया था । डूबती उतराती चेतनाओं से ओत-प्रोत विश्व-प्रवाह को अपनी साधना से काटकर जो आत्मानुभूति में स्थित हो रहता है, ऐसा परम साधक और सिद्ध ही तीर्थंकर होता है—

मनुष्य से ईश्वर बनने की प्रक्रिया ही तीर्थंकरत्व है, और संसार-प्रवाह से बचने की प्रक्रिया ही 'तीर्थ' है। इस धर्म-तीर्थ और संस्कृति का अविनाभावी सम्बंध है—एक दूसरे का पूरक है। धर्म संस्कृति को ऐतिहासिकता एवं विशिष्टता प्रदान करता है तथा उसे अवगाहन योग्य बनाता है, तो संस्कृति अपने गतिशील आंतरिक संस्पर्श से धर्म को संवेदनशील, सप्राण एवं परिस्थितियों में सक्षम बनाये रखती है।

उक्त भाव-तीर्थ के भौतिक प्रतीक वे पावन स्थल हैं जहाँ तीर्थंकरों को गर्भावतरण, जन्मोत्सव, दीक्षाग्रहण, केवलज्ञान प्राप्ति और निर्वाणलाभ हुआ था, जहाँ अन्य मोक्षगामी महापुरुषों ने तप किया या सिद्धि प्राप्त की, अन्य विशिष्ट धार्मिक घटनाओं, अतिशय आदि से सम्बद्ध पवित्र स्थान, तथा प्राचीन कलाधाम जो अपने विविध एवं महत्त्वपूर्ण मंदिरों, मूर्त्तियों या अन्य धार्मिक कलाकृतियों के लिए प्रसिद्ध हैं।

ये प्रायः सब जैन संस्कृति के केन्द्र चिरकाल से रहते आये हैं, और प्रत्येक वर्ष विभिन्न समयों में सहस्त्रों जैन तीर्थयात्री इन तीर्थक्षेत्रों की यात्रार्थ देश के कोने-कोने से आते रहते हैं। उत्तर प्रदेश जैनधर्म और संस्कृति का उद्गम स्थान एवं उनका सहस्त्राब्दियों से लीलाक्षेत्र रहा आया, अतएव इस प्रदेश में पचासों जैन तीर्थ सप्राण बने हुए हैं। एक प्रसिद्ध पाश्चात्य पुरातत्त्व सर्वेक्षक ने कहा है कि भारतवर्ष के किसी भी स्थान को केन्द्र मानकर यदि बारह मील अर्धव्यास का वृत्त खींचा जाय तो उसके भीतर एकाधिक प्राचीन, मध्यकालीन अथवा अर्वाचीन जैन मंदिर, स्मारक या भग्नावशेष अवश्य प्राप्त हो जायेंगे। उत्तर प्रदेश के विषय में भी यह बात पूरी तरह लागू है। प्रदेश में अनेक स्थान आज ऐसे भी हैं जहाँ वर्तमान में आस-पास भी कोई जैन नहीं रहता, किन्तु पूर्वकाल में कभी वह अच्छा जैन केन्द्र या धार्मिक स्थल रहा था, और इसीलिए पुराने मकानों, हवेलियों आदि के खंडहरों में से, खेतों, कुओं और बावड़ियों में से, नदियों के तल से भी, प्राचीन जैन मूर्त्तियाँ आदि जब-तब निकलती रहती हैं। यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि उत्तर प्रदेश के अनेक प्राचीन ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र, यथा श्रावस्ती, अहिच्छत्रा, कौशाम्बी, शौरिपुर, हस्तिनापुर, देवगढ़, काकंदी आदि विस्मृति के गर्भ में समाजाने से इसी कारण सुरक्षित रह सके क्योंकि जैनीजन उन्हें अपने पवित्र तीर्थस्थान मानते रहे और मध्यकाल में भी उनकी यात्रार्थ बराबर आते रहे।

उत्तर प्रदेश के जैन तीर्थों एवं सांस्कृतिक केन्द्रों को स्थूलतया छः वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) तीर्थंकर जन्मभूमियाँ,
(ख) अन्य कल्याणक क्षेत्र,
(ग) तपोभूमियाँ एवं सिद्धभूमियाँ,
(घ) महावीर विहार स्थल,
(च) अतिशय क्षेत्र एवं कलाधाम, और
(छ) अर्वाचीन प्रसिद्ध एवं दर्शनीय मंदिर।

(क) तीर्थंकर जन्मभूमियां

उत्तर प्रदेश में अयोध्या, श्रावस्ती, कौशाम्वी, वाराणसी, चन्द्रपुरी, काकंदी, सिंहपुरी, काम्पिल्य, रत्नपुरी, हस्तिनापुर और शौरिपुर विभिन्न तीर्थंकरों की जन्मभूमियाँ रही हैं।

अयोध्या

फ़ैज़ावाद जिले में फ़ैज़ाबाद नगर से ५ मील तथा अयोध्या रेलवे स्टेशन से एक मील की दूरी पर, सरयू (घाघरा) नदी के तट पर स्थित अयोध्या भारतवर्ष की प्राचीनतम महानगरियों एवं परम पुनीत धर्मतीर्थों में परिगणित है। जैन, वैष्णव और बौद्ध ही नहीं, मुसलमान भी इस नगरी को अपना पवित्र तीर्थ मानते आये हैं। इस नगरी का सांस्कृतिक महत्त्व इतना अधिक रहा कि सुदूर पूर्व बर्मा, स्याम आदि देशों में भी अबसे डेढ़-दो सहस्त्र वर्ष

पूर्व इस नाम के (अयोध्या, जूथिया आदि) नगर बसे। परन्तु इस नगर से सम्बंधित उक्त विभिन्न धर्मों की अनुश्रुतियों एवं उनके साहित्यों में प्राप्त इसके उल्लेखों से प्रतीत होता है कि इस नगर का मूलतः सम्बंध जैन परम्परा के साथ ही रहा ओर उसकी तत्सम्बंधी मान्यताएँ ही प्रकारान्तर से उक्त अन्य धर्मों की अनुश्रुतियों में अल्पाधिक प्रतिबिम्बित हुईं।

जैन मान्यता के अनुसार अयोध्या एक शाश्वत तीर्थ है। प्रत्येक कल्पकाल में सर्वप्रथम इसी नगर का देवताओं द्वारा निर्माण होता है और यहीं उस कल्पकाल के चौबीसों तीर्थंकरों का जन्म होता है। वर्तमान कल्पकाल में भी जिस स्थान पर अयोध्या विद्यमान है, वहीं चौदह में से विमलवाहन आदि सात कुलकरों या मनुओं ने जन्म लिया था और अपने समकालीन मानवों का पथ प्रदर्शन किया था। अंतिम मनु नाभिराय अपनी संगिनी मरुदेवी के साथ यहीं निवास करते थे, और यहीं उनके पुत्र, आदि-तीर्थंकर ऋषभदेव का जन्म हुआ था, जिनके अपरनाम आदिदेव, आदिनाथ, आदिपुरुष, स्वयंभु, प्रजापति, पुरुदेव, कश्यप और इक्ष्वाकु थे। इन्हीं के जन्म के उपलक्ष्य में देवराज इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने भारतवर्ष की इस आद्यनगरी का निर्माण किया था। मनुपुत्र ऋषभदेव इक्ष्वाकु ही इस नगर के प्रथम नरेश थे, और इसी नगर में उन्होंने मानवों को लोकधर्म एवं आत्मधर्म का सर्वप्रथम उपदेश दिया था। उनके उपरान्त हुए अन्य २३ तीर्थंकरों में से २२ उन्हीं के इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए थे, जिनमें से अजितनाथ, अभिनन्दनाथ, सुमतिनाथ और अनन्तनाथ, क्रमशः दूसरे, चौथे, पांचवे और चौदहवें तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान नामक चार-चार कल्याणक अयोध्या में ही हुए। इस प्रकार अयोध्या इस कल्पकाल के पांच तीर्थंकरों की जन्मभूमि रही।

ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत इस महादेश के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट थे और उन्हीं के नाम पर देश का भारतवर्ष नाम प्रसिद्ध हुआ—इस विषय में जैन एवं ब्राह्मणीय पुराण ग्रन्थ एकमत हैं। अनुश्रुति है कि भगवान ऋषभदेव के निर्वाणोपलक्ष में भरत चक्रवर्ती ने अयोध्या में एक उत्तुंग सिंह-निषद्या निर्माण कराई थी तथा नगर के चारों महाद्वारों पर २४ तीर्थंकरों की निज-निज शरीर प्रमाण प्रतिमाएँ स्थापित की थीं—पूर्व द्वार पर ऋषभ और अजित की, दक्षिण द्वार पर संभवादि चार की, पश्चिम द्वार पर सुपार्श्वादि आठ की, और उत्तर द्वार पर धर्मनाथादि देश की। उन्होंने एक सौ स्तूप एवं जिनमंदिर भी इस नगर में निर्माण कराये थे। भरत के उपरान्त सुभौम, सगर, मघवा आदि कई अन्य चक्रवर्ती सम्राट भी अयोध्या में हुए और महाराज रामचन्द्र एवं लक्ष्मण जैसे शलाकापुरुषों को जन्म देने का श्रेय भी अयोध्या को ही है। रामचन्द्र दीक्षा लेने के बाद पद्ममुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए और अर्हत् परमेश्वर बनकर मोक्ष गये। महारानी सीता की गणना जैन परम्परा की सोलह आदर्श महासतियों में है। यज्ञों में पशुबलि के प्रश्न को लेकर नारद और पर्वत के बीच राजा वसु की राजसभा में होने वाला विवाद भी एक अनुश्रुति के अनुसार अयोध्या में ही हुआ था। राजनर्त्तकी बुद्धिषेणा और प्रीतंकर एगं विचित्रमति नामक मुनियों की कथा का तथा अन्य अनेक जैन पुराण-कथाओं का घटनास्थल यह नगर रहा। अन्तिम तीर्थंकर महावीर अपने एक पूर्व भव में भगवान ऋषभदेव के पौत्र एगं भरत चक्री के पुत्र मरीचि के रूप में अयोध्या में जन्म ले चुके थे, और अन्तिम भव में, तीर्थंकर महावीर के रूप में भी वह अयोध्या पधारे, यहां के सुभूमिभाग उद्यान में उन्होंने मुमुक्षुओं को धर्मामृत पान कराया तथा कोटिवर्ष के राजा चिलाति को जिनदीक्षा दी थी। उनके नवम गणधर अचलभव का जन्म भी अयोध्या में ही हुआ था।

वस्तुतः, प्राचीन कोसल महाराज्य अथवा महाजनपद का केन्द्र, प्राचीन भारत की दश महाराजधानियों एवं उत्तरापथ की पांच महानगरियों में परिगणित, अयोध्या अपरनाम साकेत, इक्ष्वाकुभूमि, विनीता, सुकोशला, कोशलपुरी, अवध या अवधपुरी के जितने सुन्दर, विशद और अधिक उल्लेख एवं वर्णन प्राचीन जैन साहित्य में प्राप्त हैं,

उतने अन्यत्र नहीं हैं। पउमचरिउ, पद्मपुराण, स्वयंभू रामायण, आदिपुराण, उत्तरपुराण, वृहत्कथाकोष, तिलकमंजरी, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पंपरामायण विविधतीर्थकल्प आदि जैन ग्रन्थों के अनेक पृष्ठ तीर्थंकरों की इस जन्मभूमि की प्रशंसा में रंगे पड़े हैं। देवों द्वारा निर्मित, शत्रुविहीन, विनीत सभ्यों का निवासस्थान, भव्य भवनों से सुशोभित, सुनियोजित, भारतवर्ष के मध्य देश का शिरोभूषण, वसुंधरा की मुकुटमणि, समस्त आश्चर्यों का निधान (सर्वाश्चर्य निधानमुत्तर कौसलेष्वयोध्येति यर्थाथभिधाना नगरी-धनपालकृत तिलकमंजरी) यथानाम तथा गुण इस परम पावन आद्यतीर्थस्थली अयोध्या का महात्म्य बखानते जैन ग्रन्थकार अघाते नहीं और धार्मिक जन इसकी यात्रा का सौभाग्य प्राप्त करने के लिए सदा लालायित रहते आये हैं।

महावीर निर्वाण के लगभग एक सौ वर्ष पश्चात मगधनरेश नन्दिवर्धन ने इस नगर में मणिपर्वत नामक उत्तुंग जैन स्तूप बनवाया था, जिसकी स्थिति वर्तमान मणिपर्वत टीला सूचित करता है। मौर्य सम्राट सम्प्रति और वीर विक्रमादित्य ने इस क्षेत्र के पुराने जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार एवं नवीनों का निर्माण कराया था। गुजरात नरेश कुमारपाल चौलुक्य (सोलंकी) ने भी यहां जिनमंदिर बनवाये बताये जाते हैं। दसवीं-ग्यारहवी शती ई० में यहाँ जैन धर्मावलंबी श्रीवास्तव्य कायस्थ राजाओं का शासन था, जिन्होंने सैयद सालार मसउद गाजी को, जो अवध प्रान्त पर आक्रमण करने वाला संभवतया सर्व प्रथम मुसलमान था, वीरता पूर्वक लड़कर खदेड़ भगाया था। सन् ११९४ ई० के लगभग दिल्ली विजेता मुहम्मद गोरी के भाई मखदूमशाह जूरन गोरी ने अयोध्या पर आक्रमण किया और ऋषभदेव जन्मस्थान के विशाल जिनमंदिर को ध्वस्त करके उसके स्थान पर मसजिद बना-दी, किन्तु स्वयं भी युद्ध में मारा गया और उसी स्थान पर दफनाया गया जो अब शाहजूरन का टीला कहलाता है। उसी टीले पर, मसजिद के पीछे की ओर, आदिनाथ का एक छोटा सा जिनमंदिर तो थोड़े समय पश्चात ही पुनः बनगया किन्तु चिरकाल तक उसका चढ़ावा अयोध्या के बकसरिया टोले में रहने वाले शाहजूरन के वंशज ही लेते रहे।

सन् १३३० ई० के लगभग जैनाचार्य जिनप्रभसूरि ने दिल्ली के सुलतान मुहम्मद बिन तुगलुक से फर्मान प्राप्त करके संघ सहित अयोध्या तीर्थ की यात्रा की थी। उन्होंने अपने विविधतीर्थकल्प के अन्तर्गत अयोध्यापुरीकल्प में लिखा है कि उस समय वहाँ जन्म लेने वाले पांचों तीर्थंकरों के मंदिरों के अतिरिक्त, राजा नाभिराय (ऋषभदेव के पिता) का मंदिर, पार्श्वनाथ की बाड़ी, चक्रेश्वरी (ऋषभदेव की यक्षि) की रत्नमयी प्रतिमा, इसके संगी गोमुख यक्ष की मूर्ति, सीताकुंड, सहस्त्रधारा, स्वर्गद्वार आदि जैनधर्मायतन विद्यमान थे, तथा नगर के प्राकार पर मत्तगयंद यक्ष का निवास था, जिसके आगे उस समय भी हाथी नहीं आते थे, जो आते भी थे वे तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे।

१५२८ ई० में मुगल बादशाह बाबर ने अयोध्या पर आक्रमण करके रामकोट में स्थित रामजन्मस्थान के मंदिर को तोड़ कर मसजिद बनाई लौर उपरोक्त जैन मंदिरों में से भी कुछ को तुड़वाया लगता है। अकबर के उदार शासन में अयोध्या में जैन और हिन्दू मंदिरों का पुनः निर्माण हुआ और तीर्थयात्री भी आने लगे। वस्तुतः मध्यकाल में अयोध्या तीर्थ की यात्रार्थ आनेवाले अनेक जैन यतियों, मुनियों, भट्टारकों, अन्य त्यागियों एवं गृहस्थों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। नगर के मुहल्ला कटरा में एक टोंक में एक जैन महात्मा के चरणचिन्ह स्थापित हैं, जिन पर अंकित लेख से विदित होना है कि वहाँ सीतल नाम के दिगम्बर जैन मुनिराज ने समाधिमरण किया था, जिसकी स्मृति में ब्रह्मचारी मानसिंह के पुत्र ने बैसाख सुदी ८ सोमवार, संवत् १७०४ (सन् १६४७ ई०—शाहजहाँ के राज्यकाल) में उक्त चरणचिन्हों को प्रतिष्ठापित किया था। यह सीतलमुनि वही प्रतीत होते हैं जो कविवर बनारसीदास के समय में आगरा पधारे थे। स्वयं बनारसीदास अपनी युवावस्था में अपने कई साथियों सहित जौनपुर
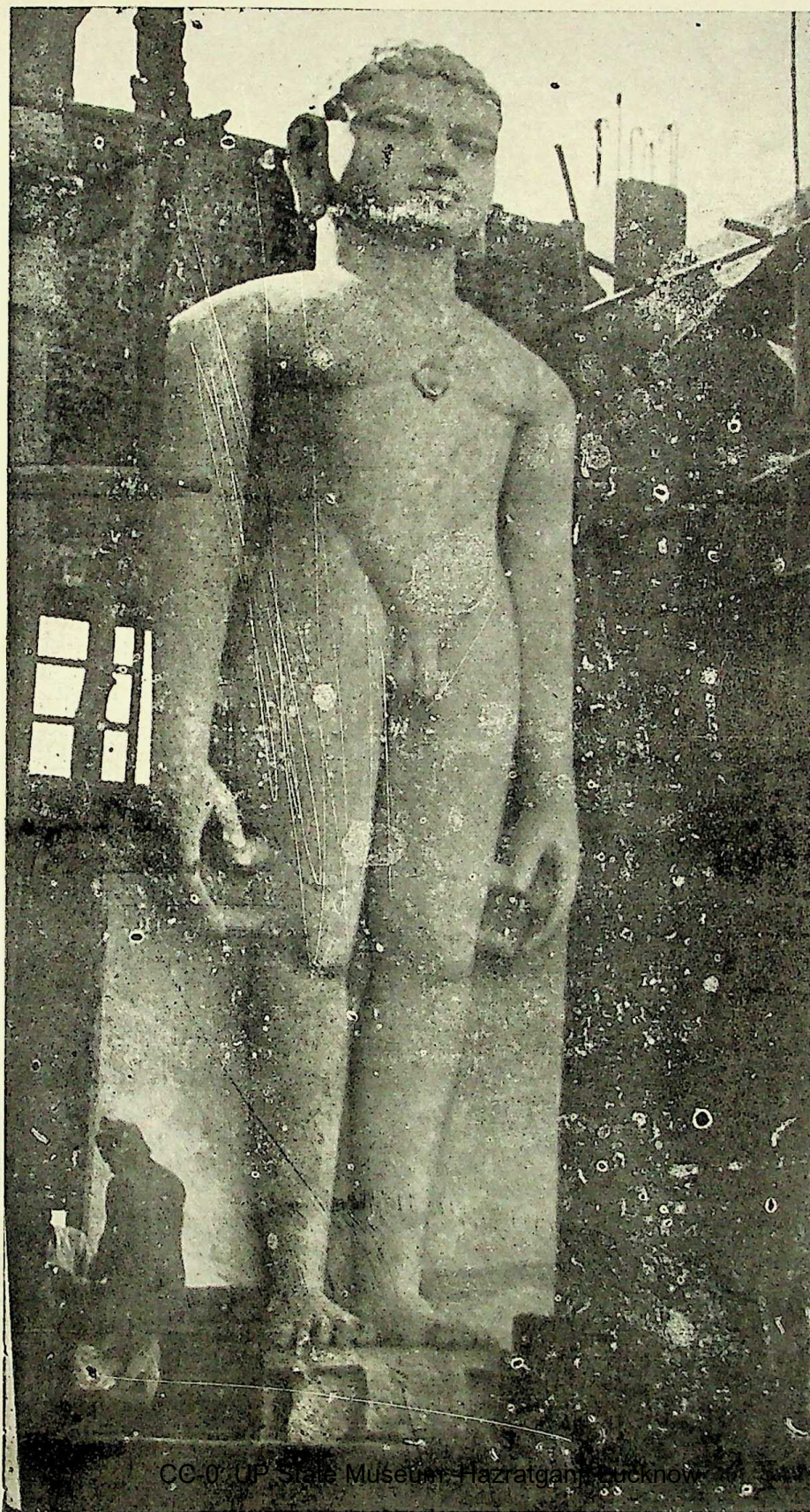
१०—आदि तीर्थंकर भ० ऋषभदेव, अयोध्या
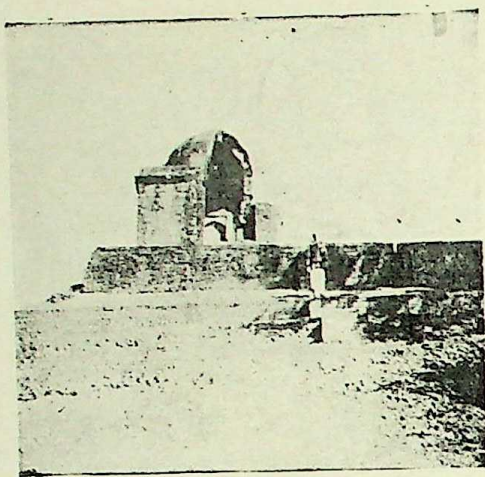
११—तीर्थंकर सम्भवनाथ का प्राचीन मन्दिर, श्रावस्ती
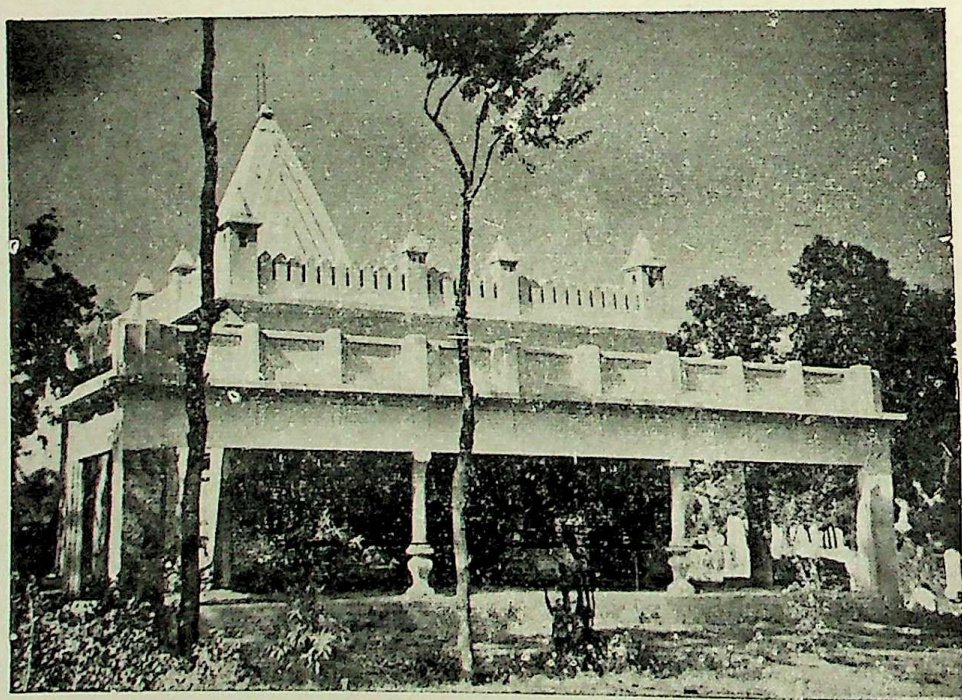
१२—नवीन संभव-जिनालय, श्रावस्ती

से अयोध्या की यात्रा करने आये थे। औरंगजेब के शासनकाल में अयोध्या के मंदिरों का पुनः विध्वंस हुआ। अतएव सन् १७२२-२३ ई० में जब सादत खाँ बुरहानुलमुल्क अवध का सुबेदार नियुक्त हुआ और उसके साथ दिल्ली से आये उसके खजांची ला० केशरीसिंह ने, जो कि अग्रवाल जातीय दिगम्बर जैन थे, अयोध्या के जिनायतनों की दुर्दशा देखी तो उन्होने उनका जीर्णोद्धार कराकर मार्गशीर्ष मुक्ल पूर्णिमा सम्वत् १७८१ (सन् १७२४ ई०) में उनकी पुनः प्रतिष्ठा कराई। इस प्रकार, स्वर्गद्वारी मुहल्ले में आदिनाथ, बकसरिया टोले में अजितनाथ, कटरा मुहल्ला में अभिनन्दननाथ और सुमतिनाथ, तथा राजघाट पर अनन्तनाथ के टोंकों का उक्त ला० केशरी सिंह ने पुर्ननिर्माण कराया था। उसके कुछ वर्ष पश्चात (संभवतया संवत् १९३६–४१ में) कटरा मुहल्ला की सुमतिनाथ टोंक को बीच में लेकर एक अच्छा शिखरबंद मंदिर भी बन गया।

१८९९ में (कार्तिक सुदी १३ सं० १९५६) में लखनऊ के ला० देवीदास गोटेवाले आदि जैन पंचों ने मिलकर उक्त सब टोंकों और कटरा के मंदिर का जीर्णोद्धार कराया तथा मंदिर के सामने एक विशाल धर्मशाला बनाने की नींव भी डाल दी। तदुपरान्त अवध के लखनऊ, बाराबंकी, फैजाबाद आदि जिलों के जैन अयोध्या तीर्थ के रखरखाव एवं विकास में योग देते रहे हैं।

कटरा में दुमंजली धर्मशाला है और उसके सम्मुख स्थित मंदिर में चार बेदियां हैं, जिनमें से एक में भगवान आदिनाथ और उनके दो पुत्रों, भरत और बाहुबलि की खड्गासन मनोज्ञ प्रतिमाएँ विराजमान हैं। उसी मुहल्ले में एक चहारदीवारी में बन्द बगीचे के मध्य सुन्दर श्वेताम्बर मंदिर है। राजघाट के अनन्तनाथ मंदिर की स्थिति प्राकृतिक दृष्टि में दर्शनीय है। सन् १९६५ ई० में आचार्य देशभूषण की प्रेरणा और दिल्ली आदि विभिन्न स्थानों के धर्मात्मा जैनों के उत्साह एवं सहयोग से मुहल्ला रायगंज में रियासती बाग के मध्य में एक नवीन भव्य मंदिर का निर्माण हुआ है जिसमें मूलनायक के रूप में एक ३१ फीट ऊँची विशाल एवं मनोज्ञ कायोत्सर्ग प्रतिमा भगवान आदिनाथ की अपूर्व समारोह के साथ प्रतिष्ठित की गई है। अन्य भी कई प्रतिमाएँ हैं एवं सुविधाओं से युक्त धर्मशाला भी है। प्रतिवर्ष ऋषभजयन्ति (चैत्र बदि नवमी) के अवसर पर यहाँ भारी जैन मेला और रथोत्सव भी होता है।

इस प्रकार आदि जैन तीर्थ अयोध्या के जैन धर्मायतन मात्र जैनों के लिए ही नहीं, सामान्य पर्यटकों के लिए भी दर्शनीय एवं प्रेरणाप्रद हैं। अयोध्या और उसके जैन स्मारक जैन संस्कृति के इतिहास के एक बड़े अंश को अपने में समोये हुए हैं।

एसा पुरी अउज्झा सरऊ-जलसिच्चमाणगढ़भित्ती।
जिणसमयसत्ततित्थीजत्त पवित्तिअ जणा जयइ॥ —(वि० ती० कल्प)

श्रावस्ती

उत्तर प्रदेश के बहराइच जिले में, बहराइच-बलरामपुर राजमार्ग पर, बहराइच से लगभग ४० कि० मी० तथा बलरामपुर से १८ कि० मी० की दूरी पर स्थित, ४–५ कि० मी० के विस्तार में फैले हुए खंडहरों से प्राचीन महानगरी श्रावस्ती की पहचान की जाती है। चिरकाल से यह स्थान सहेट-महेट के नाम से विख्यात रहता आया है। खंडहरों के मध्य से जाने वाली पक्की सड़क के एक ओर का भूभाग सहेट कहलाता है, जिसमें बौद्ध स्तूप, संघाराम आदि के अवशेष पाये गये हैं और एक नवीन बौद्ध संस्थान विकसित हुआ है। सड़क के दूसरी ओर का भाग महेट कहलाता है, और उसी में जंगल के बीच ऊँचे टीलों से घिरा हुआ, जो मूलतः परकोटा रहा होगा, एक अर्धभग्न प्राचीन जैन मंदिर है, जो भगवान सम्भवनाथ के जन्म स्थान के रूप में प्रसिद्ध है। उसके आसपास

चन्द्रनाथ और शान्तिनाथ नाम के तीर्थंकरों के मंदिर भी रहे प्रतीत होते हैं। राजमार्ग के सिरे पर, जंगल में प्रवेश करने के पहिले ही दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमिटी श्रावस्ती ने एक नवीन जिनमंदिर का, जिसमें तीर्थंकर सम्भवनाथ की श्वेतपाषाण की चार प्रतिमाएँ विराजमान हैं, तथा एक धर्मशाला का निर्माण कराया है।

अचिरावती (राप्ती) तीरवर्ती यह श्रावस्ती भारतवर्ष की एक अत्यन्त प्राचीन महानगरी रही है। प्राचीन साहित्य में कुणाल देश की राजधानी के रूप में उसका उल्लेख बहुधा हुआ है, कभी-कभी उसे कोसल जनपद की राजधानी भी बताया गया है। वस्तुतः कुणाल नाम प्राचीनतर है। जब अयोध्यापति महाराज रामचन्द्र के उपरान्त उनके पुत्रों के बीच कोसल राज्य विभक्त हुआ तो उनके पुत्र लव के वंशजों ने राज्य के उत्तरी भाग पर अधिकृत होकर श्रावस्ती को अपनी राजधानी बनाया, और दूसरे पुत्र कुश के वंशज राज्य के दक्षिणी भाग अयोध्या (साकेत) से ही राज्य करते रहे। सम्भवतया तभी से श्रावस्ती कोसल या उत्तरी कोसल की राजधानी कहलाने लगी।

महाराज रामचन्द्र से सुदीर्घकाल पूर्व, श्रावस्ती में जैन परम्परा के तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथ के गर्भ जन्म, तप और ज्ञान नामक चार कल्याणक हुए, कार्तिकी पूर्णिमा को उनका जन्म हुआ था। इक्ष्वाकुवंशी, काश्यप गोत्री श्रावस्तीनरेश महाराज दृढ़रथराय अपरनाम जितारि उनके पिता थे और जननी महारानी सुषेणा थीं। वयस्क होने पर सम्भवनाथ का विवाह हुआ और पिता का उत्तराधिकार प्राप्त करके चिरकाल राज्य का उपभोग किया था। एकदा आकाश में बादलों को छिन्न-भिन्न होते देख उन्हें संसार की क्षणभंगुरता का अहसास हुआ और उन्होंने समस्त राज्यैश्वर्य का परित्याग करके श्रावस्ती के निकटवर्ती सहेतुक बन में (संभवतया 'सहेतुक' का ही बिगड़कर 'सहेट' हो गया) १४ वर्ष तक दुर्द्धर तपश्चरण किया। उनका प्रथम पारणा भी श्रावस्ती नरेश सुरेन्द्रदत्त (जो सम्भवतया उनके पुत्र एवं उत्तराधिकारी थे) के घर हुआ। अन्ततः उसी सहेतुक वन में, एक शालवृक्ष के नीचे उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ, जिसके उपरान्त उन्होंने शेष जीवन लोक-कल्याण में व्यतीत किया। उनका प्रथम समवसरण एवं धर्म देशना भी श्रावस्ती में ही हुई, चारुषेण उनके प्रधान गणधर थे और आर्यिका धर्मा प्रधान शिष्या थीं।

तदनन्तर, चन्द्रप्रभु, पार्श्वनाथ आदि अनेक तीर्थंकरों के समवसरण श्रावस्ती में आये, अनेक जैन कथाओं में इस नगर के उल्लेख आते हैं। महावीर-बुद्ध युग में महाराज रामचन्द्र के वंशज सूर्यवंशी नरेश प्रसेनजित का शासन श्रावस्ती में था। यह नरेश और उसकी महारानी मल्लिकादेवी अत्यन्त उदार, सर्वधर्म-सहिष्णु एवं विद्या-रसिक थे। वे तीर्थंकर महावीर और गौतमबुद्ध दोनों का ही समान रूप से आदर करते थे। मक्खलि गोशाल के आजीविक सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र भी यही नगर था। जनता को मनचाहे धर्म का अनुयायी होने की पूरी स्वतन्त्रता थी। भगवान महावीर अपने तपस्याकाल में भी और तीर्थंकर रूप में भी कई बार श्रावस्ती पधारे, यहां उन्होंने वर्षावास भी किये।

प्रसेनजित के उपरान्त श्रावस्ती धीरे-धीरे पतनोन्मुख होती गई, तथापि गुप्तकाल में भी वह कोसलदेश की प्रधान नगरी समझी जाती थी, और हर्षवर्धन के राज्य की श्रावस्ती मुक्ति का केन्द्रालय थी। चीनी यात्रियों फाह्यान और युवानच्वांग ने भी इस नगर की यात्रा की थी। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दियों में श्रावस्ती में जैन-धर्मावलम्बी ध्वजवंशी नरेशों का शासन था। इसी वंश के प्रसिद्ध राजा सुहिलध्वज अपरनाम वीर सुहेलदेव ने १०३२ ई० के लगभग गजनी के सैयद सालार मसऊद गाजी को बहराइच के भीषण युद्ध में ससैन्य समाप्त कर दिया था। सुहेलदेव के पौत्र हरसिंहदेव के समय (११३४ ई०) तक यह राज्य चलता रहा, जब कि कन्नौज के चन्द्रदेव गाहडवाल ने श्रावस्ती पर आक्रमण करके उसे तहस-नहस कर डाला। गाहडवालों के उपरांत यहां १३वीं

शती के प्रारम्भ से मुसलमानों का अधिकार हो गया, और श्रावस्ती खंडहर होती चली गयी, किन्तु एक महत्वपूर्ण 'धर्म-पत्तन' (त्रिकांड शेष में श्रावस्ती का यह नाम दिया है) के रूप में चलती रही ।

१४ वीं शती ई० के पूर्वार्ध में प्रसिद्ध जैनाचार्य जिनप्रभसूरि ने ससंघ श्रावस्ती की यात्रा की थी और अपने श्रावस्तीनगरी-कल्प में उसका वर्णन किया—'अगण्य गुणगण वाले दक्षिणार्ध भारत में कुणाला विषय (जनपद) की श्रावस्ती नगरी अब 'महेठ' कहलाती है। यहां आज भी गहन घन वन के मध्य श्री सम्भवनाथ विभूषित, गगनचुम्बी शिखर एवं पार्श्वस्थित जिनबिम्बमण्डित देवकुलिका से अलंकृत, प्राकार परिवृत्त, जिनालय विद्यमान है। उस चैत्य के द्वार से अनतिदूर वल्लि-उल्लसित, अतुल्य पल्लवों की स्निग्ध छाया वाले तथा बड़ी बड़ी शाखाओं वाले अभिराम रक्त-अशोक वृक्ष दीख पड़ते हैं। इस जिनालय की प्रतोली के कपाट-सम्पुट मणिभद्र यक्ष के प्रभाव से सूर्यास्त होते ही स्वयमेव बन्द हो जाते हैं और सूर्योदय के साथ ही खुल जाते हैं। सुलतान अलाउदीन (खलजी) के सर्दार मलिक हुंवस ने बहराइच से यहां आकर मन्दिर के प्राकार, दीवारों, कपाटों तथा अनेक जिन प्रतिमाओं को भग्न कर डाला था। श्रावस्ती तीर्थ में यात्री संघ के आने पर स्नात्र महोत्सव के समय चैत्य शिखर पर एक चीता आकर बैठ जाता है, जो किसी को भय नहीं करता और मंगलदीप होने पर स्वतः चला जाता है।' इसी नगर में पूर्वकाल में कौशाम्बी राज्य के मन्त्रीपुत्र कपिल ने अपने पिता के मित्र इन्द्रदत्त से शिक्षा प्राप्त की और शालिभद्र सेठ की दासी के वचनों से प्रभावित हो तप किया, पांच सौ दस्युओं को प्रतिबोध दिया और सिद्धि प्राप्त की। जामालि-निन्हव भी इसी नगर के तिदुंक उद्यान में हुआ था, और वहीं पार्श्वपरम्परा के प्रतिनिधि के शिमुनि और महावीर के गणधर गौतम के बीच इतिहास प्रसिद्ध संवाद हुआ था। स्कन्दाचार्य, भद्रमुनि, ब्रह्मदत्त आदि कई प्रसिद्ध मुनियों का सम्बन्ध इस नगर से रहा। जिनप्रभसूरि कहते हैं कि 'इस प्रकार अनेक संविधानक रत्नों की उत्पत्ति रूप इस श्रावस्ती महातीर्थं की भूमि रोहणाचल जैसी है।'

इसके उपरान्त शनैः शनैः यह तीर्थ खंडहरों से भरे वनखण्ड में परिणत होता गया। सन् १८६२ ई० में जनरल कनिघम ने यहां पुरातात्त्विक सर्वेक्षण एवं खुदाई प्रारम्भ की। प्रारम्भ में विद्वानों को इस स्थान के श्रावस्ती होने में सन्देह रहा, किन्तु १८७५ ई० में डा० ह्वे द्वारा एक शिलालेख की तथा १९०९ में सर जान मार्शल द्वारा एक ताम्रपत्र की प्राप्ति ने यह तथ्य असंदिग्ध कर दिया कि 'सहेट-महेट' ही प्राचीन श्रावस्ती है।

स्वयं जैनों को तो अपने इस पवित्र तीर्थ की स्थिति में कोई सन्देह नहीं रहा और वे उसे उसी रूप में मानते आ रहे हैं। महेठ के जैन भग्नावशेषों में अनेक प्राचीन मनोज्ञ जिन प्रतिमाएँ मिली हैं जिनमें से कुछ तो दिल्ली, लखनऊ, मथुरा आदि के राज्य संग्रहालयों में पहुंचगई और कुछ बहराइच के जिन मन्दिरों में। नवीन मन्दिर एवं धर्मशाला बन जाने से यात्रियों की सुविधा एवं आकर्षण पर्याप्त बढ़े हैं, किन्तु धराशायी होते जा रहे प्राचीन सम्भवनाथ मन्दिर के जीर्णोद्धार एवं सुरक्षा और उसके आस-पास प्राचीन जैन कलावशेषों की विधिवत खोज की आवश्यकता है। बौद्ध संस्थान एवं स्मारकों के कारण यह स्थान देश-विदेश के पर्यटकों को भी आकर्षित करता है।

कौशाम्बी

उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले की तहसील मंझनपुर परगना किरारी में, इलाहाबाद नगर से लगभग ५० कि० मी० दक्षिण-पश्चिम में, यमुना नदी के उत्तरी तट पर स्थित कोसम इनाम और कोसम खिराज नाम के संयुक्त महालों (गांवों) से प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध महानगरी कौशाम्बी की पहिचान की गई है। इलाहाबाद से सराय आकिल तक पक्की सड़क है जिस पर मोटर बसें चलती हैं, उससे आगे कच्ची सड़क है जिस पर तांगे द्वारा

जाया जा सकता है। प्राचीन नगरी के भग्नावशेष मीलों के विस्तार में फैले हुए हैं। सन् १८६१ में सुप्रसिद्ध पुरातात्त्विक सर्वेक्षक जनरल कनिंघम को बाबू शिवप्रसाद से यह सूचना प्राप्त हुई थी कि 'इलाहाबाद से ३० मील पर स्थित कोसम नाम का गांव अभी तक कौशाम्बी-नगर के नाम से प्रसिद्ध है, यह अब तक भी जैनों का महान तीर्थ है और एक सौ वर्ष पहले तक यह एक बड़ा समृद्ध नगर था।' इसी सूचना से बल प्राप्त करके कनिंघम ने अन्ततः १८७१ ई० में कोसम के साथ कौशाम्बी का सुनिश्चित समीकरण घोषित कर दिया था।

प्राचीन वत्सदेश या वत्स महाजनपद की राजधानी इस कौशाम्बी नगर का सर्वप्राचीन जैन प्रसंग छठे तीर्थंकर पद्मप्रभु के साथ है। वह कौशाम्बी के इक्ष्वाकुवंशी, काश्यपगोत्री राजा धरण और उनकी रानी सुसीमा के पुत्र थे। इसी नगरी में उनके गर्भ और जन्म कल्याणक हुए, जिससे वह पवित्र महातीर्थ बनी (सा कोसम्बी नगरी जिणजन्म पवित्तिउ महातित्थं)। भगवान नमिनाथ (२१ वें तीर्थंकर) के तीर्थ में इसी नगरी के इक्ष्वाकुवंशी राजा विजय और रानी प्रभाकरी का पुत्र, ११ वां चक्रवर्ती जयसेन हुआ था। तीर्थंकर पार्श्वनाथ भी कौशाम्बी में धर्मदेशनार्थ पधारे थे।

अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर का तो कौशाम्बी के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहा। उसकाल में कुरुवंश की एक शाखा में उत्पन्न सहस्रानीक का पुत्र शतानीक कौशाम्बी नरेश था। उसकी पट्टरानी मृगावती वैशाली के अधिपति चेटक की पुत्री और भगवान महावीर की मौसी तथा उनकी परम भक्त थी। राजा शतानीक भी महावीर का बड़ा आदर करता था। इन्हीं दोनों का पुत्र ही वह सुप्रसिद्ध वत्सराज उदयन था जो गजविद्याविशारद, अपनी हस्तिकान्त वीणा पर प्रियकान्त स्वरों का अप्रतिम साधक, प्रद्योतपुत्री वासवदत्ता का रोमांचक प्रेमी और अनेक लोककथाओं का नायक रहा। उदयन भी महावीर का समादर करता था और उसकी प्रिया वासवदत्ता उनकी उपासिका थी। उदयन के जन्म के कुछ पूर्व की घटना है कि भगवान महावीर अपने द्वादशवर्षीय तपकाल के अन्तिम वर्ष में, चार मास के उपवास के उपरान्त पारणा करने के लिए कौशाम्बी पधारे। उन्होंने एक बड़ा अटपटा अभिग्रह (वज्र संकल्प) किया था, जिसके कारण ५ मास २४ दिन तक वह नित्य नगर में आहार के लिए आते रहे, किन्तु क्योंकि ली हुई आखड़ी पूरी नहीं होती थी, नित्य निराहार ही वापस लौट जाते थे। अन्ततः अज्ञात कुलशील, क्रीतदासी चन्दना के हाथों से, जो उस समय कई दिन की भूखी-प्यासी, मलिन तन, जीर्ण-शीर्ण वस्त्र, हथकड़ी-बेड़ियों में बंधी, अपने स्वामी के घर की देहली पर, हाथ में सूप में अधपके उड़द के बाकले लिए, विषाद एवं दीनता की साक्षात् मूर्ति बनी खड़ी थी, भगवान का अभिग्रह पूरा हुआ। उन्होंने वही आहार ग्रहण करके अपने सुदीर्घ उपवास का पारणा किया। पंचाश्चर्य की वृष्टि हुई, राजा-प्रजा समस्त जन उमड़ पड़े, चतुर्दिक जय-जयकार गूंज उठा। चन्दना-उद्धार की इस अभूतपूर्व घटना द्वारा तीर्थंकर महावीर ने कुत्सित दास प्रथा का उन्मूलन एवं एक महान सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात इस कौशाम्बी नगरी में ही किया था। कालान्तर में यह महाभाग चन्दनबाला ही महावीर के आर्यिका संघ की अध्यक्षा के पद पर प्रतिष्ठित हुई। महावीर के एक गणधर, मेतार्य, का जन्म भी कौशाम्बी के तुंगिय संनिवेश में हुआ था।

कौशाम्बी नरेश शतानीक की मृत्यु के उपरान्त जब अवन्ति नरेश चंड प्रद्योत ने वत्स देश पर आक्रमण किया तो, भगवान महावीर नगर के बाहर समवसरण में विराजमान थे। उनके प्रभाव से दोनों राज्यों में सद्भाव स्थापित हुआ। उक्त संकटकाल में राजमाता मृगावती ने बड़े धैर्य, बुद्धिमत्ता एवं वीरता के साथ अपने राज्य, पुत्र एवं सतीत्व की रक्षा की थी—प्रद्योत की उस पर लोलुप दृष्टि थी। अपने पुत्र उदयन के जीवन, स्थिति और राज्य को निष्कंटक करके तथा कुशल मन्त्री युगन्धर के हाथों में सौंप कर सती मृगावती ने जिनदीक्षा ले ली और

आर्या चन्दना के संघ में सम्मिलित होकर शेष जीवन आत्मसाधनार्थ तपस्या में व्यतीत किया। उसी के साथ चंडप्रद्योत की रानी अंगारवती भी आर्यिका बन गई।

भगवान महावीर के निर्वाणोपरान्त भी चिरकाल पर्यन्त कौशाम्बी जैन संस्कृति का महत्वपूर्ण केन्द्र बनी रही, और यहाँ अनेक जैन मुनियों का उन्मुक्त विहार होता रहा। तीसरी शती ई० पूर्व में आर्य महागिरि और सम्प्रति मौर्य प्रबोधक आर्य सुहस्ति का यहां आगमन हुआ था। उत्तर बलिस्सह गण के जैन साधुओं की एक शाखा भी कोसंबिया कहलाई थी।

कौशाम्बी के खंडहरों में अनेक जैन अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिनमें ईस्वी सन् के प्रारम्भ का लाल बलुए पत्थर का, मथुरा की ही शैली में निर्मित, एक जैन आयागपट्ट, २री शती ई० में राजा भद्रमघ के शासनकाल में कौशाम्बी के पत्तनकार (नगर-नियोजक) शपर तथा मांगनी द्वारा निर्मापित मन्दिर तोरण (१६४ ई०) और उन्हीं के द्वारा एक पुष्करिणी के तट पर आचार्य आर्यदेव के लिए निर्मापित दो प्रस्तरमयी आसनपट (१६५ ई०) विशेष उल्लेखनीय हैं। कुषाण एवं गुप्तकालों की अनेक खंडित जिनप्रतिमाएँ भी मिली हैं। ध्वंसावशेषों में देवड़ा टीले पर नये मंदिर से लगभग ५० गज की दूरी पर ११वीं शती ई० की अनेक जैन मूत्तियां प्राप्त हुई हैं, जो उस काल में वहाँ एक विशाल मन्दिर के विद्यमान रहने की सूचक हैं। जिनप्रभसूरि (१४वीं शती) ने भी कौशाम्बी की यात्रा की थी और कौशाम्बी के निकटवर्ती बसुहार गाँव में एक प्रसिद्ध जैन मंदिर के होने का उल्लेख किया था। चीनी यात्री युवानच्वांग ने (७वीं शती में) कौशाम्बी के जिन ५० देवमंदिरों का उल्लेख किया है, उनमें से न जाने कितने जैन मंदिर रहे होंगे।

१८३४ ई० में कौशाम्बी के देवड़ा टीले पर प्राचीन मन्दिर की स्मृति को पुनरुज्जीवित करने के लिए एक नवीन मन्दिर का निर्माण इलाहाबाद आदि के जैनों ने कराया था। अभी हाल में कौशाम्बी में एक श्वेताम्बर मंदिर और धर्मशाला का निर्माण प्रारम्भ हुआ है। पभोसा तीर्थ भी कौशाम्बी के निकट ही है (आगे देखें)।

वाराणसी

गंगमांहि आइ धसी द्वै नदी बरूना असी,
बीच बसी बनारसी नगरी बखानी है।
कासिवार देस मध्य गांउ तातैं कासी नांउ,
श्री सुपास–पास की जनमभूमि मानी है।
तहां दुहूं जिन सिवमारग प्रकट कीनों,
तब सेती शिवपुरी जगत में जानी है।

—कविवर बनारसीदास

वाराणसी, काशी, शिवपुरी, विश्वनाथपुरी आदि नामों से प्रसिद्ध, पुण्यतोया भागीरथी के तट पर, वरुणा एवं असी नामक सरिताद्वय के मध्य स्थित महानगरी भारतवर्ष की सर्वप्राचीन एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण नगरियों में ही नहीं है, वरन् चिरकाल से धर्म, संस्कृति एवं विद्या का सर्वोपरि केन्द्र रहती आई है। वस्तुतः काशि देश या जनपद का नाम था और उसकी राजधानी यह वाराणसी (अपभ्रष्ट-बनारस) थी। भगवान आदिनाथ ऋषभदेव के समय में ही इस नगर की स्थापना हो चुकी थी। उस समय काशि राज्य के अधिपति अकंपन थे,

जिनकी सुन्दरी पुत्री सुलोचना के लिये भरत चक्रवर्ती के पुत्र अर्ककीर्ति और सेनापति मेघेश्वर जयकुमार के बीच संघर्ष हुआ। द्वन्द्व के समाधान के लिए सुलोचना का स्वयंवर रचा गया और उसमें उसने चक्रवर्ती पुत्र की उपेक्षा करके वीर जयकुमार का वरण किया। सुलोचना की गणना जैन परम्परा की सोलह आदर्श सतियों में की जाती है।

इसी नगर में, कलान्तर में, ७वें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ के गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान, चार कल्याणक हुए। उनके जन्म स्थान की पहचान वाराणसी के भदैनी क्षेत्र से की जाती है, जहाँ गंगातट पर उनके नाम का जिनालय बना है। उससे लगा हुआ ही स्याद्वाद महाविद्यालय का भवन एवं छात्रावास है। भगवान सुपार्श्वनाथ इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न काशि नरेश सुप्रतिष्ठ तथा महारानी पृथिवीषेणा के सुपुत्र थे। उन्होंने वाराणसी में चिरकाल राज्यभोग करके संसार का त्याग किया, निकटवर्ती वन में तपस्या की और वहीं केवलज्ञान प्राप्त किया तथा अपने धर्मतीर्थ का प्रवर्त्तन किया था।

२३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ (ईसापूर्व ८७७-७७७) का जन्म भी काशिदेश की इसी मुकुटमणि वाराणसी नगरी में उरगवंशी, काश्यपगोत्री महाराज अश्वसेन (मतान्तर से विश्वसेन) की महारानी वामादेवी की कुक्षि से हुआ था। राजकुमार पार्श्व प्रारंभ से ही अत्यन्त शूरवीर, रणकुशल, मेधावी, चिन्तनशील एवं दयालु मनोवृत्ति के थे। कुमारावस्था में ही उन्होंने संसार का परित्याग करके दुर्द्धर तपश्चरण किया था, और केवलज्ञान प्राप्त करके अपना धर्मचक्र प्रवर्त्तन किया था। वाराणसी के भेलूपुर क्षेत्र से उनके जन्मस्थान की पहचान की जाती है, जहाँ एक विशाल जिनमंदिर उनकी स्मृति में विद्यमान है। उनके जन्म के कुछ काल पूर्व जैन परम्परा का १२वाँ चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त भी काशी में हुआ था।

जैन साहित्य में महावीर युग में काशि और कोसल के १८ गणराजाओं का उल्लेख आता है, जो सब महावीर के भक्त थे और उनका निर्वाणोत्सव मनाने के लिए पावा में एकत्रित हुए थे। काशि के राजा जितशत्रु ने भगवान महावीर का अपने नगर में भारी स्वागत किया, इसी नगर के एक अन्य राजा शंख ने तो उनसे जिनदीक्षा ली थी। वाराणसी की राजकुमारी मुण्डिका महावीर की परम भक्त थी। वाराणसी में ही चौबीस कोटि मुद्राओं के धनी सेठ चूलिनीपिता, उसकी भार्या श्यामा, सेठ सुरादेव और उसकी पत्नी धन्या, आदि भगवान महावीर के आदर्श उपासक-उपासिका थे। अनेक जैन पुराणकथाओं के साथ काशि देश और वाराणसी नगरी जुड़े हैं।

२री शती ई० में दक्षिण के महान जैनाचार्य समन्तभद्र स्वामी ने वाराणसी में आकर वादभेरी बजाई थी और ५वीं शती में पंचस्तूपनिकाय के काशिवासी आचार्य गुहनन्दि दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे—सुदूर बंगाल में भी उनके शिष्य-प्रशिष्य फैले थे। सुपार्श्व एवं पार्श्व की इस पवित्र जन्मभूमि की यात्रा करने के लिए देश के कोने-कोने से जैनीजन बराबर आते रहे हैं। विद्या का महान केन्द्र होने के कारण अनेक जैन विद्वानों ने दुर-दूर से आकर वाराणसी में शिक्षा प्राप्त की। मध्यकाल में जिनप्रभसूरि, पं० बनारसीदास, यशोविजयजी आदि यहाँ पधारे और वर्तमान शताब्दी के प्रारंभ में पं० गणेश प्रसाद वर्णी, बाबा भागीरथ वर्णी आदि जैन सन्तों ने यहीं स्याद्वाद महाविद्यालय की स्थापना की। आचार्य यशोविजय पाठशाला भी चलती थी, और अब पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वर्णी शोध संस्थान, वर्णी ग्रन्थ माला आदि अनेक जैन सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का यह महानगरी केन्द्र है। अनेक जैन मंदिर धर्मशालाएँ आदि यहाँ हैं और दर्जनों जैन विद्वान भी निवास करते हैं। राजघाट आदि से खुदाई में प्राचीन जैन मूर्त्तियां भी मिली हैं।

गङ्गोदकेन च जिनद्वय जन्मना च प्राकाशि काशिनगरी न गरीयसी कैः ॥

चन्द्रपुरी

चन्द्रपुरी अपरनाम चन्द्रपुर, चन्द्रावती, चन्द्रानन और चन्द्रमाधव की वाराणसी से लगभग २० कि० मी० दूर गंगातट पर बसे हुए तन्नाम गांव से पहचान की जाती है। इस नगर के इक्ष्वाकुवंशी, काश्यपगोत्री महाराज महासेन की महादेवी लक्ष्मणा के गर्भ से आठवें तीर्थंकर चन्द्रनाथ (चन्द्रप्रभु) का जन्म हुआ था। इसी स्थान में उनके गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणक हुए थे। गंगातट पर सुरम्य प्राकृतिक वातावरण के मध्य भगवान चन्द्रनाथ का मंदिर बना है, पास ही चन्द्रावती गाँव में भी उनका एक मंदिर है। प्रतिवर्ष हजारों जैन तीर्थयात्री यहाँ दर्शनार्थ आते रहते हैं। वाराणसी से बस द्वारा चन्द्रपुरी पहुंचा जाता है।

काकंदी

नवम् तीर्थंकर पुष्पदन्त की पवित्र जन्मभूमि की पहचान पूर्वी उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले में नौनखार रेल स्टेशन से लगभग ३ कि० मी० दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित खुखुन्दो नामक छोटे से ग्राम से की जाती है। गांव के बाहर घने जंगल के बीच कई बड़े-बड़े तालाब और तीस छोटे-बड़े टीले लगभग २ कि० मी० के विस्तार में फैले पड़े हैं, जो प्राचीनकालीन महानगरी काकंदी के ही मन्दिरों, भवनों आदि के भग्नावशेष हैं। खुखुन्दों के निवासी एवं शिवाजी इण्टर कालेज के प्रवक्ता पं. रामपूजन पाण्डेय ने अपनी पुस्तक 'अथ ककुत्स्थ-चरित्र' में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि तीर्थंकर पुष्पदन्त का ही अपर नाम ककुत्स्थ था, वह मनुपुत्र इक्ष्वाकु के निकट वंशज थे, उन्होंने यह काकुत्स्थनगरी, जो काकंद नगरी भी कहलाई, बसाई थी, और यही राजा दशरथ (महाराज रामचन्द्र के पिता) पर्यन्त उनके वंशजों की जन्मभूमि रही। अपने मत की पुष्टि पाण्डेय जी ने ब्राह्मणीय पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों से की है। इस नगरी का एक अन्य नाम किष्किंधापुर भी मिलता है। किन्तु मूल एवं लोकप्रिय नाम काकन्दी या काकंदनगर ही रहा प्रतीत होता है—उसी का बिगड़कर खुखुन्द या खुखुन्दो बन गया।

जैन मान्यता के अनुसार काकंदी नगरी के इक्ष्वाकुवंशी काश्यपगोत्री क्षत्रिय नृप सुग्रीव की पट्टरानी जयरामा की कुक्षि से मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा के दिन भगवान पुष्पदन्त का जन्म हुआ था, वहीं उन्होंने चिरकाल पर्यन्त राज्य किया, और एक दिन उल्कापात के दृश्य को देखकर संसार से विरक्त हुए तथा पुत्र सुमति को राज्य भार सौंपकर निकटवर्ती पुष्पकवन में तपश्चरण किया। उनका प्रथम पारणा शैलपुर के राजा पुष्पमित्र के घर हुआ, और तदनन्तर उसी दीक्षावन में एक नागवृक्ष के नीचे उन्हें केवलज्ञान हुआ था। तिलोयपण्णति, वरांगचरित, उत्तरपुराण, आशाधरकृत त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र आदि ग्रन्थों से उपरोक्त तथ्य प्रमाणित हैं। भगवती आराधना और बृहत्कथाकोष में अभयघोषमुनि की कथा प्राप्त होती है, जिन्हें काकंदी नगरी में उनके वैरी चण्डवेग ने सर्वांग छेद-छेदकर मारणान्तक उपसर्ग किया था, और फलस्वरूप उक्त मुनिराज ने सिद्धत्त्व प्राप्त किया था। नायधम्मकहा में काकंदी नगरी के एक व्यापारी की कथा आती है जो बड़े-बड़े जलपोतों को लेकर व्यापारार्थ रत्नद्वीप गया था, किन्तु भयंकर समुद्री तूफान में उसके जहाज नष्ट हो गये थे और वह जैसे-तैसे प्राण बचाकर घर वापस लौटा था। इन उल्लेखों से पता चलता है कि किसी समय काकंदी एक अत्यन्त समृद्ध नगरी थी ; नवें तीर्थंकर के चार कल्याणकों की पुण्यस्थली होने के कारण पवित्र तीर्थस्थान एवं सांस्कृतिक केन्द्र भी बन गई।

खुखुन्दो के उपरोक्त टीलों एवं खण्डहरों का पुरातात्त्विक सर्वेक्षण १८६१-६२ ई० में जनरल कनिंघम ने किया था, जिसमें उसे यहां के प्राचीन जैन एवं शैव वैष्णवादि मन्दिरों की विपुल सामग्री प्राप्त हुई थी। जैन अवशेषों में टीले-बी० से प्राप्त शिशु तीर्थंकर आदिनाथ सहित कल्पवृक्ष के नीचे बैठे नाभिराय एवं मरुदेवी की

मूर्ति तथा चतुर्भुजा चक्रेश्वरी की मूर्ति, टीले-डी. पर मृगलांछन तीर्थंकर शान्तिनाथ चौबीसी-पट (खंडित), नाभिराय-मरुदेवी की पूर्वोक्ता जैसी मूर्ति (ऐसी मूर्तियाँ अहिच्छत्रा, मथुरा, देवगढ़ आदि अन्य जैन केन्द्रों में भी प्राप्त हुई हैं); टीले जी. एवं एच. पर भी जैन मन्दिरों के कुछ अवशेष मिले थे; टीले-जे. पर एक छोटा सा प्राचीन जैन मन्दिर प्रायः सुरक्षित था जहां, कनिंघम के कथनानुसार, अग्रवाल श्रावक, बनिये और साहूकार पटना, गोरखपुर आदि आस-पास के जिलों से दर्शनार्थ बहुधा आते रहते थे। इस मन्दिर में वृषभलांछन तीर्थंकर ऋषभनाथ की नील पाषाण की विशाल एवं मनोज्ञ पद्मासनस्थ प्रतिमा तब विद्यमान थी—प्रतिमा के सिर के ऊपर त्रिछत्र, पीछे भामंडल, इधर-उधर देवदुन्दुभि आदि परिकर अंकित थे। लोग भ्रमवश इस प्रतिमा को 'नाथ' या पार्श्वनाथ नाम से जानते थे। वस्तुतः, मन्दिर के बाहर एक खंडित प्रतिमा पार्श्वनाथ की भी थी, जो सम्भवतया मूलतः मंदिर की मूलनायक रही हो किन्तु किसी कारण खण्डित हो जाने से उसे बाहर पधरा दिया गया और वेदी में ऋषभनाथ की प्रतिमा विराजमान कर दी गई। इस टीले पर पूर्वोक्त जैसी एक युगलिया मूर्ति भी पाई गई थी। टीला-के. पर विशाल भवनों के अवशेष पाये गये औरटीला-एन. पर 'जुगवीर' (युगवीर) नाम से प्रसिद्ध एक मूर्ति मिली थी, जो संभवतया भगवान महावीर की होगी। टीला-जेड. पर अनेक भग्नावशेष प्राप्त हुए, जिनमें से एक तीर्थंकर की गन्धकुटी में विराजित सर्वतोभद्र प्रतिमा का था, और सम्भवतया भगवान पुष्पदंत का ही स्मारक हो।

कनिंघम साहब ने स्वीकार किया था कि उन्होंने खुखुन्दों का केवल प्राथमिक ऊपरी सर्वेक्षण किया था और भग्नावशेषों को देखते हुए वहाँ विपुल पुरातात्त्विक सामग्री मिलने की संभावना है, और यह कि नालन्दा के अतिरिक्त थोड़े ही स्थान ऐसे होंगे जहाँ काकंदी जैसी सामग्री मिले। कनिंघम के उक्त सर्वेक्षण की रिपोर्ट १८७१ ई० में प्रकाशित हुई थी। तब से और भी जैन अवशेष वहाँ निकलते रहे हैं, किन्तु उचित सुरक्षा के अभाव में पुरानी कलाकृतियाँ लुप्त भी होती रही हैं। कनिंघम के अनुसार जनता में खुखुन्दों के ये टीले 'देउरा' नाम से प्रसिद्ध थे, और यह नाम जिनमंदिरों के लिए विशेषरूप से प्रयुक्त होता है।

अस्तु, तीर्थंकर की जन्मभूमि, कल्याणकभूमि, जैन संस्कृति का प्राचीन केन्द्र और कलाधाम काकंदी, उपनाम खुखुन्दों, एक अच्छा पर्यटक स्थल बन सकता है यदि वहाँ समुचित उत्खनन, खोज, अवशेषों की सुरक्षा एवं जिनका संभव हो उनके जीर्णोद्धार का प्रयत्न किया जाय और गाँव को रेल स्टेशन से जोड़ने वाले मार्ग को पक्का करा दिया जाय।

सिंहपुरी

११वें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ के जन्मस्थान सिंहपुरी या सिंहपुर की पहचान वाराणसी नगर से लगभग १० कि० मी० उत्तर की ओर स्थित सारनाथ (सारङ्गनाथ) अपरनाम इसिपत्तन (ऋषिपत्तन) से की जाती है। इसी सिंहपुर में इक्ष्वाकुवंशी नरेश विष्णु की वल्लभा रानी नन्दा के गर्भ से फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन तीर्थंकर श्रेयोनाथ या श्रेयांसनाथ का जन्म हुआ था। चिरकाल राज भोग कर उन्होंने नगर के निकटवर्ती मनोहर नामक उद्यान में तप किया और वहीं केवलज्ञान प्राप्त किया था। सिंहपुरी (सारनाथ) में तीर्थंकर श्रेयांसनाथ का एक विशाल एवं दर्शनीय जिनमंदिर विद्यमान है, जहाँ सैकड़ों यात्री दर्शनार्थ आते रहते हैं। मन्दिर के निकट ही सारनाथ के सुप्रसिद्ध बौद्ध स्तूप, बुद्धमंदिर, विहार आदि अवस्थित हैं।

इसी सिंहपुर में राजा सिंहसेन के समय में उत्तरपुराण में वर्णित भद्रमित्र और सत्यघोष की कथा घटित हुई थी।

काम्पिल्य

१३वें तीर्थंकर, वराहलांछन विमलनाथ के गर्भ एवं जन्म की पवित्र भूमि और प्राचीन दक्षिण-पांचाल जनपद की राजधानी, महानगरी काम्पिल्य की पहचान प्रदेश के फर्रुखाबाद ज़िले की कायमगंज तहसील में, कायमगंज रेलवे स्टेशन से लगभग ८ कि० मी० की दूरी पर, पक्की सड़क के किनारे स्थित वर्तमान कंपिल नामक गांव से की जाती है। गंगा की एक पुरानी धारा गांव के पास से बहती थी। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार काम्पिल्य या कंपिला भी भारत की अत्यन्त प्राचीन नगरियों में से है। भगवान ऋषभदेव का विहार यहाँ हुआ था, तथा जब ऋषभपुत्र बाहुबलि ने मुनिदीक्षा ली थी तो उन्हीं के साथ उनके सहचर काम्पिल्य के राजकुमार ने भी दीक्षा ले ली थी।

इसी महानगरी में भगवान ऋषभदेव के वंशज महाराज कृतवर्मा की महादेवी जयश्यामा ने माघ शुक्ल चतुर्थी के दिन तीर्थंकर विमलनाथ (विमलवाहन) को जन्म दिया था। राज्यभोग के उपरान्त उन्होंने नगर के निकटवर्ती वन में जाकर दीक्षा ली, तप किया, केवलज्ञान प्राप्त किया और तदनन्तर अपने उपदेश द्वारा लोक कल्याण किया।

कालान्तर में इसी नगर में हरिषेण नाम का चक्रवर्ती सम्राट हुआ, जिसकी जननी भी परम जिनभक्त आदर्श श्रविका थी। महाभारत काल में पांचाल नरेश द्रुपद इस नगर का राजा था—कहीं-कहीं द्रुपद की राजधानी का नाम माकंदी लिखा है, संभव है कि यह कम्पिला का ही अपर नाम रहा हो। द्रुपददुहिता द्रौपदी हस्तिनापुर के कुरुवंशी पंचपांडवों की पत्नी थी, उसकी गणना आदर्श सतियों में की जाती है। भगवान पार्श्वनाथ और महावीर का आगमन भी कम्पिला में हुआ था। एक अनुश्रुति के अनुसार ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती भी इसी नगर में हुआ था। जैन पुराणों एवं कथाग्रन्थों में कम्पिला के धर्मवीरों, धनकुबेरों एवं मनीषियों के अनेक प्रसंग मिलते हैं।

वर्तमान में यहाँ एक पर्याप्त प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर विद्यमान है जिसमें श्यामल मूंगिया पाषाण की पुरुषाकार पद्मासनस्थ प्रतिमा भगवान विमलनाथ की मूलनायक के पद पर विराजमान है। यह प्रतिमा लगभग सत्तरह-अठारह सौ वर्ष प्राचीन अनुमान की जाती है और ज़मीन में दबी पड़ी थी जहाँ से संयोग से उसका उद्घाटन हुआ। प्रतिमा बड़ी मनोज्ञ एवं अतिशयपूर्ण हैं। आसपास के खंडहरों, गंगा के खादर व टीलों आदि से अन्य भी कई खंडित-अखंडित जिनप्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। मंदिर में और भी कई मनोज्ञ प्रतिमाएँ हैं। एक अच्छी धर्मशाला भी है। तीर्थ का प्रबन्ध एक तीर्थक्षेत्र कमेटी करती है। यहाँ द्रुपदटीले के निकट एक पुराना श्वेताम्बर मंदिर भी दर्शनीय है। मध्यकाल में भी अनेक जैन तीर्थ यात्री कम्पिला जी के दर्शनार्थ आते रहे, और इसी कारण इस प्राचीन महानगरी की स्थिति, स्मृति आदि सुरक्षित रही आयी। इस क्षेत्र पर प्रतिवर्ष चैत्रवदि १५ से चैत्रसुदी ४ तक, पांच दिन का जैन मेला, रथोत्सवादि होते हैं, और अश्विन बदि २ से ४ तक भी एक मेला होता है।

रत्नपुरी

फ़ैज़ाबाद ज़िले में, फ़ैज़ाबाद-लखनऊ रेल मार्ग के सोहावल स्टेशन से लगभग २ कि० मी० उत्तर की ओर स्थित रौनाई (नौराइ) नामक गाँव से १५वें तीर्थंकर धर्मनाथ की जन्मभूमि रत्नपुरी, रत्नपुर या रत्नवाह की पहचान की जाती है। यहाँ दो दिगम्बर एवं एक श्वेताम्बर, तीन पुराने जैन मंदिर हैं, एक धर्मशाला भी है। अयोध्या तीर्थ क्षेत्र कमिटी ही रत्नपुरी का भी प्रबन्ध करती है, किन्तु व्यवस्था सन्तोषजनक नहीं रहती। मंदिरों में मूर्तियाँ मनोज्ञ हैं।

इसी रत्नपुर के कुरुवंशी नरेश भानु की महादेवी सुप्रभा ने माघ शुक्ल १३ के शुभ दिन तीर्थंकर धर्मनाथ को जन्म दिया था। इन्होंने भी राज्य का उपभोग किया, वैराग्य लिया, तप किया और केवलज्ञान प्राप्त करके धर्म प्रचार किया था। इनका तप एवं ज्ञान स्थान रत्नपुरी का निकटवर्ती शालवन नामक उद्यान था।

धर्मे यस्मिन समुद्भूता धर्मदश सुनिर्मलाः।
स धर्मः शर्म मे दद्यादधर्मपहृत्य नः॥

हस्तिनापुर

अथास्मिन भारतेवर्षे विषयः कुरुजाङ्गलः।
आर्यक्षेत्रस्य मध्यस्थः सर्वधान्याकरो महान्॥
हास्तिनाख्यापुरी तस्य शुभा नाभिरिवाबभौ।
भृशं देशस्य देहस्य महती मध्यवर्तिनी॥
—उत्तरपुराण

भागीरथी सलिल संग पवित्रमेतत्।
जीयाच्चिरं गजपुरं भुवितीर्थरत्नम्॥
हस्तिनापुर मित्याहुरनेकाश्चर्य सेवधिम्॥
—वि० ती० कल्प

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ ज़िले की मवाना तहसील में, मेरठ नगर से लगभग २० कि० मी० उत्तर तथा मवाना से ८ कि० मी० दूर स्थित, वनखंड के मध्य ऊँचे-नीचे टीलों की श्रृंखला तथा जैन मंदिरों से युक्त वर्तमान हस्तिनापुर उस प्राचीन पुराण एवं इतिहास प्रसिद्ध महानगरी का प्रतिनिधित्व करता है जो भारत की आद्य महानगरियों में परिगणित, सोम-पुरु-भारत-कुरु आदि क्षत्रियवंशों कीं रङ्गस्थली, तीर्थंकरों की जन्म एवं तपोभूमि, अनेक चक्रवर्ती सम्राटों के साम्राज्य का हृत्स्थल, कौरव-पांडव द्वन्द्व की रंगभूमि, विविध संस्कृतियों का पावन संगम, आर्यक्षेत्र के मध्यभाग में भारतवर्ष के कुरुजांगल विषय (कुरु महाजनपद) की नाभिरूप, पुण्तोया भागीरथी-गंगा के तीर पर स्थित, सर्वप्रकार के धन-धान्य से पूर्ण, अनेक आश्चर्यों का आगार और तीर्थरत्न रही है। इसके अपर नाम गजपुर, नागपुर, ब्रह्मस्थल और आसंदीवत प्राप्त होते हैं, किन्तु लोकप्रिय एवं प्रचलित नाम हस्तिनापुर ही है। वर्तमान शती के पुरातात्त्विक उत्खनन एवं खोज-शोध ने इस नगरी के अस्तित्त्व तथा उसकी संस्कृति के ज्ञात प्राथमिक चरणों को प्राग्वैदिक ताम्रयुगीन सिन्धुघाटी सभ्यता का समसामयिक सिद्ध कर दिया है। कम से कम महाभारत काल के उपरान्त वर्तमान पर्यन्त यह नगरी कई बार उजड़ी, फिर बसी और पुनः उजड़ी, किन्तु जैनों ने इसे अपना पवित्र तीर्थ स्थान मानकर इसके साथ अपना सम्पर्क प्रायः अविच्छिन्न रूप से बनाये रखा।

जैन परम्परा के अनुसार युग के आदि में अयोध्या और काशी के साथ ही गजपुर (हस्तिनापुर) की रचना देवों द्वारा हुई थी—इस क्षेत्र में हाथियों का बाहुल्य होने कारण इस नगर का नाम गजपुर रखा गया। ऋषभदेव के वंशज कुरु के नाम से यह प्रदेश कुरुजांगल देश कहलाया, और भारतवर्ष के आदि चक्रवर्ती सम्राट भरत (ऋषभपुत्र) के अनुज बाहुबलि का पुत्र सोमयश (सोमप्रभ) गजपुर का प्रथम नरेश हुआ—उसी से क्षत्रियों का चन्द्रवंश चला। कहा जाता है कि इस सोमयश को ही भगवान ने कुरु नाम प्रदान किया था। दीक्षा लेने के

उपरान्त भगवान ऋषभदेव ने छः मास का उपवास किया, तदनन्तर पारण के लिए यत्र-तत्र विहार किया, किन्तु छः मास और निराहार बीत गये, पारणा नहीं हुआ। अन्ततः, हस्तिनापुर में राजा सोमयश के अनुज श्रेयांसकुमार ने उन्हें इक्षुरस का आहार दिया। वह दिन बैसाख शुक्ल तृतीया का था अतः लोक में 'अक्षयतृतीया' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भगवान और उनके वंशज भी इसी कारण इक्ष्वाकु कहलाए। हस्तिनापुर में ही सर्वप्रथम मुनि-आहारदान देकर श्रावक धर्म का प्रवर्त्तन करने के उपलक्ष्य में वहाँ एक रत्नमयी स्तूप का निर्माण किया गया।

राजा सोमयश के पुत्र मेघस्वर जयकुमार भरतचक्रवर्ती के प्रधान सेनापति थे और उन्होंने काशी की राजकुमारी सुलोचना को स्वयंवर में प्राप्त किया था। सोमयश के एक वंशज हस्तिन के नाम पर गजपुर का अपर नाम हस्तिनापुर प्रसिद्ध हुआ। इसी नगर में सनत्कुमार, शान्ति, कुन्थु, अर और सुभूम नाम के पाँच चक्रवर्ती सम्राट, जो जैन धर्म के पालक थे, विभिन्न समयों में हुए। इनमें से शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ तो क्रमशः १६वें, १७वें और १८वें तीर्थंकर भी थे। इन तीनों तीर्थंकरों के गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान नामक चार-चार कल्याणक इसी नगर में हुए, जिनकी स्मृति में यहाँ तीन स्तूप निर्मित हुए, और एक स्तूप १९वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के समवसरण के आगमन की स्मृति में निर्मित हुआ। बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत के दो प्रमुख श्रावक, गंगदत्त और कार्तिक श्रेष्ठि हस्तिनापुर के ही निवासी थे। रक्षाबंधन पर्व की उत्पत्ति विषयक घटना—अकम्पनाचार्यादि ७०० मुनियों पर बलि द्वारा किया गया उपसर्ग तथा मुनि विष्णुमार द्वारा बलि का बांधा जाना एवं उपसर्ग का निवारण—इसी नगर में घटित हुई थी। भविसदत्त नामक धर्मात्मा व्यापारी की, पंच-पांडवों की, तथा अन्य अनेक जैन सांस्कृतिक घटनाओं, पुराण एवं लोक कथाओं का सम्बंध हस्तिनापुर से रहा है।

२३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का विहार भी हस्तिनापुर में हुआ, यहाँ उनके अनेक अनुयायी हुए, गजपुर नरेश स्वयंभू तो दीक्षा लेकर उनका मुख्य गणधर बना था। अंतिम तीर्थंकर महावीर भी यहाँ पधारे और इस नगर का तत्कालीन राजा शिवराज अपने कुटुम्बीजनों एवं अनुचरों सहित उनका भक्त शिष्य हुआ था। उनके पदार्पण की स्मृति में भी हस्तिनापुर में एक स्तूप बना। द्रोणमति पर्वत का महातपस्वी मुनि गुरुदत्त, राजकुमार महाबल, श्रावकोत्तम बल, पोत्तलि एवं सुमूह, भयंकर व्याध भीमकूटग्रह, उसकी स्त्री उप्पला और पुत्र गौतम, तथा अन्य अनेक प्रसिद्ध जैन व्यक्ति हस्तिनापुर के निवासी थे।

प्राचीन इतिहासकाल में जैन मुनियों का एक प्रसिद्ध पंचस्तूपनिकाय कहलाया, जिसका पूर्व में वाराणसी एवं और आगे बंगाल पर्यन्त तथा दक्षिण में कर्णाटक देश पर्यन्त प्रसार हुआ। उसका मूल निकास हस्तिनापुर के पंचस्तूपों से ही हुआ प्रतीत होता है।

वर्तमान में हस्तिनापुर में एक ऊँचे टीले पर, १८०० ई० के लगभग दिल्ली के शाही खजांची लाला हरसुखराय एवं उनके सुपुत्र राजा सुगनचन्द्र द्वारा निर्मापित, बड़ा दिगम्बर जैन मंदिर है, जो पुराने मन्दिरों के अवशेषों पर निर्मित हुआ प्रतीत होता है। मंदिर का भव्य उत्तंग सिंहद्वार है, आंगन में एक भव्य मानस्तंभ है, अनेक वेदियां हैं और कई बड़ी-बड़ी धर्मशालाएं हैं। यहाँ एक गुरुकुल, धर्मार्थ औषधालय, स्कूल, शास्त्र भंडार, औषधालय, त्रिलोक शोध संस्थान आदि संस्थाएँ भी हैं। तीर्थक्षेत्र कमेटी के सुचारु प्रबन्ध में तीर्थक्षेत्र का उत्तम विकास हो रहा है, अनेक नवीन निर्माण भी हो रहे हैं। इस बड़े मंदिर के सामने, सड़क के उस पार छोटा मंदिर (श्वेताम्बर) १००वर्ष पुराना है, जिसका कुछ वर्ष पूर्व सुन्दर नवीनीकरण एवं विस्तार हुआ है। मंदिरों से उत्तर दिशा में लगभग ५ कि० मी० की दूरी के बीच विभिन्न टीलों पर पूर्वोक्त पांच स्तूप बने हुए थे, जिनके स्थान में जीर्णोद्धार के मिस संगमर्मर की निषद्याएँ या निशियां (छतरियाँ) बना दी गई हैं। एक टीले पर श्वेताम्बर निशियां बनी हैं—उसी टीले से

लगभग ३०-४० वर्ष पूर्व, तीर्थंकर शान्तिनाथ की एक विशाल खड्गासन मनोज्ञ प्रतिमा, जो अजमेर निवासी किन्हीं सेठ देवपाल ने यहाँ आकर ११७६ ई० में प्रतिष्ठापित की थी, निकली थी। पहली और दूसरी निशि के मध्य स्थित एक अन्य टीले से, जो बारहदरी वाला टीला कहला सकता है, अभी हाल में एक खंडित त्रितीर्थी (शान्ति-कुन्थु-अर) की प्रतिमा निकली है। पुरातत्त्व विभाग की ओर से २०-२५ वर्ष पूर्व विदुर के टीले की खुदाई हुई थी—उसमें भी कई जैन मूर्तियाँ निकली थीं, पहले भी निकलती रही हैं। एक दिगम्बर मुनि की श्वेत पाषाण की प्रतिमा तो वहीं से लगभग ६० वर्ष पूर्व प्राप्त हुई थी, जो बीच में खो गई लगती है और अब शायद पुनः प्राप्त हो गई है।

इस प्रकार पवित्र जैन तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर एक विकासशील उत्तम स्थान है, यातायात एवं आवास की सुविधाएँ हैं और एक अच्छा पर्यटक केन्द्र होने की क्षमता रखता है। हस्तिनापुर में कात्तिकी पूर्णिमा के अवसर पर अष्टदिवसीय विशाल मेला प्रतिवर्ष होता है। जेठ बदि १४ को भी एक छोटा सा मेला लगता है और फाल्गुनि अष्टान्हिका में भी बहुत से यात्री इकट्ठे हो जाते हैं।

शौरिपुर

२२वें तीर्थंकर नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) के जन्मस्थान शौरिपुर की पहचान आगरा जिले की बाह तहसील के यमुनातट स्थित कस्बे बटेश्वर से ५ कि० मी० (पैदलमार्ग से केवल २ कि० मी०) दूर, यमुना के खारों में फैले हुए खंडहरों से की जाती है। आगरा से बटेश्वर ७० कि० मी० की दूरी पर दक्षिण-पूर्व दिशा में है, पक्की सड़क है, जिस पर बसें चलती हैं। स्वयं बाह से यह स्थान ८ कि० मी० और शिकोहाबाद से २५ कि० मी० है। बटेश्वर से शौरिपुर का मार्ग कच्चा है, किन्तु तांगा, कार आदि जा सकते हैं।

१९वीं शती ई० के प्रथम पाद में कर्नल टाड ने शौरिपुर की प्राचीनता की ख्याति सुनी थी, यहाँ हीरे आदि रत्नों के जब-तब मिल जाने की बात भी सुनी थी और कई यूनानी एवं पार्थियन सिक्के भी यहाँ से प्राप्त किये थे। उसी सती के अन्तिम याद में जनरल कनिंघम के सहकारी कार्लाइल ने शौरिपुर के खंडहरों का सर्वेक्षण किया था, जिससे सिद्ध हुआ कि प्राचीन समय में यह अत्यन्त समृद्ध नगरी रही थी, दो हजार वर्ष पूर्व भी यह व्यापार का अच्छा केन्द्र थी, और जैनों के साथ उसका घनिष्ट सम्बन्ध रहा। वस्तुतः, जैनों ने उसके साथ अपना सम्पर्क कभी नहीं छोड़ा, सदैव से उसे अपना पवित्र तीर्थ मानते और उसकी यात्रा करते आये हैं। बल्कि मध्यकाल में तो १६वीं शती से लेकर १९वीं के प्रायः अन्त तक शौरिपुरि में दिगम्बर भट्टारकों की गद्दी रही—उनके पीठ का मुख्यालय सम्भवतया निकटवर्ती हथिकंत में था, किन्तु वे बहुधा शौरिपुर के भट्टारकों के रूप में ही प्रसिद्ध थे, और इस तीर्थ की व्यवस्था भी वही करते थे। सन् १९२४ ई० के लगभग उनके अन्तिम उत्तराधिकारी यति रामपाल की हत्या हो जाने के उपरात आगरा के जैनों ने एक शौरिपुर तीर्थक्षेत्र कमेटी गठित की, और वही तब से इस क्षेत्र की देखभाल करती आ रही है।

शौरिपुर में कई प्राचीन जैन मन्दिर, अनेक जिन मूर्तियों एवं जैन कलाकृतियों के खंडित-अखंडित अवशेष मिले हैं। वर्तमान मन्दिरों में जो ठीक दशा में है और तीर्थ का मुख्य मन्दिर है, १६६७ ई० में शौरिपुर के भट्टारक विश्वभूषण द्वारा निर्मापित एवं प्रतिष्ठापित है। वह स्वयं मूलसंघ—बलात्कारगण-सरस्वतीगच्छ—कुन्दकुन्दान्वय के भट्टारक जनत्भूषण के शिष्य एवं पट्टधर थे। दूसरा मन्दिर बरुवामठ है जो यहाँ का सर्वप्राचीन जैन मन्दिर समझा जाता है। इसकी पुरानी प्रतिमाएँ चोरी चली जाने पर, १९५३ ई० में कृष्ण पाषाण की ८ फुट उत्तुंग नेमिनाथ की मनोज्ञ प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी थी। इस क्षेत्र के जैन यादव राजपूत किसी आत्मीय की मृत्यु होने
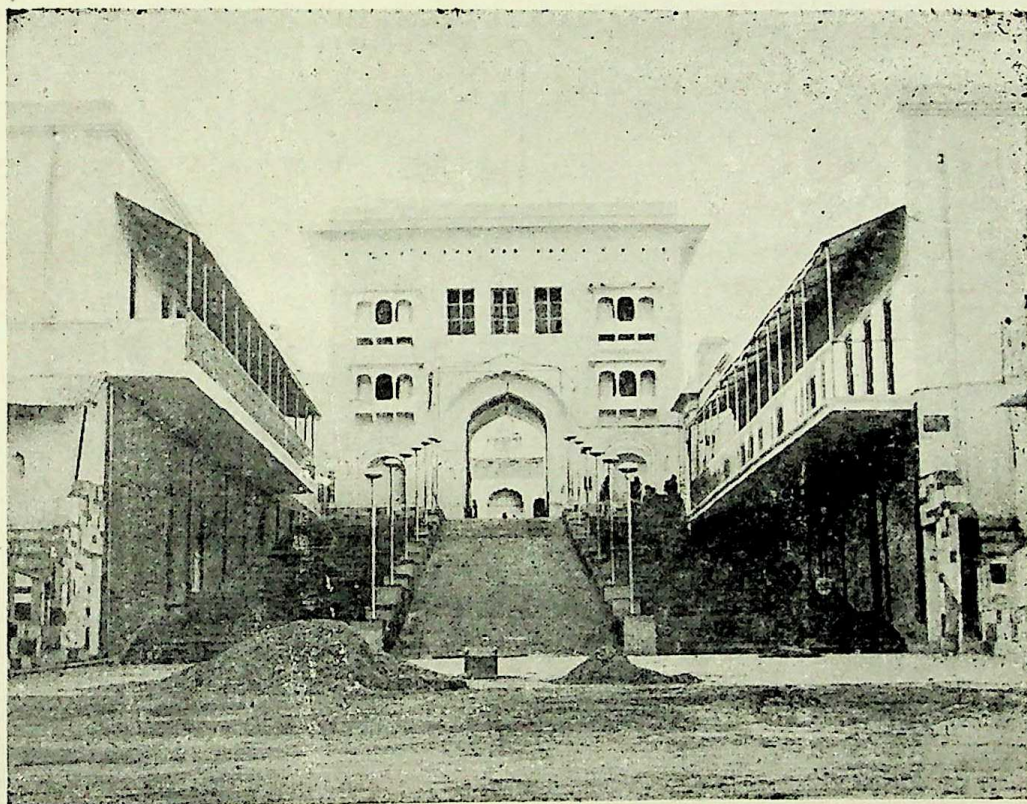
१३—भव्य सिंहद्वार, दिगम्बर बड़ा मन्दिर, हस्तिनापुर
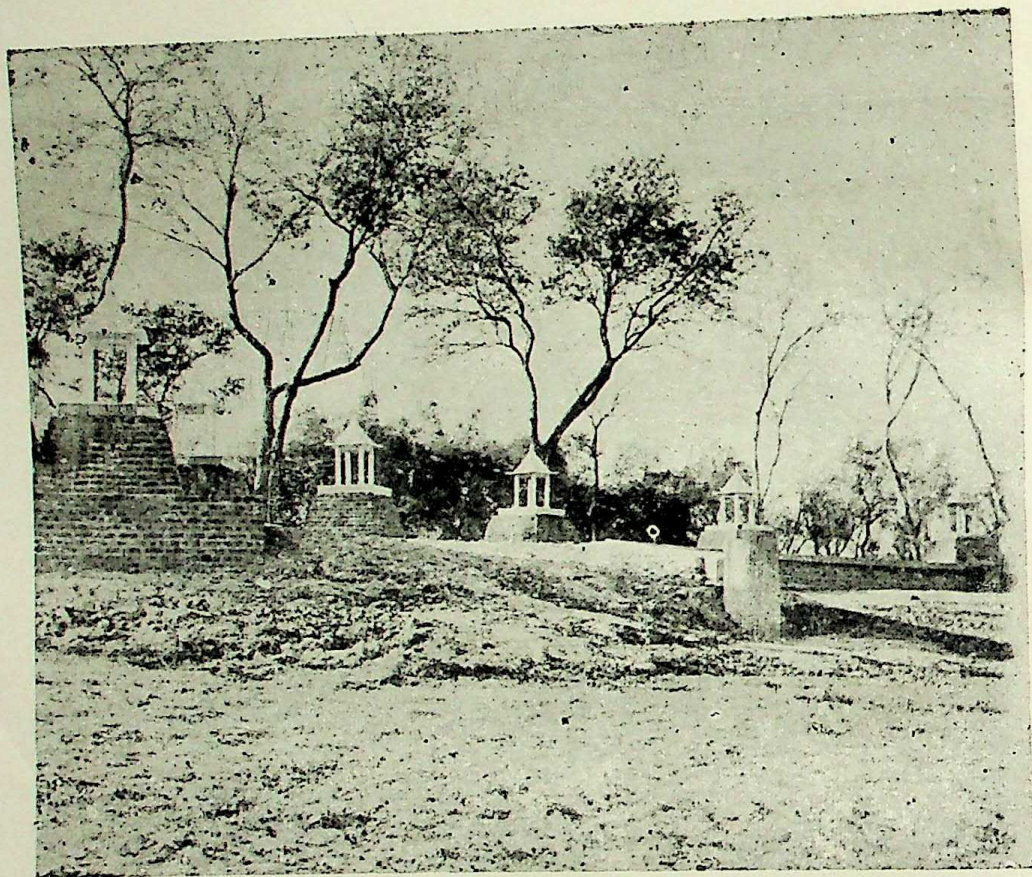
१४—चौबीस तीर्थंकरों की टोंकें, हस्तिनापुर
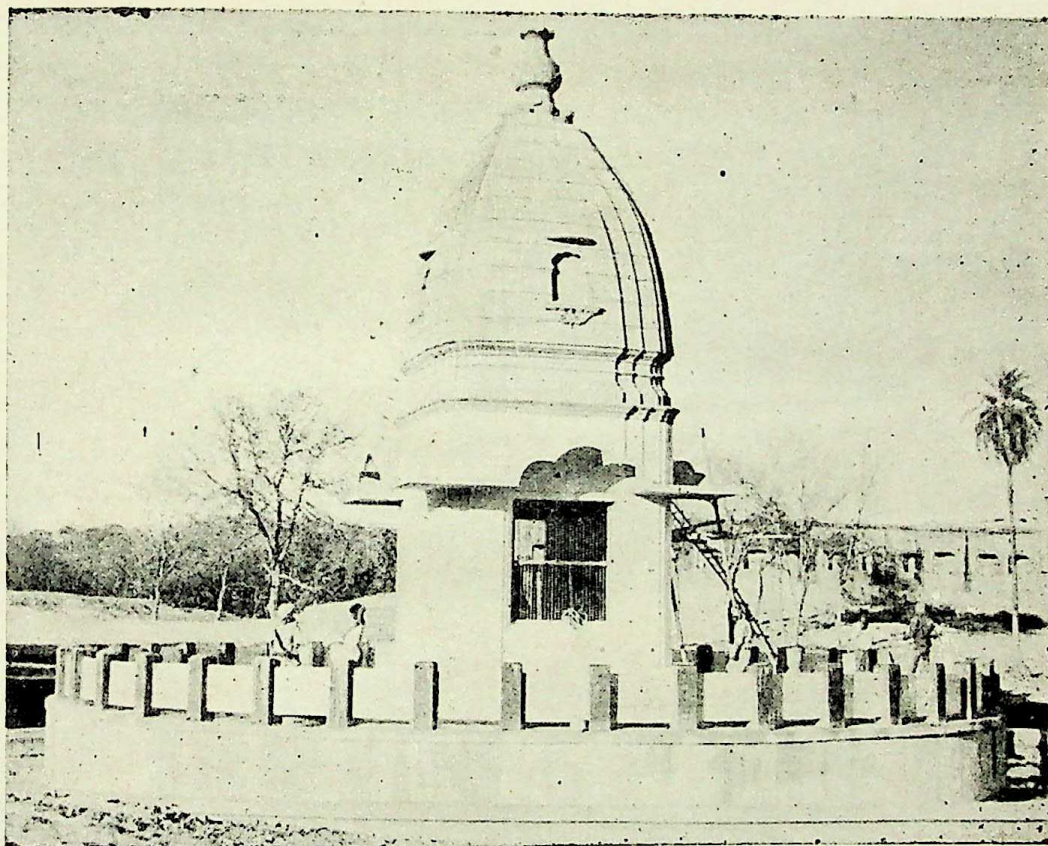
१५— जल-मन्दिर, हस्तिनापुर
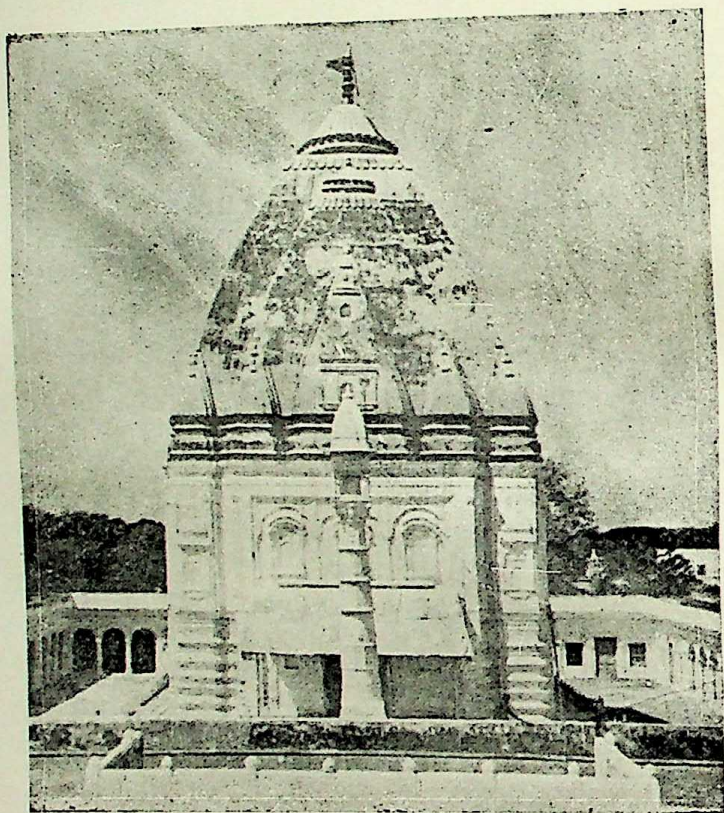
१६—मानस्तंभयुत दि० जैन मन्दिर, हस्तिनापुर

पर इस मन्दिर से लगे चबूतरे पर दीपदान करते हैं। तीसरा मन्दिर शंखध्वज नाम का है जिसमें चार वेदियां हैं, मूलनायक नेमिनाथ हैं, अन्य भी कई कलापूर्ण मध्यकालीन मूर्त्तियां हैं। बाईं ओर के गर्भालय में पार्श्वनाथ, श्रेयांसनाथ (गेंडा-लांछन) और चन्द्रप्रभु की प्रतिमाएँ हैं, जिनमें से मध्यवर्ती प्रतिमा पर सं० १३५७ (ई० १३००) का प्रतिष्ठा लेख अंकित है। दाईं ओर के गर्भगृह में एक प्रतिमा १२५१ ई० की है। यहाँ पंचबालयति, चतुर्तीर्थी आदि शिला फलक भी हैं, यक्ष-यक्षि मूर्तियां भी हैं। इनमें से कई एक हतकान्त (हस्तिकान्तपुर) के भट्टारकीय मन्दिर से लाकर विराजमान की गई हैं। स्वयं हतकान्त में, कहा जाता है कि, ५१प्रतिष्ठाओं के वहां हुए होने का पता चलता है। यह भी कहा जाता कि फिरोज तुगलुक ने हतकान्त पर आक्रमण करके यहाँ के मन्दिरों का भी ध्वंस किया था—जो मन्दिर विद्यमान है वह पक्का दुमन्जिला और विशाल है, बाद में भट्टारकों द्वारा बनवाया हुआ है। इस क्षेत्र में डाकुओं का आतंक अधिक है, अतः वहाँ अब कोई जैन नहीं रहता और मन्दिर अरक्षित पड़ा है।

उपरोक्त शंखध्वज मन्दिर के बाईं ओर मैदान में एक परकोटे के भीतर कई प्राचीन टोंकें, छतरियां आदि बनी हुई हैं। यह स्थान पंचमढ़ी कहलाता है। इसमें ११वीं–१२वीं शती के लगभग की दो भ० महावीर की और एक नमिनाथ की प्रतिमाएँ हैं। छतरियों में यम आदि कई मुनियों के चरण चिन्ह बने हैं, तथा धन्य नामक अन्तकृत केवलि की अत्यन्त प्राचीन टोंक है। एक मन्दिर पर श्वेताम्बरों का भी अधिकार है, उसमें भ० नेमिनाथ की प्रतिमा विराजमान है। शौरिपुर में एक १६ फुट चौड़ा अति प्राचीन कुंआ है, जिसका जल बड़ा स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यवर्धक है। दिगम्बर तीर्थ क्षेत्र कमेटी ने एक धर्मशाला तथा एक कुँआ भी बनवाया है। निकटवर्ती बटेश्वर मुख्यतया शैव तीर्थ है, किन्तु वहाँ भी शौरिपुर के भट्टारकों द्वारा बनवाया हुआ एक विशाल जैन मन्दिर और धर्मशाला है। इस मन्दिर में परिमाल चन्देल के प्रसिद्ध सेनानी आल्हा या ऊदल के पुत्र जल्हण द्वारा बैसाख वदि ७ सं० १२२४ (ई० ११७६) में प्रतिष्ठापित अजितनाथ की मनोज्ञ मूर्ति है, जो महोबा से लाई गई बताई जाती है और लोक में मनिया-देव के नाम से प्रसिद्ध है। इस के आसपास २२ धातु प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इस मन्दिर में एक अति कलापूर्ण शांतिनाथ शिलापट है जिस पर सं० ११२५ (ई० १०६८) की तिथि अंकित है। अन्य भी अनेक पाषाण एवं धातु की मध्यकालीन कलापूर्ण जिन प्रतिमाएँ हैं। ऐसी किंवदंती है कि किसी मुसलमान सर्दार की सेना ने शौरिपुर के प्राचीन मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया था।

शौरिपुरि की स्थापना का श्रेय महाराज शूर या शूरसेन को है। अति प्राचीन क्षत्रिय राजा हरि से हरिवंश की उत्पत्ति हुई थी, उसी के वंश में २०वें तीर्थंकर मुनिसुव्रत हुए, और आगे चलकर वसु नामका प्रसिद्ध राजा हुआ। वसु की सन्तति में यदुवंश का संस्थापक यदु हुआ, जिसके पुत्र नरपति के शूर और सुवीर नाम के दो पुत्र हुए। शूर के नाम पर ही इस पूरे महाजनपद का नाम शूरसेन पड़ा—मथुरा और शौरिपुर इसके मुख्य नगर थे। शूर ने मथुरा में तो अपने अनुज सुवीर को स्थापित किया और स्वयं महाजनपद के एक भाग में, जो कुशार्त्थ, कुशार्त या कुशद्य विषय कहलाता था, शौरिपुरि या शौर्यपुर नगर की स्थापना की। इसी नगर में शूर के उपरान्त उसके पुत्र अन्धकवृष्णि ने राज्य किया। अन्धक वृष्णि के दशपुत्र थे जिनमें सबसे बड़े समुद्रविजय थे और सबसे छोटे वसुदेव थे। शौरिपुर में ही महाराज समुद्रविजय की महादेवी शिवादेवी की कुक्षि से २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म हुआ था। उनके वीर, साहसी एवं कामदेवोपम सुन्दर चाचा वसुदेव के पुत्र बलराम और त्रिखंड-चक्रवर्ती नारायण कृष्ण थे, तथा बुआ कुन्ती के पुत्र हस्तिनापुर के युधिष्ठिरादि पांडव और कर्ण थे। मथुरा में सुवीर के पौत्र और भोजकवृष्णि के पुत्र उग्रसेन की पुत्री देवकी कृष्ण की जननी थीं, और पुत्र कंस मथुरा का अत्याचारी शासक हुआ। राजगृह नरेश जरासन्ध के निरन्तर आक्रमणों से त्रस्त होकर यादवगण शौरिपुरि का परित्याग करके पश्चिमी समुद्रतटवर्ती द्वारिका नगरी में जा बसे थे। यह घटना नेमिनाथ की बाल्यावस्था में हो घटित हुई प्रतीत होती है। फलस्वरूप शौरिपुर की

नगरी उजाड़ प्रायः हो गई, किन्तु गौणरूप में बनी भी रही और तीर्थंकर की गर्भ-जन्मभूमि के रूप में पूजी भी जाती रही।

नेमिनाथ के जन्म से कुछ पूर्व ही शौरिपुर के निकटवर्ती गंधमादन पर्वत पर मुनिराज सुप्रतिष्ठित ने केवल-ज्ञान प्राप्त किया था और उन्हीं के निकट शौरिपुर नरेश अन्धकवृष्णि और मथुरा नरेश भोजकवृष्णि ने मुनिदीक्षा ली थी। शौरिपुर में ही अमलकंठपुर नरेश निष्ठसेन के पुत्र राजकुमार धन्य ने जब भ० नेमिनाथ से मुनिदीक्षा लेकर विहार किया था तो वह एक शिकारी राजा के बाणों से बिद्ध होकर अन्तकृत केवलि हुए थे। मुनिराज अलसत्कुमार ने भी इसी नगर में केवलज्ञान एवं मोक्ष प्राप्त किया था। भ० महावीर के समय में इसी नगर में यम नामक मुनि अन्तकृति केवलि हुये थे। वसुदेव की प्रथम पत्नी और बलराम की माता रोहिणी के सतीत्व की परीक्षा भी इसी शौरिपुर में हुई थी।

मध्ययुग के प्रारंभ में इस नगर का सम्बन्ध मुनि लोकचन्द्र से रहा, और कालान्तर में यहाँ जो भट्टारकीय पट्ट स्थापित हुआ उसमें १६वीं शती ई० के प्रारम्भ से लेकर २०वीं शती के प्रारम्भ पर्यन्त क्रमशः ललितकीर्ति, धर्मकीर्ति, शील भूषण, ज्ञानभूषण, जगत्भूषण, विश्वभूषण, देवेन्द्रभूषण, सुरेन्द्रभूषण, लक्ष्मीभूषण, जिनेन्द्रभूषण, महेन्द्रभूषण, राजेन्द्रभूषण, हरेन्द्रभूषण और यति रामपाल नाम के भट्टारक हुए, जिन्होंने शौरिपुर, बटेश्वर, हथिकान्त तथा आसपास के अन्य नगरों एवं ग्रामों में पचासों मन्दिर बनवाये, सैकड़ों प्रतिष्ठाएँ कराई, स्वयं तथा अपने शिष्यों एवं आश्रित विद्वानों से विपुल साहित्य की रचना कराई, और अपनी सिद्धियों एवं चमत्कारों से भी जनता को प्रभावित किया।

(ख) अन्य कल्याणक क्षेत्र

उ० प्र० में स्थित तीर्थंकरों की जन्मभूमियों के अतिरिक्त अन्य कल्याणक क्षेत्रों में प्रयाग, पभोसा, संकिसा, अहिच्छत्रा और पावानगर हैं।

प्रयाग

इलाहाबाद नगर का प्राचीन भाग, जो त्रिवेणी-संगम के निकट प्रयाग नाम से प्रसिद्ध है, भारतवर्ष का महान तीर्थ स्थान रहता आया है। जैन साहित्य में भी उसे एक तीर्थक्षेत्र माना गया है, और वहां उसके अपरनाम प्रजाग, पुरिमताल एवं पूर्वतालपुर प्राप्त होते हैं। इस नगर में आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के एक छोटे पुत्र वृषभसेन का राज्य था, जो बाद में उनका गणधर भी हुआ। यहीं सिद्धार्थ नामक वन में भगवान ऋषभदेव ने जिनदीक्षा ली थी और उसके उपलक्ष में प्रजा ने उनकी पूजा की थी, इसीलिए वह स्थान प्रजाग या प्रयाग नाम से प्रसिद्ध हुआ।

एवमुक्त्वा प्रजा यत्र प्रजापतिमपूजयन।
प्रदेशः स प्रजागाख्यो यतः पूजार्थयोगतः ॥ —हरिवंश, IX, ९६

आगे चलकर इसी पूर्वतालपुर, पुरिमताल या प्रयाग में, संगम के निकट वटवृक्ष के नीचे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था, जिसके कारण यह वृक्ष लोक में 'अक्षयवट' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। और इसी प्रयाग की पवित्र भूमि पर आदि तीर्थंकर का सर्वप्रथम धर्मचक्र प्रवर्त्तन हुआ था। इसी स्थान में अणिकापुत्र को गंगा पार करते समय केवल ज्ञान हुआ बताया जाता है।

पभोसा

पभोसा, पफोसा या प्रभासगिरि इलाहाबाद जिले में प्राचीन महानगरी कौशाम्बी के लगभग ४ कि० मी० उत्तर-पश्चिम में स्थित है और जैनों का परम पवित्र तीर्थ है। इस पहाड़ी पर कौशाम्बी में जन्मे छठे तीर्थंकर

पद्मप्रभु के तप और ज्ञान कल्याणक हुए थे । इस तपोभूमि पर ईसापूर्व दूसरी शती में अहिच्छत्रा के राजा आषाढ़सेन ने काश्यपीय अरहंतों (जैन मुनियों) के निवास के लिए गुफाएँ बनवाईं थीं, जैसाकि वहां प्राप्त उसके शिलालेख से प्रगट है । उस समय कौशाम्बी का राजा बहसतिमित्र था जो उक्त आषाढ़सेन का भानजा था । पहाड़ी पर अन्य भी प्राचीन जैन अवशेष प्राप्त हैं, और प्रयाग निवासी हीरालाल गोयल द्वारा १८२४ ई० में बनवाया हुआ पद्मप्रभु का भव्य मन्दिर है, तथा एक धर्मशाला भी है । यह स्थान अवश्य ही प्राचीनकाल में जैन मुनियों की तपोभूमि रहा है ।

संकिसा

फर्रुखाबाद जिले में, मोटा रेल स्टेशन से लगभग ८ कि० मी० पर प्राचीन संकिसा, संकास्स या संकाश्य नामक प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्र के अवशेष हैं । वर्तमान कम्पिल से यह स्थान लगभग ३० कि०मी० दूर है, किन्तु प्राचीन समय में सम्भवतया महानगरी काम्पिल्य का ही एक संनिवेश था । यहां मौर्यकाल जितने प्राचीन पुरातत्त्वावशेष मिले हैं, जिनमें जैनमन्दिरों और मूर्तियों के अवशेष भी मिले हैं । जनरल कनिंघम को निकटवर्ती पिलखना टीले के ऊपर भी एक जिनमन्दिर के ध्वंसावशेष मिले थे । यह स्थान कम्पिल्य में जन्मे १३वें तीर्थंकर विमलनाथ की तप और केवल ज्ञान भूमि है । मध्यकाल में जैन कवि धनपाल एवं भगवतीदास इसी स्थान के निवासी थे, और मुनि ब्रह्मगुलाल ने भी यहां निवास किया था । संकिसा बौद्ध धर्म का भी तीर्थ है, और इधर सैकड़ों वर्षों से उसी रूप में उसकी अधिक प्रसिद्धि रही है ।

अहिच्छत्रा

बरेली जिले की आंवला तहसील के कस्बे रामनगर के बाह्य भाग में सुप्रसिद्ध जैनतीर्थ अहिच्छत्रा है । इस स्थान पर २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ पर पुराणप्रसिद्ध महा उपसर्ग हुआ था और उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी । यहीं भगवान पार्श्वनाथ के प्रथम समवसरण की रचना हुई थी । किसी समय यहां एक विशाल एवं रमणीक नगर था, किन्तु अब जंगल में यत्र-तत्र फैले प्राचीन टीले और ध्वस्त खण्डहर ही शेष हैं । इनके अतिरिक्त एक भव्य एवं विशाल जैन मन्दिर है जिसमें पांच वेदियां हैं । एक वेदी 'तिखाल वाले बाबा' की कहलाती है जिसमें भ० पार्श्वनाथ की प्रतिमा तथा चरण चिन्ह स्थापित हैं । अन्य वेदियों में भी मनोज्ञ जैन प्रतिमाएँ विराजमान हैं । उपसर्ग स्थान पर एक दर्शनीय छत्री (निषीधिका) का भी निर्माण हो चुका है । एक शिखरबन्द मन्दिर रामनगर कस्बे में भी है । क्षेत्र पर एक विशाल धर्मशाला भी है, जिसमें यात्रियों के लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध हैं । बिजली भी आ गई है और रेवती बहोडाखेड़ा से, जहां निकटतम रेल स्टेशन है, क्षेत्र तक पक्की सड़क भी बन गई है । आंवला रेल स्टेशन से क्षेत्र लगभग ६ मील है । क्षेत्र के निकट ही एक राजकीय विकास खण्ड की भी स्थापना हो चुकी है । प्रतिवर्ष चैत्र वदी ८ से १२ तक इस क्षेत्र पर भारी जैन मेला होता है । इस तीर्थ क्षेत्र की व्यवस्था एक प्रबन्धकारिणी कमेटी करती है, जिसने तथा रामपुर आदि निकटवर्ती स्थानों के जैनों ने गत वर्षों में इस क्षेत्र के संरक्षण, उन्नति, विकास और प्रचार में प्रभूत योग दिया है । फलस्वरूप सहस्रों यात्री प्रतिवर्ष इस तीर्थ की यात्रा करने आते हैं ।

यह स्थान २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की ज्ञानकल्याण भूमि है । ई० पू० ८७७ में जन्मे और ७७७ में निर्वाण प्राप्त भ० पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता को अब प्रायः सभी देशी एवं विदेशी विद्वानों ने मान्य कर लिया है । अपने तप काल में, हस्तिनापुर में पारणा करके वह गंगा के किनारे-किनारे जि० बिजनौर के उस स्थान पर

आये थे जो बाद में 'पारसनाथ किला' कहलाया। वहां से विहार करके वह उत्तर पांचाल राज्य की राजधानी पांचालपुरी, अपरनाम परिचक्रा एवं शंखावती, के निकटवर्ती भीमाटवी नामक गहन वन में पहुंचे। जब वह वहां कायोत्सर्ग ध्यान में लीन थे तो शम्बर नामक दुष्ट असुर ने उन पर भीषण उपसर्ग किये। नागराज धरणेन्द्र और यक्षेश्वरी पद्मावती ने उन उपसर्गों के निवारण का यथाशक्ति प्रयत्न किया। नागराज (अहि) ने तो भगवान के सिर के ऊपर छत्राकार सहस्रफण मंडप बनाया था। इसी कारण वह नगरी (पांचालपुरी) भी लोक में 'अहिच्छत्रा' नाम से प्रसिद्ध हुई। भगवान को वहीं उसी समय केवलज्ञान प्राप्त हुआ, उनका समवसरण जुड़ा और उनके धर्मचक्र का प्रवर्तन हुआ।

इस प्रकार अहिच्छत्रा जैनों का परम पुनीत तीर्थ बना, और वे उसके दर्शनार्थ बराबर आते रहे, यद्यपि यह स्थान चिरकाल से उजाड़ एवं वनाच्छादित पड़ा हुआ है। प्राचीन मन्दिरों एवं भवनों के भग्नावशेषों के रूप में कई टीले यहां बिखरे पड़े हैं, और एक प्राचीन दुर्ग की प्राचीर के अवशेष भी दृष्टिगोचर होते हैं। कनिंघम, एटकिन्सन, फुहरर, नेविल आदि की रिपोर्टों एवं गजेटियरों से प्रकट है कि इस स्थान के एक जैनतीर्थ होने की तथा भ० पार्श्वनाथ के साथ उसका सम्बन्ध होने की मान्यता मध्यकाल में भी बनी रही और अविच्छिन्न रूप में वर्तमान पर्यन्त चली आई है। इस शताब्दी में हुए पुरातात्त्विक उत्खनन एवं शोध खोज से जहां विविध विपुल सामग्री प्रकाश में आई है वहां उसने यह भी सिद्ध कर दिया कि कम से कम गत दो हजार वर्ष से यह स्थान अहिच्छत्रा नाम से ही प्रसिद्ध रहा है। अनेक जैन पुराण एवं कथा ग्रंथों में अहिच्छत्रा के उल्लेख प्राप्त होते हैं। ई० पू० २री शती के लगभग हुए अहिच्छत्रा के राजा आषाढ़सेन ने अपने भानजे कौशाम्बी के राजा बहसतिमित्र के राज्य में स्थित प्रभासगिरि (प्रभोसा) पर जैन मुनियों के लिए गुफायें बनवाई थीं। उसके निकट वंशज राजा वसुपाल ने अहिच्छत्रा में भगवान पार्श्वनाथ का भव्य मन्दिर बनवाया था। दूसरी शती ई० में अहिच्छत्रा का राजा पद्मनाभ जैन था और उसी के पुत्रों दद्दिग और माधव ने सुदूर दक्षिण में जाकर मैसूर के प्रसिद्ध गंगराज्य की स्थापना की थी। अहिच्छत्रा के कोत्तरी (कटारी) खेड़ापर प्राचीन जैन मन्दिर और मूर्तियों के अवशेष मिले हैं जिनमें २री शती ई० के एक लेख में 'अहिच्छत्रा' नाम भी स्पष्ट रूप में अंकित है। छठीं-सातवीं शती में इसी नगर के पार्श्व जिनालय में अपनी दार्शनिक शंका का समाधान प्राप्त करके ब्राह्मण विद्वान पात्रकेसरि ने सम्यक् दृष्टि प्राप्त की थी तथा पात्रकेसरि-स्तोत्र की रचना की थी और ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इसी नगर में जैन महाकवि वाग्भट ने अपने नेमिनिर्वाण-काव्य की रचना की थी। चौदहवीं शती में आचार्य जिनप्रभसूरि ने इस तीर्थ की यात्रा की थी और उसका वर्णन अपने विविध तीर्थकल्प के अन्तर्गत अहिच्छत्रा-कल्प में किया था, जिसमें उन्होंने यहां के स्मारकों, अतिशयों, आश्चर्यों और अनुश्रुतियों का उल्लेख किया है। आगरा के पं० बनारसीदास ने १७वी शताब्दी में अहिच्छत्रा की यात्रा की थी और १७४८ ई० में कवि आसाराम ने अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-स्तोत्र की रचना की थी।

इस प्रकार तीर्थंकर पार्श्व की ज्ञान-कल्याण भूमि, जैनों का पावनतीर्थ, उत्तर प्रदेश का एक प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्र एवं कलाधाम और प्राचीन भारत की एक समृद्ध राजधानी यह अहिच्छत्रा नगरी रही है जो अपने महत्व एवं अवशेषों के लिए आज भी दर्शनीय है।

पावानगर

उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले में स्थित संठियावडीह फाजिलनगर का समीकरण अनेक विद्वान बौद्ध साहित्य में उल्लिखित मल्लों की पावा से करते हैं और कई एक उसे ही भगवान महावीर की निर्वाण भूमि पावा,
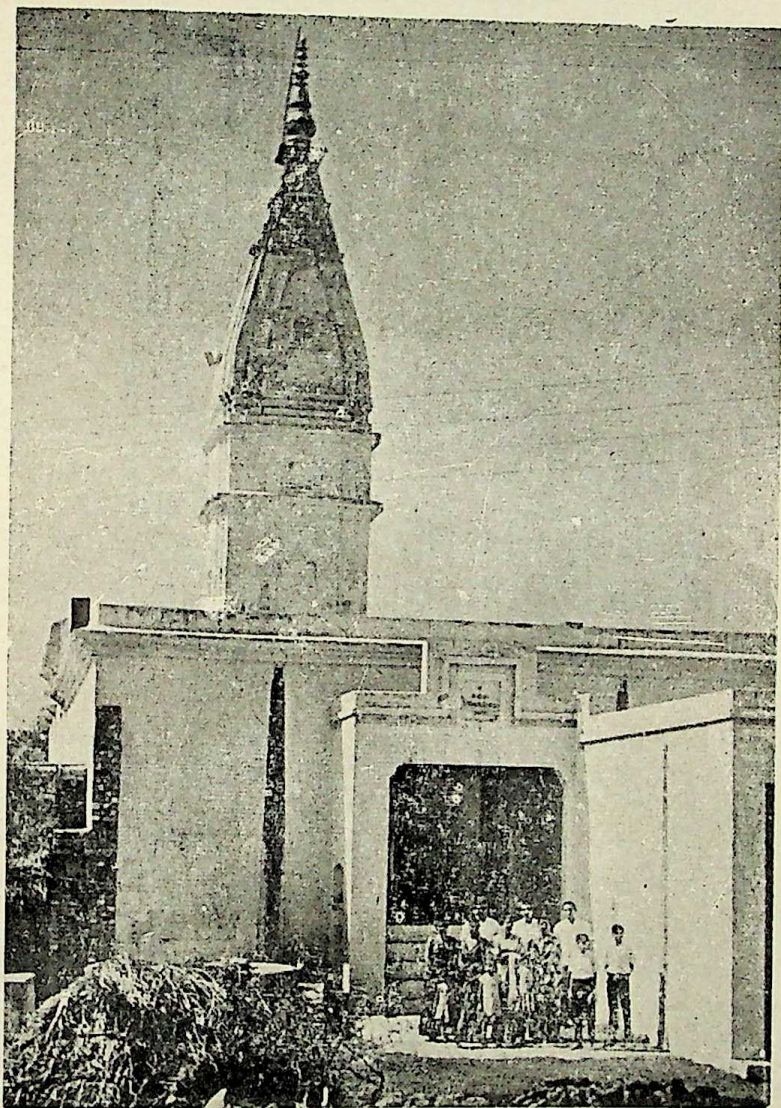
१७—भगवान पार्श्वनाथ मन्दिर, अहिच्छत्रा
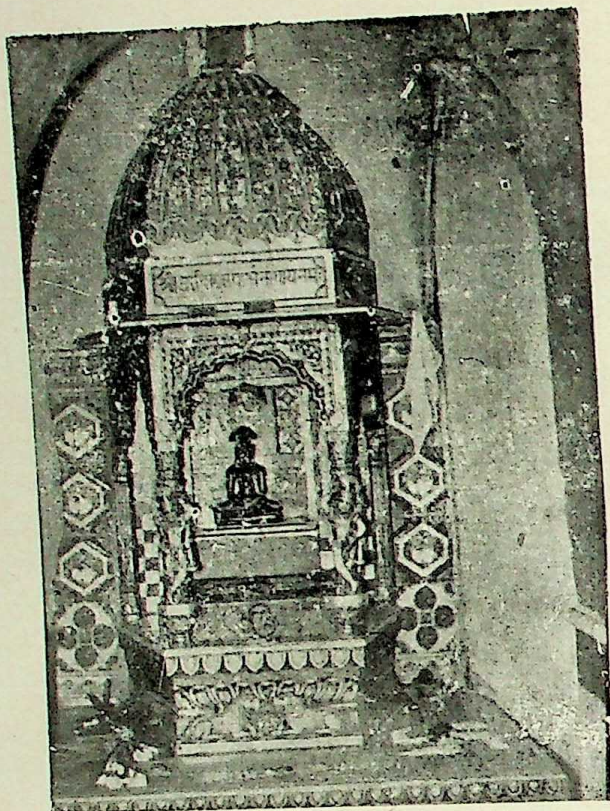
१८—'तिखाल वाले बाबा', अहिच्छत्रा
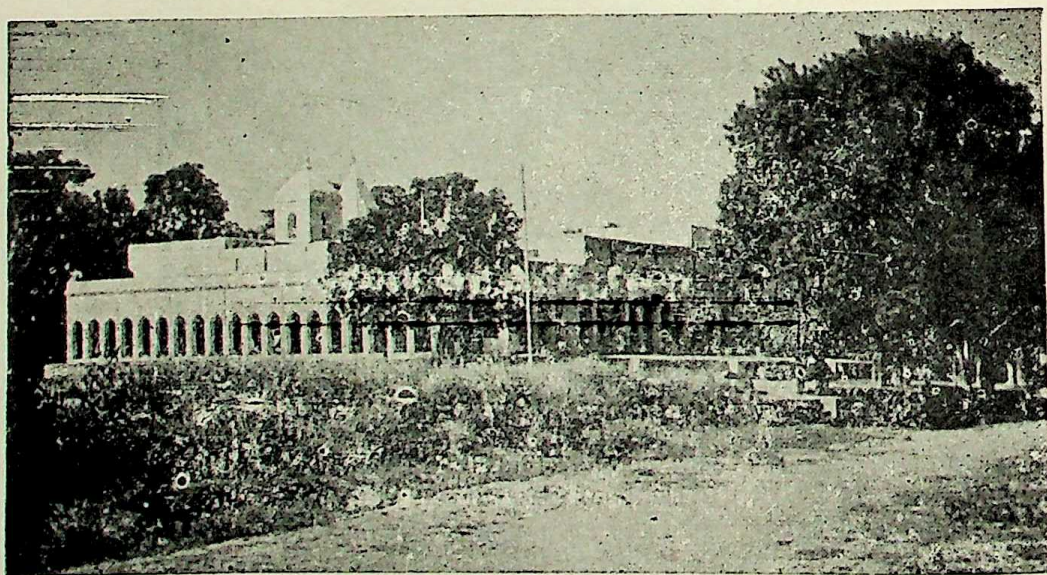
१९—दि० जैन धर्मशाला, अहिच्छत्रा

मध्यमापावा या अपापापुरी मानने लगे हैं। अतएव उक्त संठियावडीह को नवीन नाम पावानगर दे दिया गया है। लगभग २६ वर्ष पूर्व वहां एक विद्यालय भी 'पावानगर महावीर इंटर कालेज' नाम से स्थापित हुआ था, जो इस वर्ष श्री महावीर निर्वाण समिति उ० प्र० के प्रयत्न से डिग्री कालेज हो गया है। एक जिनालय और धर्मशाला बनाने का भी प्रयत्न किया जा रहा है, श्री पावानगर निर्वाण क्षेत्र समिति नाम की एक कमिटी भी गठित हो गई है। यह स्थान गोरखपुर से ४५ मील, देवरिया से ३५ मील, कसया से १० मी०, कुशीनगर से १२ मील और तमकुही रोड से १२ मील पर स्थित है। यों जैनों में चिर प्रचलित लोक विश्वास के अनुसार भ० महावीर की निर्वाणभूमि बिहार राज्य के पटना जिले में बिहार शरीफ रेल स्टेशन से नातिदूर स्थित पावापुर है जहां कई प्राचीन एवं अर्वाचीन भव्य और विशाल जिन मन्दिर, धर्मशालाएँ आदि हैं तथा निर्वाण का स्मारक अति सुन्दर जल-मन्दिर है। अतएव देवरिया जिले के पावानगर का महावीर की निर्वाणभूमि होना निर्विवाद नहीं है, तथापि यह स्थान भी प्राचीन प्रतीत होता है, यहां अनेक पुराने टीले भी हैं जिनके पुरातात्त्विक उत्खनन से, सम्भव है, कुछ तथ्य प्रकाश में आयें जो उक्त विवाद के समाधान में सहायक हों।

(ग) तपोभूमियां एवं सिद्धभूमियां

इस वर्ग में उत्तर प्रदेश में स्थित प्रयाग, गढ़वाल–हिमालय के श्रीनगर तथा नर, नारायण, बद्रीनाथ, आदि पर्वत् शिखर, पभोसा, हस्तिनापुर, पारसनाथ किला, शौरिपुर और मथुरा हैं। इनमें से प्रयाग, पभोसा, हस्तिनापुर और शौरिपुर का परिचय ऊपर दिया जा चुका है।

गढ़वाल-हिमालय

युगादिजिन भगवान ऋषभदेव ने अपने मुनि जीवन में मध्य–हिमालय के पार्वतीय प्रदेशों में तपश्चरण किया और केवल ज्ञान की प्राप्ति के उपरान्त वहां विहार करके धर्मोपदेश भी दिया था, ऐसा आदिपुरण आदि प्राचीन ग्रन्थों से प्रगट होता है। गढ़वाल का परमधाम बद्रीनाथ जिस पर्वतशिखर पर स्थित है, उसके एक ओर 'नर' पर्वत है और दूसरी ओर 'नारायण' पर्वत है—नरपर्वत भगवान ऋषभदेव की तपोभूमि है और नारायण पर्वत देशना भूमि। वह नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा हो गये थे, इसी तथ्य के प्रतीक रूप में उक्त पर्वतों के ये नाम प्रसिद्ध हुए लगते हैं। स्वयं बद्रीनाथ की मूर्ति को जैनीजन तीर्थंकर प्रतिमा ही जानते-मानते रहे हैं और दर्शनार्थ उस धाम की यात्रा भी करते रहे हैं। उत्तरी हिमशृंखला को पार करके पर्वतराज कैलास, अपरनाम अष्टापद, के शिखर से ही उन ऋषभलांछन, जटाधारी, महादेव ऋषभनाथ ने निर्वाण, सिद्धत्व एवं शिवत्व प्राप्त किया था। अन्य अनेक मुनियों ने भी भगवान के साथ मुक्ति लाभ की थी। पौड़ीगढ़वाल की राजधानी श्रीनगर में भगवान का समवसरण आया लगता है। वहाँ मध्यकाल में अलकनंदा के तट पर एक भव्य आदिनाथ मन्दिर विद्यमान था, जो १८९२ ई० की गौना की बाढ़ में ध्वस्त हो गया। वर्तमान शती के प्रारम्भ में नवीन मन्दिर बना। वह भी भव्य है और उसमें पुराने मन्दिर की, बाढ़ से बची, कुछ अति प्राचीन प्रतिमाएँ भी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मध्य हिमालय के ये पार्वतीय प्रदेश जैन मुनियों की बहुधा तपोभूमि रहे हैं।

पारसनाथ किला

बिजनौर जिले के नगीना नामक कस्बे के उत्तर-पूर्व ९ मील पर बढ़ापुर नाम का छोटा सा कस्बा है. जिसके ३ मील पूर्व दिशा में किसी अति प्राचीन बस्ती के खण्डहरों से युक्त कई टीले हैं। ये टीले दो डेढ़ वर्ग मील

के क्षेत्र में फैले हैं, और ये खण्डहर ही 'पारसनाथ किला' नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से मुख्य बड़े टीले पर एक सुदृढ़ प्राचीन दुर्ग के भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं और विशेषरूप से यह किला ही पारसनाथ-किला कहलाता रहा है।

इस स्थान की व्यवस्थित रूप से पुरातात्विक शोध-खोज तो अभी नहीं हुई है, किन्तु जितनी कुछ भी हुई उसके फलस्वरूप यहां से अनेक खंडित-अखंडित तीर्थंकर प्रतिमाएँ, कलापूर्ण तीर्थंकर पट्ट, मानस्तम्भ, जिनमूर्तियों से अलंकृत दरवाजों के सिरदल, तथा अन्य अनेक कलाकृतियां प्राप्त हुई हैं। एकाकी तीर्थंकर प्रतिमाओं में भगवान पार्श्वनाथ की एक विशालकाय भग्न प्रतिमा है जो बढ़ापुर गांव में प्राप्त हुई थी, तथा तीर्थंकर ऋषभदेव, सम्भवनाथ, चन्द्रप्रभु, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, और महावीर की भी प्रतिमाएँ हैं। एक खण्डित किन्तु अत्यन्त कलापूर्ण शिलापट्ट पर केन्द्र में एक तीर्थंकर पद्मासनस्थ हैं। उसके बायें ओर कोष्ठक में दो खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमाएं हैं जिनमें से एक सप्तफणालंकृत है अतएव निश्चित रूप से तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। दूसरी सम्भव है नेमिनाथ की हो। दायें भाग में उसी प्रकार दो प्रतिमाएँ होंगी, किन्तु वह भाग टूट गया है। पूरा पट्ट पंचजिनेन्द्रपट्ट अथवा पंचबालयति-पट्ट रहा होगा। एक अन्य अत्यन्त कलापूर्ण पट्ट पर मध्य में कमलांकित आसन पर भ० महावीर विराजमान हैं, उनके एक ओर नेमिनाथ की तथा दूसरी ओर चन्द्रप्रभु की खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। उत्फुल्ल कमलों से मंडित प्रभामंडल, सिर के ऊपर छत्रत्रय, आजू-बाजू सुसज्जित गजयुगल, कल्पवृक्ष, चौरीवाहक, मालावाहक, पीठ पीछे कलापूर्ण स्तम्भ, कुबेर, अम्बिका आदि से समन्वित यह मूर्त्तांकन अत्यन्त मनोज्ञ एवं दर्शनीय हैं। पट्ट के पादमूल में एक पंक्ति का लेख भी है—'श्री विरद्धमान सामिदेव सम १०६७ राणलसुत भरत प्रतिमा प्रठपि'। लेख की भाषा अपभ्रष्ट संस्कृत अथवा प्राकृत जैसी है और लिपि ब्राह्मी है।

प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी ने इसे वि० सं० १०६७ अर्थात सन् १०१० ई० का अनुमान किया है। किन्तु लेख को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि संभव है वह महावीर निर्वाण संवत् हो, जिसके अनुसार यह लेख एवं प्रतिमापट्ट सन् ५४० ई० का होना चाहिए। लेख की भाषा और लिपि भी ११वीं शती की न होकर गुप्तोत्तर काल, ६ठीं-७वीं शती की जैसी प्रतीत होती है। इस स्थान से गंगा-यमुना की मूर्ति युक्त द्वार की चौखट के अंश भी मिले हैं, जिनका प्रचलन गुप्तकाल में हुआ था। गुप्त शैली की अन्य कई कलाकृतियां भी इस स्थान में प्राप्त हुई हैं। अतएव यह स्थान गुप्तकाल जितना प्राचीन तो है ही, और ११-१२वीं शती तक यहां अच्छी बस्ती रही प्रतीत होती है। ये विविध तथा उनके जैन कलाकृतियां, कई जैन मन्दिरों के तथा एक अच्छे जैन अधिष्ठान (मठ या विहार) के चिन्ह यह सूचित करते हैं कि गुप्तोत्तर काल में यह स्थान एक समृद्ध एवं प्रसिद्ध जैन केन्द्र रहा होगा। इस स्थान से प्राप्त तीर्थंकर प्रतिमाएँ भी सभी दिगम्बर हैं, जैसा कि मध्यकाल से पूर्व प्रायः सभी जिन-प्रतिमाएँ होती थीं। पूर्वोक्त बढ़ापुर वाली विशालकाय पार्श्व प्रतिमा धरणेन्द्र-पद्मावती समन्वित हैं, उसका घटाटोप फणमण्डल भी दर्शनीय है और सिंहासन पर भी सर्प की एड़दार कुंडलियां दिखाई गई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पारसनाथ-किला के मुख्य जिनप्रासाद की मूलनायक प्रतिमा यही होगी, और जिस समय यह प्रतिष्ठित की गई होगी उस समय तक भ० पार्श्वनाथ के उपसर्ग की घटना तथा इस स्थान के साथ भी उनका सम्बन्ध रहे होने की बात स्थानीय जनता की स्मृति में सुरक्षित थी। सम्भव है कि भ० पार्श्वनाथ के समय से ही यह स्थान उनके नाम से प्रसिद्ध हो चला हो।

ऐसा प्रतीत होता है कि अहिच्छत्रा से विहार करके तीर्थंकर पार्श्वनाथ निकटवर्ती बिजनौर जिले के इस स्थान पर पुनः आये थे। वहाँ उनका समवसरण तो आया ही लगता है, केवलज्ञान के पूर्व हस्तिनापुर से पारणो-

परान्त विहार करके अहिच्छत्रा की भीमाटवी में पहुंचने के पूर्व भी वह कुछ समय इस स्थान पर तिष्ठे और तपस्या की थी। अतएव यह उनकी तपोभूमि और देशनाभूमि रही प्रतीत होती है।

मथुरा

'मविआण पुण्णरिद्धी जा जायइ महुरतित्थजत्ताए'

—विविध तीर्थ कल्प

उत्तर प्रदेश में यमुनातटवर्ती मथुरा व्रजमण्डल की मुकुटमणि है। हिन्दू, जैन और बौद्ध अनुश्रुतियों में जिन प्राचीनकालीन सोलह महाजनपदों, या अट्ठारह महाराज्यों अथवा साढ़े पच्चीस आर्यदेशों के उल्लेख मिलते हैं उन सब में शूरसेन या शौरसेन देश की भी गणना की गयी है। मथुरा इसी शौरसेन जनपद की राजधानी थी, इतना ही नहीं, वह प्राचीन भारतवर्ष की प्रसिद्ध दश राजधानियों अथवा प्रमुख महानगरियों में गिनी जाती थी। इस मथुरा के अनुकरण पर ही दक्षिण भारत के पाण्ड्य देश की राजधानी मदुरा या मधुरा कहलाई। इन दोनों में परस्पर भेद करने के लिए प्राचीन जैन साहित्य में बहुधा उन्हें उत्तर मथुरा एवं दक्षिण मथुरा नामों से सूचित किया गया है।

पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार अति प्राचीन काल में सुप्रसिद्ध हरिवंश का इस प्रदेश पर आधिपत्य था। इसी वंश के शूर या शूरसेन नामक राजा के नाम से इस देश का शौरसेन नाम प्रसिद्ध हुआ और इस प्रदेश की भाषा भी शौरसेनी कहलाई। मथुरा नगर का वास्तविक निर्माता भी सम्भवतया यही नरेश था। हरिवंश कीं एक प्रधान शाखा यदुवंश थी। कालान्तर में इस शाखा का ही शौरसेन प्रदेश से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। महाभारतकाल में यदुवंशियों की प्रधान राजधानी वर्तमान आगरा के निकट शौरीपुर में थी। यद्यपि कुछ समय पश्चात् उसका परित्याग करके यादव लोग पश्चिम तटवर्ती द्वारकापुरी में जा बसे थे, किन्तु इस देश के साथ उनका सम्बन्ध बना रहा। मथुरा में शूर के अनुज सुवीर के पौत्र और भोजकवृष्णि के पुत्र उग्रसेन का राज्य था। यह राजा नारायण कृष्ण का मातामह था। स्वयं कृष्ण की जन्मभूमि एवं बाललीला भूमि भी मथुरा ही थी। उग्रसेन के आततायी पुत्र कंस का उच्छेद करके कृष्ण ने ही उग्रसेन को फिर से मथुरा के सिंहासन पर स्थापित किया था, और उग्रसेन के वंशज जो उग्रवंशी भी कहलाये, मथुरा में मौर्यकाल पर्यन्त राज्य करते रहे।

मगध साम्राज्य के उत्कर्ष काल में मथुरा का राज्य नन्दों और मौर्यों का करद राज्य रहा प्रतीत होता है। शुंगकाल में पश्चिमोत्तर दिशा से यवनों (यूनानियों) के आक्रमण प्रारम्भ हो गये और उनके शासक दमित्र एवं मिनेन्दर ने २री शती ई० पू० में सम्भवतया मथुरा पर भी अधिकार कर लिया था। प्रथम शती ई०पू० के मध्य के लगभग शक जाति ने इस नगर पर अधिकार कर लिया और लगभग एक सौ वर्ष पर्यन्त शक महाक्षत्रप मेवकि, रज्जुबल, शोडास आदि ने यहां शासन किया। उनके उपरान्त पह्लवों (पार्थियनों) का भी कुछ काल अधिकार रहा हो सकता है। प्रथम शताब्दी ईस्वी के अन्तिम पाद से लेकर लगभग ३री शती ई० के मध्य तक कुषाण नरेशों का मथुरा में शासन रहा। तदनन्तर नागों एवं वकाटकों का प्रभुत्व रहा और ४थी शती ई० के मध्य से लेकर ७वीं शती ई० के प्रारम्भ तक मथुरा गुप्त साम्राज्य का अंग रही, जिसके पश्चात् कुछ दिन हूणों का भी अधिकार रहा। सन् ५३१ ई० के लगभग मालवा नरेश यशोधर्मन के हाथों हूण नरेश मिहिरकुल की पराजय के उपरान्त मथुरा में फिर से किसी प्राचीन भारतीय वंश का, सम्भवतया उग्रवंश की किसी शाखा का, राज्य स्थापित हो गया और ७वीं शताब्दी में इस वंश के जिनदत्तराय नामक एक राजकुमार के दक्षिण भारत में चले

जाने और कर्णाटक देश के एक भाग में सान्तार वंश की स्थापना करने के प्रमाण मिलते हैं। दक्षिण कर्णाटक का यह जैन राजवंश कालान्तर में कई शाखा-प्रशाखाओं में विभक्त होता हुआ हुम्बच, कार्क आदि स्थानों में उत्तर मध्यकाल पर्यन्त चलता रहा। मथुरा में इस वंश के मूल पुरुषाओं के वंशज स्थानेश्वर के वर्धनवंशी नरेशों और तदनन्तर कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों की अधीनता में आस-पास के प्रदेश पर राज्य करते रहे। राजपूत युग में भी ग्वालियर, कन्नौज और दिल्ली के राज्यों के बीच मथुरा का छोटा सा राज्य दबा रहा तथा १३वीं शती ई० में दिल्ली पर मुसलमानों का अधिकार होने के उपरान्त मथुरा पर भी उनका शासन स्थापित हो गया। उत्तर मुगलकाल में कुछ समय के लिए भरतपुर के जाट राजाओं ने भी इस नगर पर अधिकार रक्खा किन्तु शीघ्र ही वह अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत आ गया और आगरा कमिश्नरी का एक जिला बना दिया गया।

अपने इस दीर्घकालीन इतिहास में मथुरा नगर यद्यपि कभी भी पूरे देश या पूरे उत्तरापथ का तो प्रश्न ही क्या, किसी बड़े राज्य की भी राजधानी नहीं रहा, तथापि वह प्रायः सदैव एक सर्वप्रसिद्ध, सामान्यतः समृद्ध एवं दर्शनीय नगर बना रहा। इसके कई कारण रहे—एक तो यह नगर भारत के एक प्राचीन एवं प्रधान राजपथ तथा उत्तरापथ की एक प्रमुख नदी के किनारे स्थित है, जलवायु स्वास्थ्यकर है और आस-पास का प्रदेश उपजाऊ एवं धन-धान्य बहुल है। बड़ी-बड़ी राजधानियों से दूर रहने के कारण राजनीतिक क्रान्तियों, उथल-पुथल एवं युद्धादि के प्रत्यक्ष प्रभावों से भी बचा रहा। अति प्राचीन काल से ही यूनानी, शक, पह्लव, कुषाण, हूण आदि विदेशी जातियों के यहां आते रहने, शासन करते रहने तथा बसते रहने से यह भारतीयों एवं विदेशियों का एक अच्छा मिलन स्थल रहा, अतः यहां देशी और विदेशी विभिन्न संस्कृतियों का आदान-प्रदान एवं सम्मिश्रण भी हुआ। इसका फल यह हुआ कि मथुरा का व्यापार एवं व्यवसाय प्राचीन काल में सदैव बढ़ा-चढ़ा रहा, और साथ ही वह एक नवीन कला शैली के, विशेषकर मूर्तिकला के क्षेत्र में, विकास का भी प्रधान केन्द्र बन गया। आस-पास में लाल बलुए पत्थर की बहुलता भी यहां इस कला के प्रोत्साहन में बड़ी सहायक हुई। विभिन्न विचारधाराओं के सम्पर्क एवं सम्मिश्रण से इस नगर में विचार स्वातन्त्र्य एवं उदार सहिष्णुता का भी संचार रहा। कुछ प्राचीन जैन ग्रंथों में इस नगर को 'पाखण्डिगर्भ' कहा है और इस विशेषता का हेतु यह बताया है कि इस नगर में अनेक विभिन्न धर्म-धर्मान्तिरों के साधु, तपस्वी एवं विद्वान बहुलता के साथ पाये जाते थे।

वस्तुतः मथुरापुरी जैन, बौद्ध एवं हिन्दू तीनों ही प्रधान भारतीय धर्मों और उनकी संस्कृतियों का सुखद मिलन स्थल शताब्दियों ही नहीं सहस्राब्दियों पर्यन्त बनी रही। जैनधर्म के साथ तो इस नगर का अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर प्रायः वर्तमान पर्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध बना रहा है, और उसके प्रसिद्ध धर्मतीर्थों में उसकी गणना है। सातवीं-आठवीं शताब्दी ई० पूर्व से लेकर मुगल शासनकाल पर्यन्त, लगभग ढ़ाई हजार वर्ष तक मथुरा में जैनधर्म उन्नत अवस्था में रहा और यह नगर जैनों का एक प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र बना रहा। इसके बीच भी, शुंगकाल (दूसरी शती ई०पू०) से लेकर गुप्तकाल (६ठीं शती ई०) पर्यन्त तो जैनी मथुरा का चरमोत्कर्ष रहा है।

जैन पुराणों, चरित्र ग्रंथों, आगमिक साहित्य, कथा-कोषों एवं आख्यायिकाओं आदि में मथुरा के अनगिनत उल्लेख मिलते हैं और उसकी गणना प्राचीन, प्रसिद्ध एवं प्रमुख तीर्थों में की जाती है। कतिपय जैन अनुश्रुतियों के अनुसार सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ का इस नगर में पदार्पण हुआ था और उस समय उनकी पूजा के लिए यक्षादि देवों ने रातोंरात स्वर्ण के एक विशाल रत्नजटित स्तूप की यहां स्थापना की थी। सुपार्श्व के उपरान्त अन्य कई तीर्थंकरों का भी शुभागमन इस नगर में हुआ और तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ (८७७-७७७ ई० पू०) का भी समवसरण यहां आया था तथा उस स्थान पर कल्पद्रुम की स्थापना की गयी थी। पार्श्वनाथ के समय में उपर्युक्त देवनिर्मित स्तूप को ईटों से आच्छादित कर दिया गया था। इसका कारण यह बताया जाता है कि

तत्कालीन राजा के हृदय में स्तूप में लगे स्वर्ण एवं रत्नों को हस्तगत करने की दुर्भावना उत्पन्न हो गयी थी। गत शताब्दी में मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई में इस प्राचीन जैन स्तूप के भग्नावशेष प्रकाश में आये। वहीं से प्राप्त ई० सन् के प्रारम्भिककाल के कुछ शिलालेखों में इस स्तूप के लिए 'देवनिर्मित' विशेषण प्रयुक्त है। पुरातत्वज्ञों का अनुमान है कि यह स्तूप लगभग सातवीं शताब्दी ई० पू० में बना होगा, और न केवल मथुरा का यह देवनिर्मित जैन स्तूप सम्पूर्ण भारतवर्ष में उपलब्ध जैनों एवं बौद्धों के समस्त स्तूपों में सर्वप्राचीन है, वरन् इतिहास-कालीन भारत का सर्वप्राचीन उपलब्ध स्थापत्य भी है।

अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर (५९९-५२७ ई० पू०) का भी इस नगर में पदार्पण हुआ था। मथुरा का तत्कालीन राजा उदयादित्य अथवा भीदाम उनका परम भक्त था, और उसके अनेक प्रजाजन उनके अनुयायी थे। भगवान महावीर के उपरान्त अन्तिम केवली जम्बूस्वामी ने, जिनका कि निर्वाण ४६५ ई० पू० में हुआ था, मथुरा के चौरासी क्षेत्र पर चिरकाल तपस्या की थी। एक अनुश्रुति के अनुसार तो जम्बूस्वामी का निर्वाण भी इसी स्थान से हुआ था और इसी कारण मथुरा की गणना जैन परम्परा के सिद्धक्षेत्रों में भी की जाती है। इसी स्थान पर जम्बूस्वामी ने अञ्जन चोर नामक दस्युराज को उसके पांच सौ साथियों सहित अपने तप तेज से प्रभावित करके अपना अनुयायी बनाया था। इन दस्युओं ने अपने दस्युकर्म का परित्याग करके मुनि दीक्षा ली और उसी वन में घोर तपस्या करके सद्गति प्राप्त की। इन मुनियों की स्मृति में उक्त स्थान पर ५०० स्तूप निर्माण किये गये थे। भिन्न-भिन्न अनुश्रुतियों के अनुसार मथुरा में प्राचीन देवनिर्मित स्तूप के अतिरिक्त ५००,५०१ या ५१४ जैन स्तूप और विद्यमान थे। इन स्तूपों के १६वीं शताब्दी ई० तक विद्यमान रहने और उस समय मुगल सम्राट अकबर के एक कृपापात्र मुसाहिब, भटानिया कोल निवासी एवं अग्रवाल वंशी जैन सेठ साहू टोडर द्वारा उनके जीर्णोद्धार एवं प्रतिष्ठा कराने के उल्लेख तत्कालीन पांडे राजमल्ल के संस्कृत जम्बूचरित्र एवं पांडे जिनदास के हिन्दी जम्बूस्वामी चरित्र में प्राप्त होते हैं। उसके पूर्व भी दो एक बार इन स्तूपों के जीर्णोद्धार किये जाने के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं।

कहा जाता हैं कि जैनों के प्राचीन देवनिर्मित स्तूप पर बौद्धों ने भी कुछ समय के लिए अधिकार कर लिया था और ब्राह्मणों एवं विष्णु, सूर्य आदि के उपासकों ने भी स्तूप पर अपना दावा जताया था। काफी समय तक यह वाद-विवाद चला। इस विवाद की सूचना पाकर दक्षिण आदि सुदूर देशों से भी प्रभावशाली जैनी मथुरा आये। मथुरा का तत्कालीन राजा न्यायपरायण था और उसने जैनों के पक्ष में ही निर्णय दिया। स्तूप पर जैनों का पुनः अधिकार हो गया। इस घटना के उल्लेख हरिषेण के वृहत्कथाकोष (९५९ ई०) तथा जिन प्रभसूरि के विविध तीर्थकल्प (१४वीं शती) के अन्तर्गत मथुरापुरीकल्प में मिलते हैं। इस घटना का एक सुफल यह हुआ कि उसके उपरान्त मथुरा के जैनसंघ की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। उपरोक्त घटना सम्भवतया अशोक के समय (३री शती ई०पू०) की है।

जैन साहित्य में प्राचीन मथुरा के प्रसिद्ध बारह बनों, वहां के देवनिर्मित स्तूप, कल्पद्रुम, अम्बिका का मन्दिर आदि विभिन्न जैन धर्मायतनों, भंडीर यक्ष की यात्रा, कौमुदी महोत्सव, पट्ट महोत्सव आदि उत्सवों, वस्त्र व्यवसाय, मूर्तिनिर्माण कला, आदि के अनेक उल्लेख पाये जाते हैं।

इस जैनी मथुरा और उसके संघ का चरमोत्कर्ष काल उत्तरमौर्य काल से लेकर गुप्तकाल के अन्त पर्यन्त, लगभग सात आठ-सौ वर्ष तक रहा। इसमें भी शुंग-शक-कुषाण काल (लगभग १५० ई० पू०-२०० ई०) में वह अपनी उन्नति के चरम शिखर पर था। मथुरा के यवन, शक, कुषाण आदि वंशों के तत्कालीन नरेश जैनधर्म

के प्रति अत्यन्त उदार एवं सहिष्णु रहे और मथुरा एवं उसके आसपास बसने वाली विभिन्न जातियों, वर्गों एवं व्यवसायों के अनगिनत स्त्री पुरुष उसके उत्साही अनुयायी बने। मथुरा और उसके आसपास से प्राप्त अनगिनत तत्कालीन जैन कलाकृतियां एवं सैकड़ों शिलालेख इस बात को भली भांति प्रमाणित कर देते हैं कि उस काल के मथुरा के जैन गुरु न केवल संघभेद के विरोधी तथा समन्वय एवं मेल के सक्रिय समर्थक थे वरन् वे अत्यन्त उदारचेता एवं प्रगतिशील भी थे।

मथुरा जैनसंघ की इस उदाराशयता एवं प्रगतिशीलता का ज्वलन्त उदाहरण वह महान सरस्वती आंदोलन है जिसने तत्कालीन जैन संसार में भारी क्रान्ति मचा दी थी। उन्होंने अवशिष्ट आगमज्ञान के संकलन एवं लिपिबद्ध करने और जैन साधुओं में लिखने की प्रवृत्ति का प्रचार करने के लिए एक व्यवस्थित आन्दोलन चला दिया था। उन्होंने पुस्तकधारिणी सरस्वती देवी की प्रतिमाएँ निर्माण कराकर प्रतिष्ठित कीं और ज्ञान की उस देवी को अपने आन्दोलन की अधिष्ठात्री बनाया। पुस्तक साहित्य विरोधी जैन साधुओं के लिए स्वयं वाग्देवी सरस्वती का प्रस्तरांकन एक चुनौती था। मथुरा के जैन साधु ही इस आन्दोलन के पुरस्कर्ता, प्रवर्तक एवं आद्य नेता थे। मूर्तियों, स्मारकों एवं अन्य धार्मिक कलाकृतियों पर शिलालेख अंकित कराना प्रारम्भ करके उन्होंने इस आन्दोलन को सक्रिय रूप दिया।

मथुरा के जैन गुरुओं ने जैनधर्म को न केवल वर्ण, जाति, लिंग आदि के भेदभावों से उन्मुक्त रखा और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, विभिन्न व्यवसायों को करने वाले उच्च जातीय, नीच जातीय, विविध वर्गीय, देशी-विदेशी, स्त्री-पुरुष, सभी को समान अधिकारों के साथ स्वधर्म में दीक्षित किया, वरन् अपनी धर्माश्रित कला को भी विविध प्रकारों एवं रूपों में अत्यन्त उदारता एवं मनस्विता के साथ विकसित किया। भारतवर्ष में लेखन प्रवृत्ति को लोकप्रिय एवं जनता की चीज बनाने वाले सर्वप्रथम लोग सम्भवतया इस काल के मथुरा के जैन साधु ही थे। और इस काल की मथुरा में ही सर्वप्रथम एक सुगठित जैन साधु संघ के साथ-साथ एक सुव्यवस्थित एवं विशाल जैन साध्वी संघ के भी दर्शन होते हैं।

३री शताब्दी ई० में मथुरा में कुषाण शक्ति का पराभव प्रारम्भ हो गया और समस्त उत्तरापथ में शनैः शनैः नाग राज्यों का जाल फैल गया। ये नागराज्य गणसंघ प्रणाली पर व्यवस्थित हुए। नागों के उत्तराधिकारी वकाटक हुए और तदन्तर चौथी शती ई० के अन्तिम पाद तक समस्त उत्तरापथ गुप्त साम्राज्य की छत्रच्छाया में आ गया। इन नाग, वकाटक एवं गुप्त वंशों के प्रायः सभी नरेश सर्वधर्म सहिष्णु थे। मथुरा का जैनसंघ उनके शासनकालों में सुखपूर्वक फलता फूलता रहा, किन्तु उसका मध्यान्ह व्यतीत हो चुका था, पहिले जैसा तेज और प्रभाव, संख्या और शक्ति अब न रह गयी थी—उनमें धीरे-धीरे ह्रास होता चला गया। सन् ईस्वी की ८वीं-९वीं शताब्दी में गुर्जर प्रतिहार नरेश आमराज के गुरु बप्प भट्टिसूरि ने मथुरा के अनेक प्राचीन धर्मायतनों का जीर्णोद्धार कराया बताया जाता है। उसी काल में एक दक्षिणाचार्य ने वहां माथुर संघ की स्थापना की थी। आमराज का पौत्र प्रसिद्ध भोजराज भी जैनधर्म का भारी प्रश्रयदाता था। इस प्रकार उत्तर-गुप्तकाल में अथवा कन्नौज साम्राज्य काल में मथुरा में जैन धर्म अच्छी दशा में तो रहा किन्तु इसी काल में (९वीं-१०वीं शती ई०) में वहां सर्वप्रथम दिगम्बर-श्वेताम्बर भेद भी उत्पन्न हो गया। दोनों ही सम्प्रदायों ने अलग-अलग कतिपय प्राचीन धर्मायतनों पर भी अपना-अपना अधिकार कर लिया और अपने नवीन मन्दिर भी पृथक-पृथक बनाने प्रारम्भ कर दिये तथा ११वीं-१२वीं शताब्दी में मूर्तियां भी पृथक-पृथक बनानी प्रारम्भ कर दीं।

तथापि १३वीं शती ई० तक मथुरा का जैन क्षेत्र, जिसका प्रधान केन्द्र कंकाली टीले (देवनिर्मित स्तूप की स्थिति) से लेकर चौरासी पर्यन्त था, समुन्नत एवं सुरक्षित दशा में रहा। इस काल के अनेक प्रतिमालेख इस

तथ्य के साक्षी हैं। उनसे यह भी स्पष्ट है कि महमूद गजनवी की मथुरा की भयंकर लूट (१०१८ ई०) एवं मन्दिर-मूर्ति-विध्वंस से मथुरा का यह जैनकेन्द्र और उसके धर्मायतन सुरक्षित बचे रहे। इस तथ्य पर इतिहासज्ञों को निरन्तर आश्चर्य होता है। तेरहवीं शताब्दी से ही उत्तर भारत में मुसलमानी शासन स्थापित हो गया और सम्पूर्ण मध्यकाल में मथुरा की स्थिति प्रायः करके एक धर्मतीर्थ की ही रही। दक्षिण, पूर्व पश्चिम तथा अन्य प्रदेशों से मथुरा की यात्रा के लिए आने वाले जैन विद्वानों, साधुओं एवं गृहस्थों के उल्लेख १३वीं से लेकर १९वीं शताब्दी पर्यन्त अनेकों मिलते हैं। १८वीं शताब्दी में भरतपुर के जाट नरेश हीरासिंह के प्रश्रय में पल्लीवाल वंशी चौधरी जोधराज ने भट्टारक महानन्दसागर द्वारा मथुरा में मन्दिर एवं मूर्ति प्रतिष्ठा कराई थी। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में चौरासी क्षेत्र का वर्तमान मन्दिर प्राचीन मन्दिर के भग्नावशेषों के ऊपर निर्मित किया गया था। इसी शताब्दी में मथुरा के प्रसिद्ध जैन सेठ रघुनाथ दास और उनके सुपुत्र राजा लक्ष्मणदास मथुरा के ही नहीं, अखिल भारतवर्षीय जैन समाज के स्तम्भ थे। राजा लक्ष्मणदास भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के संस्थापकों में से भी एक थे। गत शताब्दी में ही मथुरा के कंकाली टीले की युगान्तरकारी खुदाई राजकीय पुरातत्व विभाग की ओर से की गयी, जिसके फलस्वरूप प्राचीन जैन नगरी मथुरा का वैभव प्रकाश में आया और इस नगर के साथ ही साथ जैनधर्म एवं भारतवर्ष के भी प्राचीन इतिहास के निर्माण में परम सहायक हुआ। वर्तमान शताब्दी में चौरासी क्षेत्र पर ऋषभ-ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित हुआ और तदनन्तर उसी के निकट अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैनसंघ का भवन बना एवं कार्यालय स्थापित हुआ। संघ का मुखपत्र जैनसन्देश और उसका शोधांक भी इसी स्थान से निकलते हैं। चौरासी क्षेत्र पर प्रतिवर्ष कार्तिक मास में मेला होता है।

[विशेष विस्तृत जानकारी के लिए देखें हमारे लेख—मथुरा (जै० सि० भास्कर, भा० २२, कि० २, पृ० २३-३२); मथुरा में जैनधर्म का उदय और विकास (ब्रजभारती, व २५, अं० २, पृ० २-२३); जैनसाहित्य में मथुरा (अनेकांत, जून १९६२, पृ० ६५-६७); मथुरा का जैन पुरातत्व एवं शिलालेख (शोधांक १९, पृ० २९६-३०१); मथुरा की जैनकला (शोधांक २०, पृ० ३३८-३४०); मथुरा के जैन शिलालेख (शोधांक २१, पृ० २-१०); मथुरा के प्राचीन जैन मुनियों की संघ व्यवस्था (शोधांक २३, पृ० ७२-८३), इत्यादि।]

(घ) भगवान महावीर के विहार स्थल

हरिवंशकार आचार्य जिनसेन ने जिन देश-प्रदेशों में भगवान महावीर का विहार हुआ बताया है, उनमें से काशि (बनारस कमिश्नरी), कौशल (अवध प्रान्त), वत्स (इलाहाबाद कमिश्नरी), शौरसेन और कुशार्त (आगरा कमिश्नरी-ब्रजमंडल एवं भदावर प्रान्त), पांचाल (रूहेलखंड एवं गंगापार के फर्रुखाबाद आदि जिले), कुरुजांगल (मेरठ कमिश्नरी), वर्तमान उत्तर प्रदेश के ही विभिन्नभूभाग थे। वर्तमान बुन्देलखंड के जिलों में भी उनका विहार हुआ लगता है। इस प्रकार प्रायः सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में वह विचरे थे।

प्रसिद्ध नगरियों एवं स्थानों में, वाराणसी, श्रावस्ति, कौशाम्बी, काकंदी, साकेत (अयोध्या), प्रयाग (पुरिमताल), मथुरा, हस्तिनापुर आदि में वह विचरे थे। अन्य स्थानों में सेयंविया (श्वेताम्बिका) की पहचान श्रावस्ती के निकटस्थ सीतामढ़ी से की जाती है, कयंगला भी श्रावस्ती के निकट स्थित था। हलिद्दग उत्तर-पूर्वी उत्तर प्रदेश में कोलियों की राजधानी रामगाम के निकट था। वेदशास्त्री पंडितों का निवास स्थान नंगला कोशल देश (अवध) में स्थित था, आलभिका की पहचान उन्नाव जिले के नवलगांव से अथवा इटावा जिले के एरवा नामक स्थान से की जाती है। विसाखा की पहचान कुछ विद्वान उत्तर प्रदेश की वर्तमान राजधानी लखनऊ से करते हैं। उत्तर वाचाला से उत्तर पांचाल और उसकी राजधानी अहिच्छत्रा का, दक्षिण वाचाला से दक्षिण पांचाल और उसकी

राजधानी काम्पिल्य का तथा कनखल आश्रमपद से हरिद्वार के निकटस्थ कंखल से अभिप्राय हो सकता है। पोदनपुर या पोत्तनपुर की पहचान इलाहाबाद जिले में गंगापार स्थित वर्तमान झूसी से की जाती है, जिसका प्राचीन नाम सुप्रतिष्ठान या प्रतिष्ठानपुर भी था—ऋषभपुत्र बाहुबलि का पोदनपुर भी संभवतया यही था, और भ० महावीर का यहाँ समवसरण आया था। अन्य अनेक जैन पुराण कथाओं के साथ इस नगर का सम्बन्ध है।

(च) अतिशयक्षेत्र एवं कलाधाम

इस वर्ग में ऐसे स्थान सम्मिलित हैं जहाँ से प्राचीन एवं मध्यकालीन विपुल जैन पुरातत्त्व एवं कलाकृतियाँ प्राप्त हुई, अथवा जो किसी प्रतिमा, मन्दिर या चमत्कारी अतिशय के कारण तीर्थरूप में प्रसिद्ध हो गये। मथुरा प्रभृति जिन कलाधामों का परिचय पीछे दिया जा चुका है, उन्हें इस वर्ग में सम्मिलित नहीं किया गया है।

देवगढ़

देवगढ़ चिरकाल पर्यन्त जैनों का एक प्रसिद्ध सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। वर्तमान में इस नाम का एक छोटा सा गाँव ललितपुर जिले में बेतवा नदी के कूल पर, पहाड़ियों के अन्तिम छोर पर घने जंगल के बीच बसा हुआ है, जो देहली से बम्बई जाने वाली रेलवे के ललितपुर स्टेशन से १९ मील तथा जाखलौन स्टेशन से लगभग ८ मील दक्षिण-पश्चिमोत्तर स्थित है। जंगल में यत्र-तत्र बिखरी हुई अनगिनत प्राचीन खण्डित मूर्तियाँ एवं भवनों के प्रस्तर खण्ड कल्पनाशील यात्रियों को इस प्रदेश के अतीत गौरव की मूक गाथा सुनाते हैं।

देवगढ़ का प्राचीन चतुष्कोंण दुर्ग गाँव के निकट ही एक गोलाकार पहाड़ पर बना हुआ है। पर्वत के ऊपर पहुंचने पर एक भग्न तोरण द्वार मिलता है जो पर्वत की परिधि को आवृत्त करने वाले दुर्गकोट का प्रमुख द्वार प्रतीत होता है। इसे कुंजद्वार भी कहते हैं। इसकी कारीगरी दर्शनीय है। इस द्वार को पार करने पर एक के बाद एक दो जीर्ण कोट और मिलते हैं। इन्हीं दोनों कोटों के भीतर अधिकांश जैनमन्दिर अवस्थित हैं। इन कलापूर्ण प्राचीन देवालयों के कारण ही देवगढ़ की इतनी प्रसिद्धि है।

देवगढ़ जिस स्थान में स्थित है वह भूभाग प्राकृतिक शोभा की दृष्टि से अत्यन्त मनोरम एवं अप्रतिम है। दुर्ग को तीन ओर से आवृत्त करती हुई बेतवा ने विन्ध्यपर्वतश्रेणी को काटकर यहाँ कुछ एक अत्यन्त चित्ताकर्षक दृश्य निर्माण किये हैं। दक्षिण दिशा में देवगढ़ दुर्ग की सीढ़ियां नदी के जल को स्पर्श करती हैं। इसी ओर देव मूर्तियों एवं अन्य कलाकृतियों से युक्त कतिपय गुहा मन्दिरों को अपने अंकों में लिए हुए नाहरघाटी एवं राजघाटी स्थित हैं। वैलहाउस, फर्ग्यूसन, बरजेस आदि कलामर्मज्ञों ने यह अनुभव किया है कि अपने तीर्थ स्थान एवं सांस्कृतिक केन्द्र स्थापित करने के लिए प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण स्थलों के चुनने में जैनीजन सदैव बेजोड़ रहे हैं। देवगढ़ इस तथ्य को भली प्रकार चरितार्थ करता है। प्रकृति की सुषमापूर्ण गोद में सुषुप्त देवगढ़ का वैभव आज भी अपनी प्राकृतिक एवं कलात्मक द्विविध सौन्दर्य राशि से दर्शकों की सौन्दर्यानुभूति के लिए अनुपम प्रेरक बना हुआ है।

इस स्थान के भग्नावशेषों को देखकर इसमें तनिक भी सन्देह नहीं रहता कि किसी समय चिरकाल पर्यन्त वह एक सुन्दर सुदृढ़ दुर्ग से युक्त भरापूरा विशाल रमणीक नगर एवं धर्म और संस्कृति का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा होगा। देवगढ़ के अवशेष आज भी प्राचीन भारतीय कला और उसके विकास के अध्ययन के लिए प्रचुर सामग्री प्रदान करते हैं।
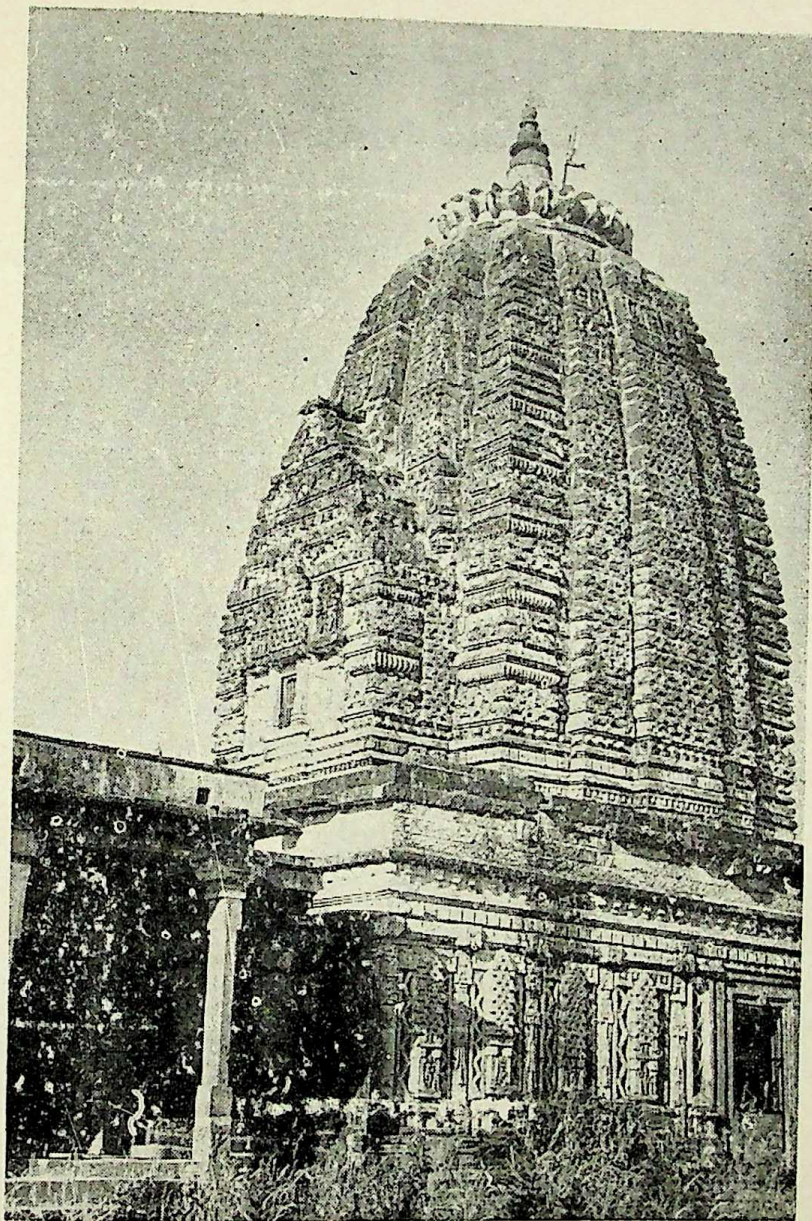
२०—कलापूर्ण शिखरयुत बड़ा शान्तिनाथ जिनालय, देवगढ़
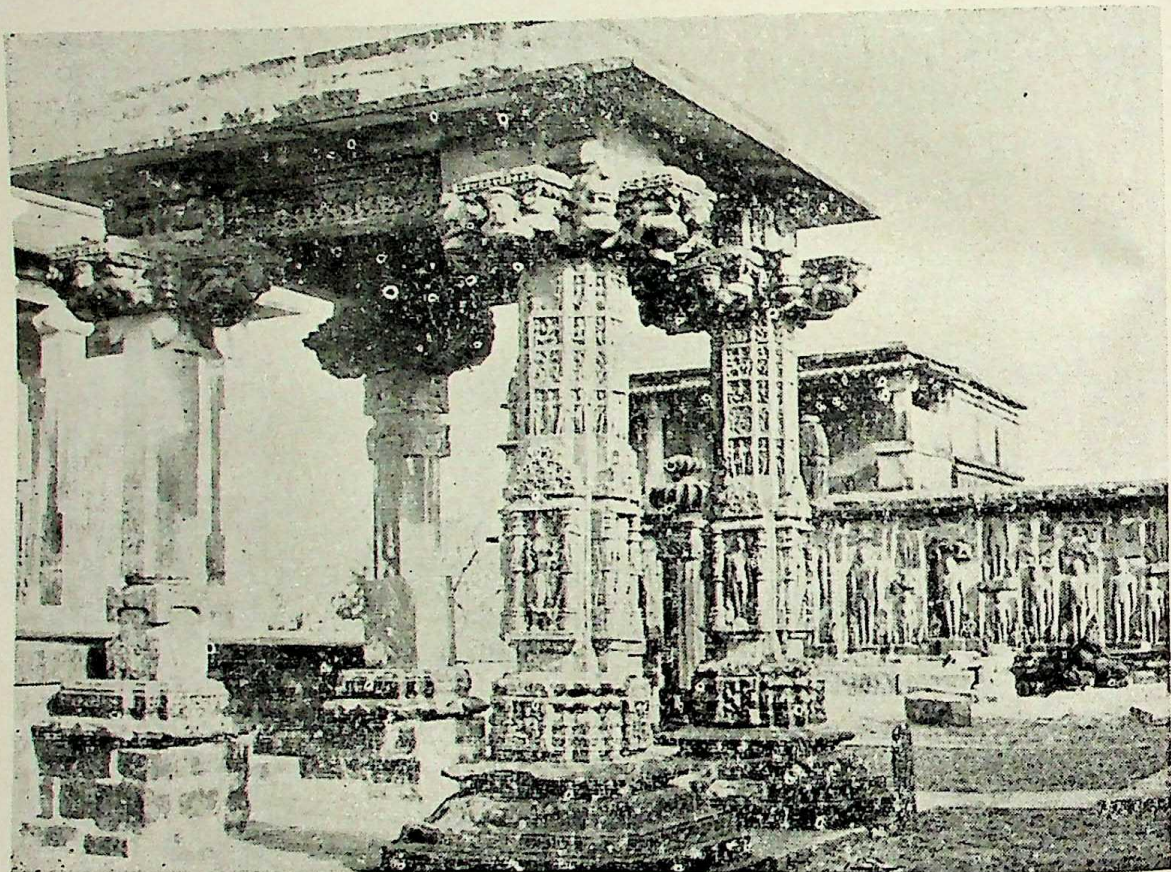
२१—मन्दिर नं० १२ का भव्य अर्द्धमण्डप, देवगढ़
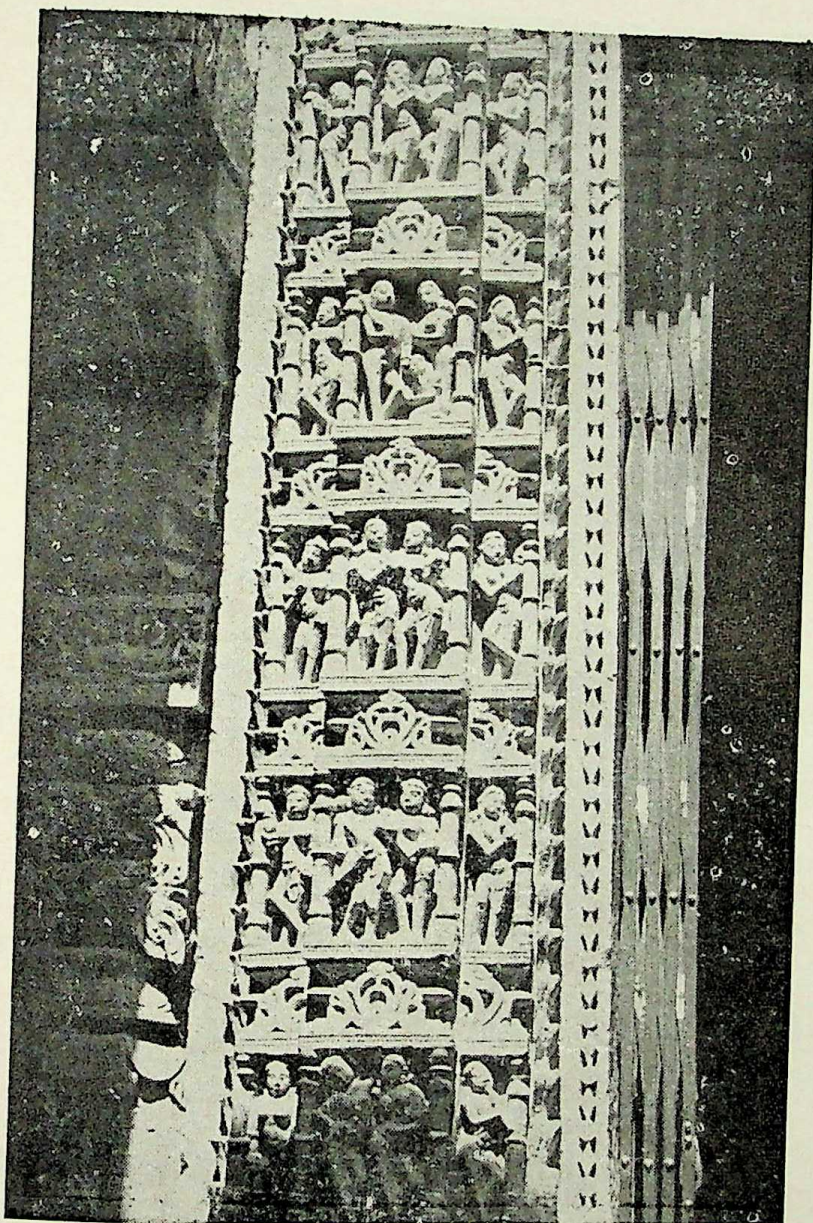
२२—रोचक दृश्यांकनों से युक्त मन्दिर नं० १२ के प्रदक्षिणापथ के द्वार का दायां पक्ष, देवगढ़
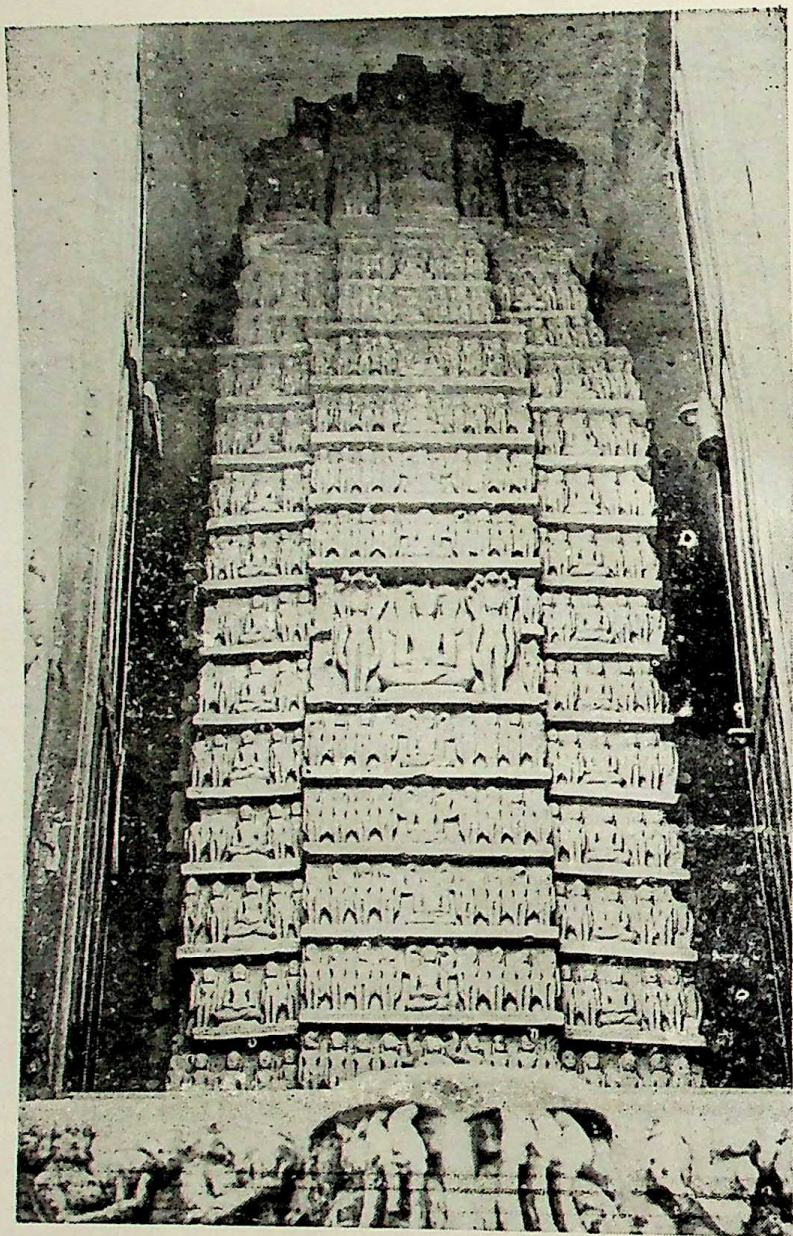
२३—सहस्रकूट चैत्य, देवगढ़
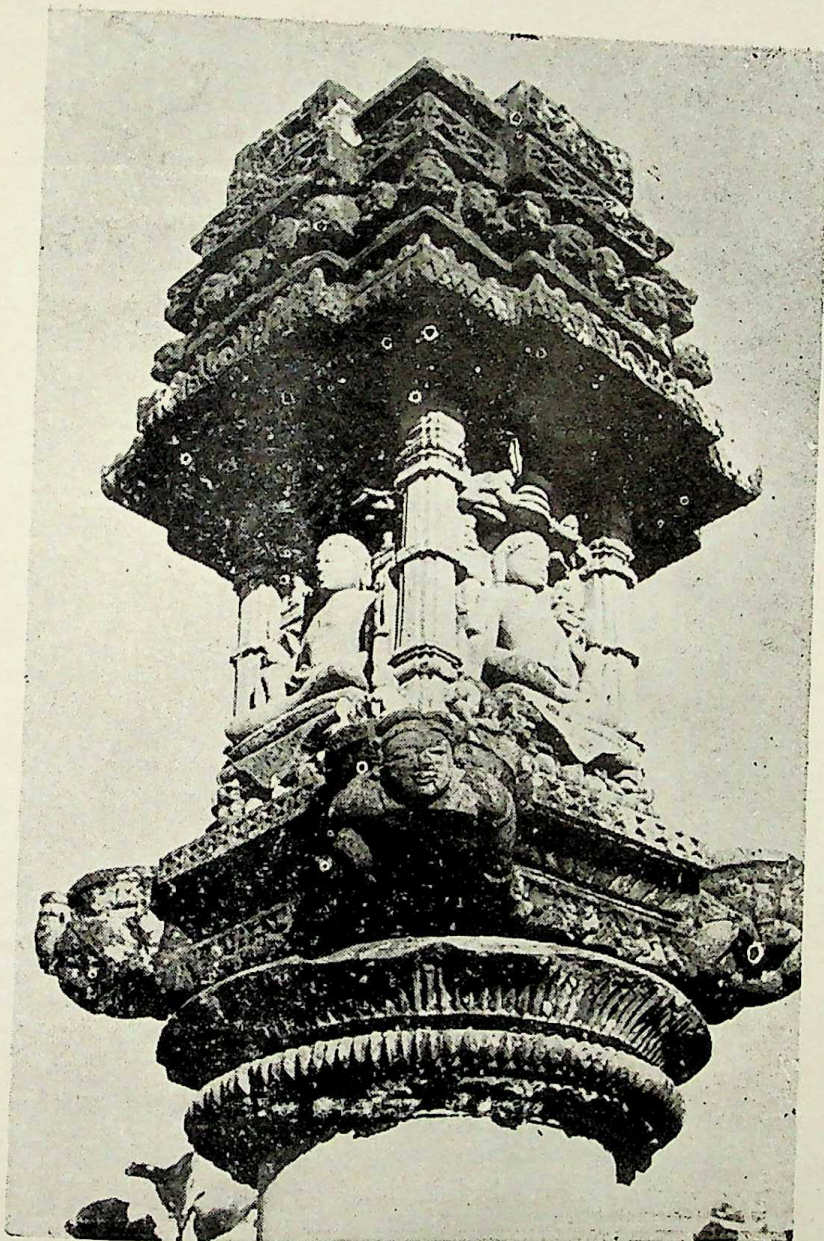
२४—कलापूर्ण मानस्तम्भ-शीर्ष, देवगढ़
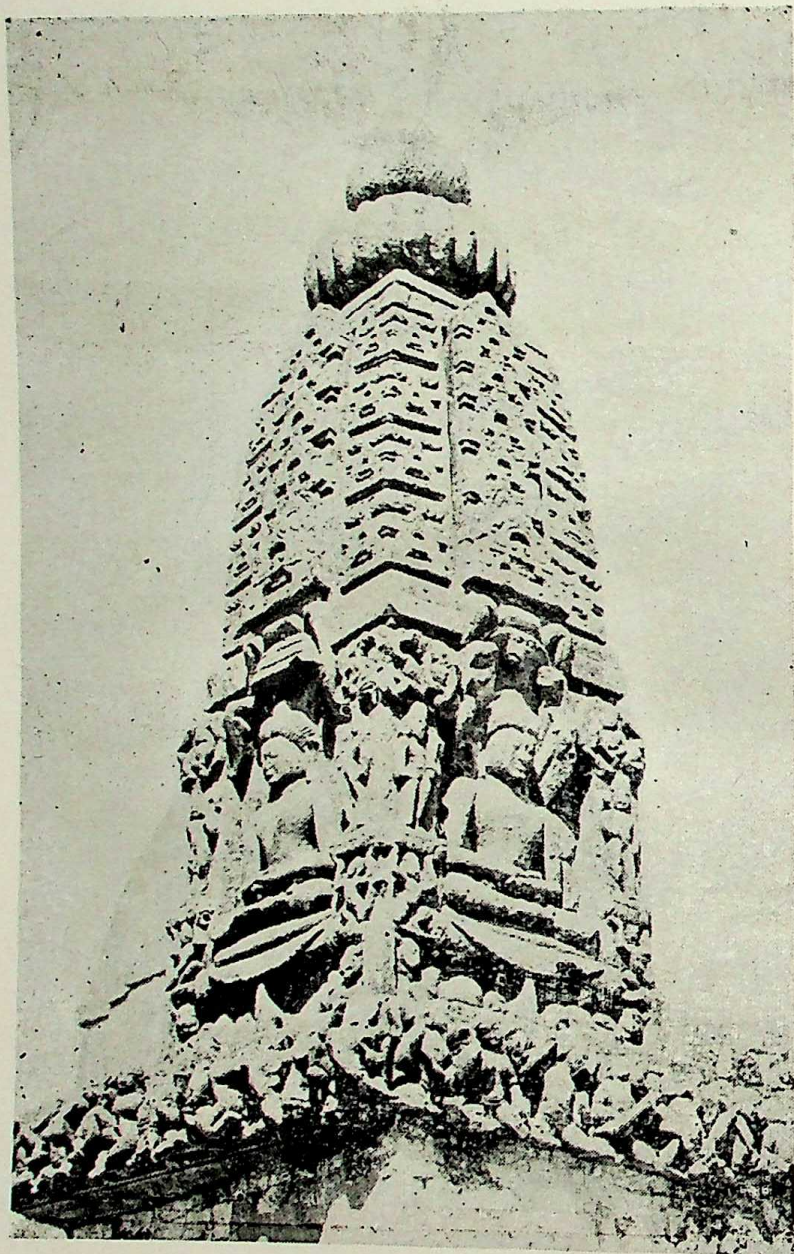
२५—मानस्तम्भ नं० ११ का अलंकृत शीर्ष, देवगढ़

२६—कल्पवृक्ष के नीचे युगलिया, देवगढ़

२७—धरणेन्द्र–पद्मावती, देवगढ़

२८—बीस-भुजा चक्रेश्वरी देवी, देवगढ़
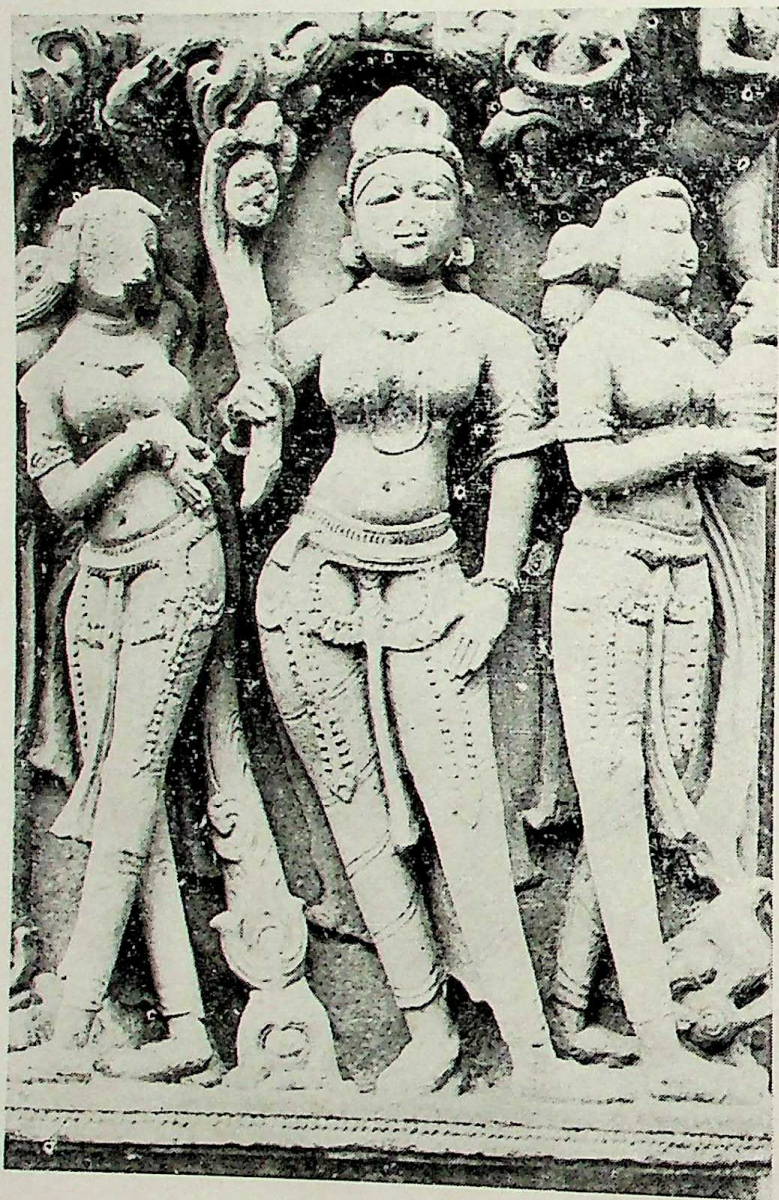
२९—शुचिस्मिता, देवगढ़
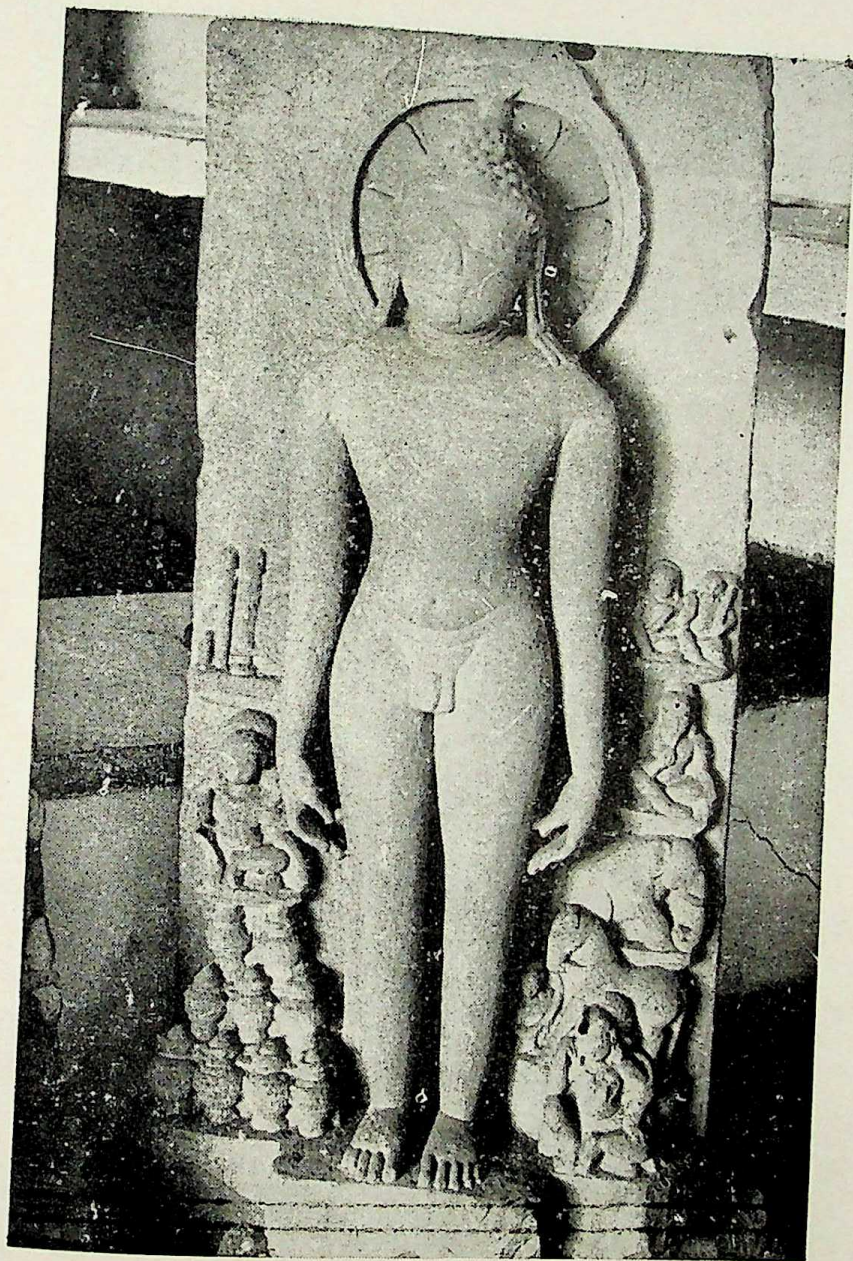
३०—कायोत्सर्ग तीर्थङ्कर, देवगढ़
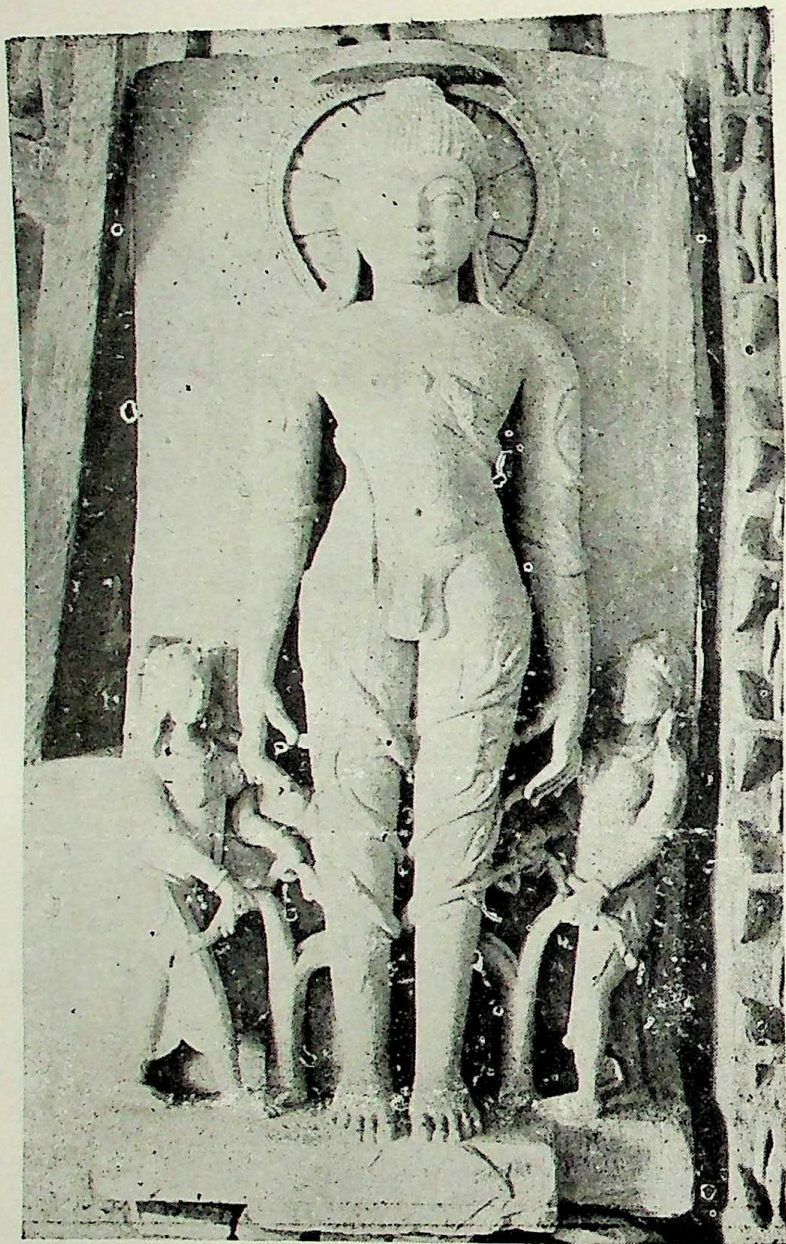
३१—भगवान बाहुबलि, देवगढ़
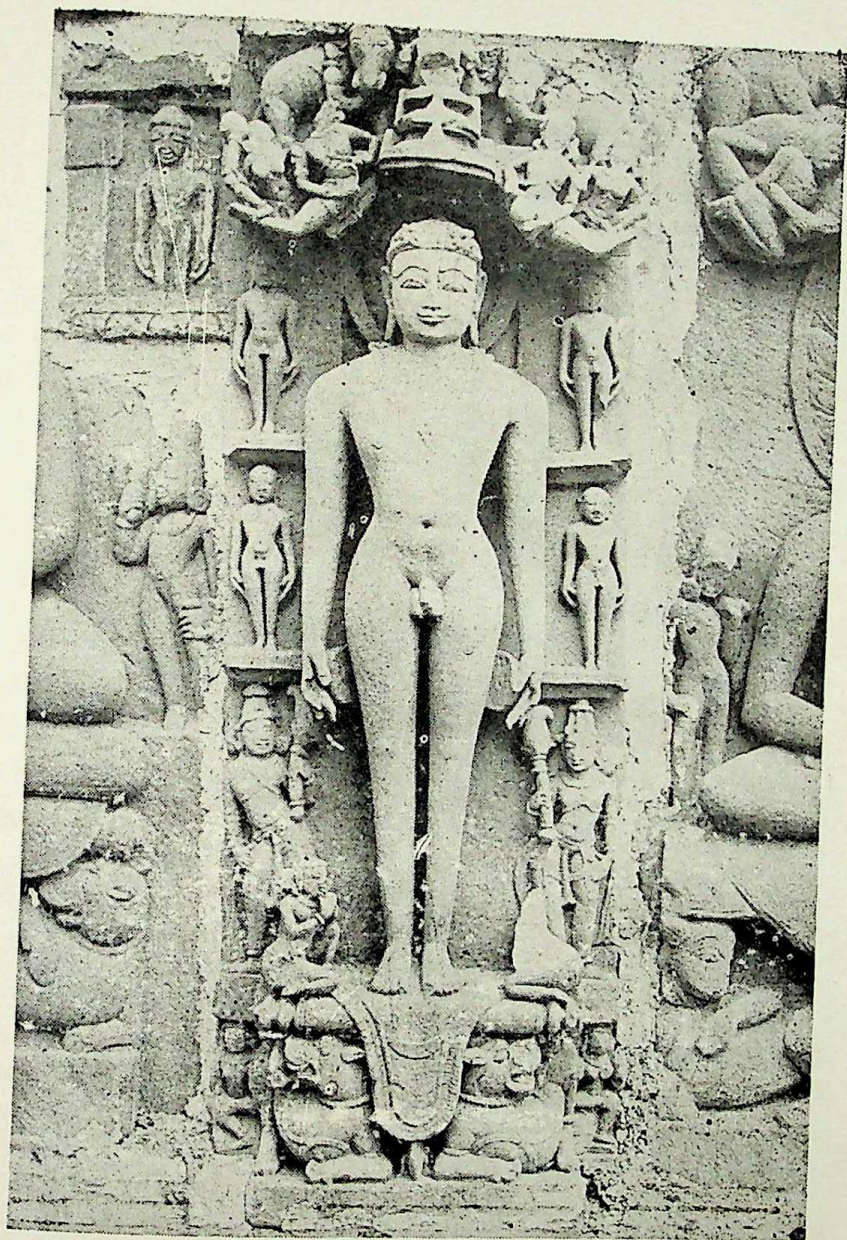
३२—भ० चन्द्रनाथ पंच-तीर्थी, देवगढ़
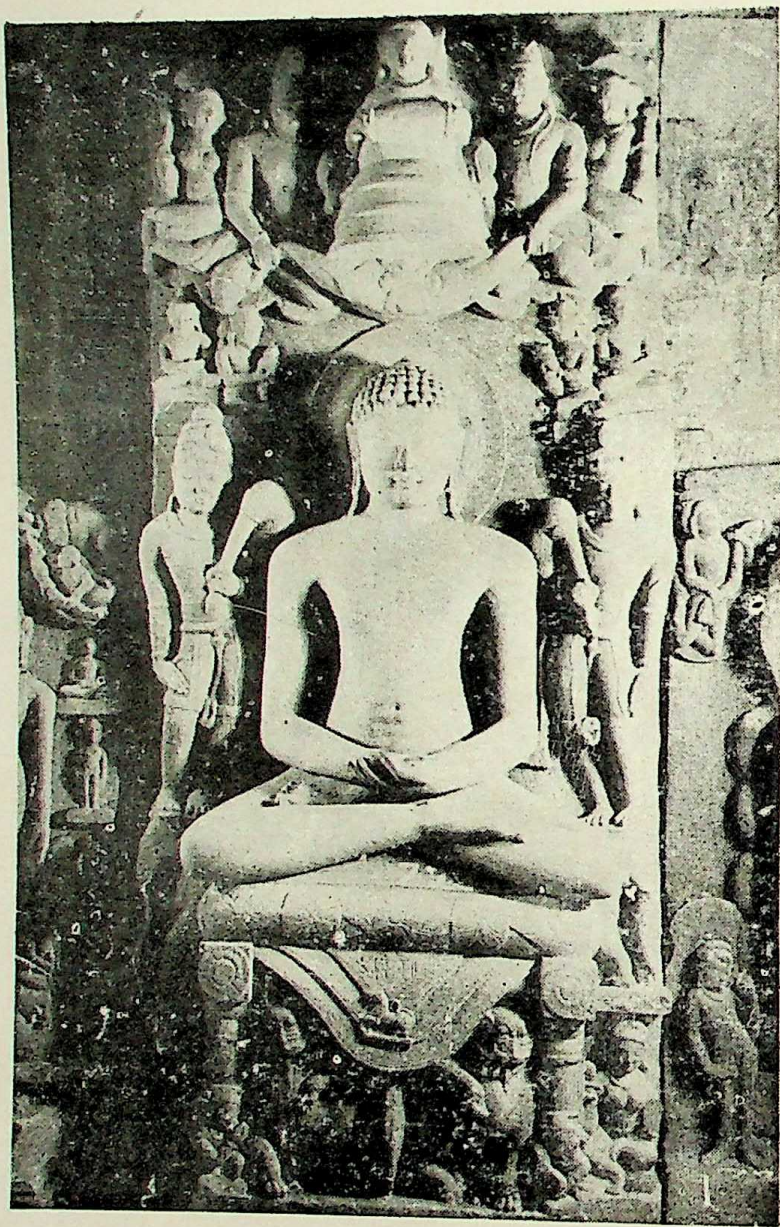
३३—भ० ऋषभदेव–त्रितीर्थी, देवगढ़

गुप्त नरेशों के काल से देवगढ़ का वास्तविक अभ्युदय प्रारम्भ हुआ। उस समय यह एक प्रसिद्ध राजमार्ग पर स्थित था और गुप्त साम्राज्य का एक प्रमुख जनपद था-संभवतया तत्प्रदेशीय भुक्ति का केन्द्रीय स्थान था। गुप्त-काल के कई जैन एवं वैष्णव देवालय, मूर्तियाँ तथा भवनों के अवशेष यहाँ प्राप्त हैं। ८वीं से १०वीं शताब्दी पर्यन्त कन्नौज के गुर्जरप्रतिहारों का देवगढ़ पर प्रभुत्व रहा और यह नगर एक महत्वपूर्ण प्रान्तीय केन्द्र एवं एक महासामन्त की राजधानी था। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तों और गुर्जर प्रतिहारों के मध्य की शताब्दियों में इस स्थान पर किसी राज्यवंश या उपराज्यवंश का शासन रहा, उन्होंने ही इस सुरम्य पर्वत पर यह सुन्दर सुदृढ़ त्रिकूट दुर्ग निर्माण कराया और उसे अनेक जैन देवालयों एवं कलाकृतियों से अलंकृत किया। पर्वत के ऊपर और दुर्गकोट के भीतर अन्य किसी धर्म के या उसके देवालयों आदि के अवशेष नहीं मिलते। इसके विपरीत, ९वीं शती ई० के एक शिलालेख से सिद्ध होता है कि उसके पूर्व भी यह दुर्ग और उसके भीतर कई प्रमुख जिन मन्दिर विद्यमान थे। एक विद्वान का अनुमान है कि ८वीं–९वीं शती ई० में यहाँ किसी 'देवगंश' का शासन रहा है। गुर्जर प्रतिहारों के उपरान्त जेजाकभुक्ति के चन्देल नरेशों का इस स्थान पर अधिकार रहा। उनके राज्य की यह एक उपराजधानी ही थी। उनके शासन में देवगढ़ के धार्मिक एवं कला वैभव की अभिवृद्धि ही हुई। यहाँ के अधिकांश महत्वपूर्ण अवशेष चंदेलकाल के ही हैं। मुस्लिम काल में यह स्थान प्रमुख राजपथ से दूर पड़ गया और धीरे-धीरे घने वन से वेष्टित होने लगा, फलस्वरूप उनकी कुदृष्टि देवगढ़ के देवालयों पर न पड़ पाई और विध्वंस किये जाने से उनकी रक्षा हो गयी। फिर भी १९वीं शताब्दी के प्रारंम्भ तक देवगढ़ का दुर्ग एक सुदृढ़ एवं सुरक्षित दुर्ग था। सन् १८११ ई० में जब सिंधिया की ओर से उसके सेनापति कर्नल फिलोज ने बुन्देलों से देवगढ़ को छीनना चाहा तो वह लगातार तीन दिन तक युद्ध करने के उपरान्त ही उस पर अधिकार कर पाया था।

देवगढ़ का प्राचीन नाम लुअच्छगिरि था। चन्देल नरेश कीर्तिवर्मन (११वीं शती का अन्त) के मन्त्री वत्सराज ने इस स्थान पर एक नवीन दुर्ग निर्माण कराके, अथवा प्राचीन दुर्ग का ही जीर्णोद्वार कराकर इसका नाम कीर्तिगिरि रक्खा था। सन् ८६२ ई० का शिलालेख जिस जैन स्तम्भ पर अंकित है उसके प्रतिष्ठापक आचार्य कमलदेव के शिष्य आचार्य श्रीदेव थे। संभव है वे देवसंघ के आचार्य हों और इस स्थान पर अपनी भट्टारकीय गद्दी स्थापित की हो तथा यहाँ के प्रसिद्ध धर्माचार्य रहे हों, उनके अपने या उनके संघ के नाम से यह दुर्ग देवगढ़ कहलाने लगा हो। इस प्रदेश में प्रचलित एक जनश्रुति भी है कि प्राचीन काल में किसीसमय देवपत और क्षेमपत नाम के दो जैन भ्राता इस नगर में रहते थे। देवकृपा से उन्हें पारस पथरी प्राप्त हो गई, जिसके प्रभाव से वे विपुल धन ऐश्वर्य के स्वामी बन गये। उस धन का सदुपयोग उन्होंने इस स्थान पर अनेक भव्य जिनायतनों का निर्माण कराने तथा दुर्ग एवं नगर का सौन्दर्य तथा वैभव बढ़ाने में किया। तत्कालीन राजा ने उन पर आक्रमण करके वह पथरी उनसे बरबस छीनना चाही, किन्तु देवपत ने उस पथरी को इसके पूर्व ही बेतवा के गम्भीर जल में विसर्जित कर दिया था। कहा जाता है कि उक्त देवपत के कारण ही यह स्थान देवगढ़ कहलाया। यह भी संभव है कि अन-गिनत देवमूर्तियों एवं देवायतनों के कारण ही उसका देवगढ़ नाम प्रसिद्ध हुआ। कम से कम जैनों की दृष्टि में तो अपने बहुसंख्यक प्राचीन देवमंदिरों एवं देव प्रतिमाओं के कारण वह एक सच्चा देवगढ़ बना चला आया है और किसी तीर्थंकर की कल्याणक भूमि न होते हुए भी एक पवित्र धर्मतीर्थ के रूप में दर्शनीय एवं वन्दनीय रहता आया है। इसके साथ कई अतिशय या चमत्कार भी जुड़ गये हैं।

देवगढ़ के पुरातत्वावशेषों में से अधिकांश जैन मन्दिरों, मूर्तियों और भवनों के ही भग्न-अभग्न अवशेष हैं, और उनमें से भी अधिकांश उसके केन्द्रीय स्थान दुर्गकोट के भीतर ही हैं। इन में कुछ बहुत छोटे-छोटे धर्मायतनों को छोड़कर शेष लगभग ३०-३१ भव्य जिनमन्दिरों के स्पष्ट चिन्ह मिलते हैं, और इनमें भी लगभग १६-१७ बहुत कुछ

अच्छी हालत में हैं। इन मन्दिरों में से अधिकांश ८वीं से १२वीं शताब्दा के मध्य बने प्रतीत होते हैं, जबकि कई मन्दिर १५वीं से १८वीं शती के मध्य भी निर्मित हुए हैं। दूसरे कोट के भीतर केवल दो मन्दिर हैं जिनमें से एक तो सोलह स्तंभों पर आधारित सुन्दर मंडप से युक्त विशाल एवं भव्य जिनालय का खंडहर है। मंडप के अवशिष्टांश में पूर्वाभिमुख पद्मासन एवं खड्गासन जिन मूर्तियां, चमर वाहक, यक्ष-यक्षी, पुष्पवृष्टि आदि विविध लक्षणों से युक्त दो पंक्तियों में उत्कीर्ण हैं। मंडप की बाहरी दीवार में भी कई मूर्तियां उत्कीर्ण हैं, उनके सामने ही एक छोटा सा मानस्तंभ बना हुआ है। कुछ छोटी-छोटी मूर्तियां मन्दिर के सामने भी विराजमान हैं। दूसरा मन्दिर अधिक जीर्ण शीर्ण दशा में है, इसमें भी कलापूर्ण पद्मासन एवं खड्गासन मूर्तियां विद्यमान हैं। इस मन्दिर के बाहिर दक्षिण की ओर खंडित मूर्तियों का एक ढेर लगा हुआ है। इनके अतिरिक्त शेष समस्त मन्दिर तीसरे कोट के भीतर हैं।

तीसरे कोट के मन्दिरों में सर्वाधिक विशाल एवं महत्वपूर्ण मन्दिर १६वें तीर्थंकर भ० शान्तिनाथ का है। मन्दिर के गर्भगृह में भ० शान्तिनाथ की १२ फुट ३ इंच की खड्गासन प्रतिमा अत्यन्त चित्ताकर्षक है। शान्तिनाथ ही देवगढ़ के अधिष्ठाता देव प्रतीत होते हैं, यह प्रतिमा भी पर्याप्त प्राचीन है। गर्भगृह के आगे लगभग ४२ फुट लम्बा चौड़ा वर्गाकार मण्डप है जो छः-छः स्तम्भों की छः पंक्तियों पर आधारित है। मण्डप के मध्य एक विशाल बेदिका पर कई मूर्तियां विराजमान हैं जिनमें से एक बाहुबलि की है। यह मूर्ति गोम्मटेश्वर बाहुबलि की दक्षिणात्य मूर्तियों से कई अंशों में विलक्षण है। बामी, कुक्कुटसर्प, लता आदि के अतिरिक्त इस मूर्ति पर बिच्छू, छिपकली आदि अन्य जन्तु भी रेंगते हुए अंकित किये गये हैं और साथ ही इन उपसर्गकारी जन्तुओं आदि का निवारण करते हुए देव युगल का दृश्य भी अंकित है। मन्दिर के सामने १६-१७ फुट की दूरी पर चार सुन्दर खम्भों पर आधारित एक अन्य भव्य मंडप है। इन्हीं स्तम्भों में से एक पर सन् ८६२ ई० का गुर्जर प्रतिहार सम्राट भोजदेव के समय का प्रसिद्ध लेख उत्कीर्ण है। इस मन्दिर में तीन अन्य दस-दस फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमाएँ भी विराजमान हैं, छोटी अन्य अनेक प्रतिमाएँ भी हैं। इस मन्दिर के आस-पास अन्य अनेक छोटे-बड़े मन्दिर विद्यमान हैं। इनमें से एक लाखी मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। एक अन्य मन्दिर अपने कलापूर्ण प्रवेश द्वार के लिए दर्शनीय हैं। उसके नीचे की ओर करों में जलयान और सिर पर नाग-फण धारण किये हुए संभवतः गंगा यमुना की युगल मूर्तियां हैं। यहाँ १००८ जिन मूर्तियों से युक्त पाषाण का एक सुन्दर सहस्रकूट चैत्यालय भी अवस्थित है। एक मन्दिर की दीवार पर भगवान की माता की पांच फुट उत्तुंग मनोहर मूर्ति उत्कीर्ण है। एक स्थान पर पार्श्वनाथ की मूर्ति के सिर पर नागफण न बनाकर उसके बगल में दोनों ओर विशालकाय सर्प बना दिये हैं, तथा ऋषभदेव की मूर्ति के शिर पर जटाएँ दिखाई हैं। एक मन्दिर में चरण चिन्ह ही हैं। एक दूसरे में तीर्थंकर मूर्तियों के अतिरिक्त मुनि, आर्यिका आदि की मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। एक मन्दिर के बाहरी बरामदे में विराजमान चतुर्भुजी सरस्वती की, षोडषभुजा गरुड़ वाहना चक्रेश्वरी की, अष्टभुजा वृषभवाहना ज्वालमालिनी की एवं कमलासना पद्मावती की मूर्तियां अत्यन्त कलापूर्ण एवं चित्ताकर्षक हैं। इनमें से एक पर वि० सं० १२२६ उत्कीर्ण है, संभव है ये चारों मूर्तियां एक ही कलाकार की कृतियां हों। शान्तिनाथ के उपरोक्त बड़े मन्दिर के मंडप की एक दीवार पर भी २४ शासन देवियों में से २० की सुन्दर मूर्तियां उनके नाम सहित उत्कीर्ण हैं, जो रा० ब० दयाराम साहनी के मतानुसार उत्तर भारत में प्राप्त यक्षि मूर्तियों में सर्वथा विलक्षण एवं अद्वितीय हैं। कहीं-कहीं गृहस्थ श्रावक श्राविकाओं की मूर्तियां भी पाई जाती हैं। देवगढ़ ही एक स्थान है जहाँ अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, पाँचों ही परमेष्ठियों की मूर्तियां उपलब्ध होती हैं। तीर्थंकरों में से तो चौबीसों ही तीर्थंकरों की मूर्तियाँ यहाँ मिलती हैं। कई स्थानों में विशेषकर अजितनाथ और चन्द्रप्रभु के आठ-आठ या चार-चार अन्य जिनमूर्तियों से युक्त पट भी दर्शनीय हैं। कहीं-कहीं एक वृक्ष के नीचे गोद में एक-एक बच्चा लिए हुए दम्पति युगल की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। श्री दयाराम साहनी के मतानुसार ये दृश्य भोगभूमि के हैं, जिनमें कल्पवृक्ष के नीचे तिष्ठते हुए युगलिया सन्तान युक्त प्रसन्न युगल प्रदर्शित किये गये हैं।

देवगढ़ के समस्त जैन प्रस्तराङ्कनों का विधिवत अध्ययन करने से उनमें अनेक अनुश्रुतियों एवं पौराणिक आख्यानों का चित्रण मिलने की संभावना है।

सभी मूर्तियां प्रस्तर निर्मित हैं या प्रस्तराङ्कनों के रूप में है। अधिकांश खड्गासन हैं, जिनकी ऊंचाई दो-ढाई फुट से लेकर बारह फुट तक हैं। मूर्तियों के केशों की बनावट भिन्न-भिन्न प्रकार की है। अरहन्तों एवं मुनियों की दिगम्बर प्रतिमाओं के अतिरिक्त सरागी देवी-देवताओं एवं गृहस्थ स्त्री-पुरुषों की भावभंगी, परिधान, अलङ्करण आदि के चित्रण में कलाकार ने कमाल किया है। अनेक जैन सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक प्रतीक यत्र-तत्र उत्कीर्ण मिलते हैं और लोक जीवन के दृश्य भी उप्लब्ध हैं। इस प्रकार देवगढ़ का रूप शिल्प न केवल धार्मिक एवं कलात्मक दृष्टि से ही वरन सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

देवगढ़ के मन्दिरों का निर्माण उत्तर भारत में विकसित नागर शैली में हुआ है, जिसे पंचरत्न शैली भी कहते हैं। शान्तिनाथ आदि मंदिरों के शिखर अत्यन्त सुन्दर हैं। सभी मन्दिर प्रस्तर निर्मित हैं और उनका कटाव एवं कारीगरी दर्शनीय है। मन्दिरों के गर्भगृह प्रायः अन्धकारमय हैं और उनके द्वार बहुत छोटे-छोटे हैं। किन्तु गर्भगृहों के आगे के सभा मंडप खुले और विशाल हैं। जिन स्तम्भों पर वे आधारित हैं उनकी तथा छतों एवं दीवारों की कारीगरी और उनपर उत्कीर्ण मूर्त्त दृश्य एवं अलंकरण चित्ताकर्षक हैं। मन्दिरों के तोरणद्वार भी सुन्दर एवं कलापूर्ण हैं। चरण चिन्हों से युक्त शिखरबंद खुली छतरियां भी हैं और जिनमूर्तियों एवं मंगल प्रतीकों से अलंकृत कई सुन्दर उत्तुंग मानस्तम्भ भी हैं। स्वयं दुर्गकोट, उसका तोरणद्वार, घाट और सीढ़ियां, विशाल पाषाण में काट-कर बनाई बावड़ी आदि भी प्राचीन स्थापत्य के अच्छे नमूने हैं। वस्तुतः उपरोक्त नागर शैली के स्थापत्य का विकास गुप्तकाल से और वह भी मुख्यतया देवगढ़ के जिनायतनों द्वारा ही प्रारम्भ हुआ प्रतीत होता है, यही कारण है कि देवगढ़ और उसके उपरान्त खजुराहों, चन्देरी, अजयगढ़, महोबा, अहार, पपौरा आदि के प्राचीन जैन मन्दिर प्राग्मुस्लिम कालीन सम्पूर्ण भारतीय कला का सफल प्रतिनिधित्व करते हैं। गुप्त, गुर्जर-प्रतिहार और चन्देल वंशों के सहिष्णु नरेशों के आश्रय में उत्तर भारत की धर्माश्रित कला, विशेषकर जैनों के प्रयत्न से, खूब फली फूली।

शिलालेखीय सामग्री की भी देवगढ़ में प्रचुरता है। उत्तर भारतीय पुरातत्व विभाग की सन् १९१८ ई० की वार्षिक रिपोर्ट में इस स्थान से प्राप्त लगभग २०० शिलालेखों की सूचना दी हुई थी। उसके बाद भी एक सौ अन्य लेख मिले हैं। फिर भी देवगढ़ में तथा उसके आसपास जंगल में यत्र-तत्र बिखरी हुई खंडित-अखंडित अनेक जैन प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण सभी लेखों का अभी तक संग्रह और सूचना नहीं हो पाई है। रिपोर्ट में सूचित लेखों में से लगभग डेढ़ सौ लेख ऐतिहासिक महत्व के हैं, कुछ एक तो अत्यधिक महत्वपूर्ण है। लगभग साठ लेख ऐसे हैं जिनमें उनके अंकित किये जाने की तिथि का भी उल्लेख है। ये लेख प्रायः वि० सं० ९१९ से १८७६ पर्यन्त के हैं। ये शिलालेख न केवल देवगढ़ के तत्कालीन जैन धर्मावलम्बियों के धार्मिक जीवन, सामाजिक संगठन तथा तत्सम्बन्धी इतिहास ज्ञान के लिए ही उपयोगी है, वरन् भारतवर्ष के सामान्य राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर भी पुष्कल प्रकाश डालते हैं। साथ ही नागरी अक्षरों एवं लिपि के क्रमिक विकास का अध्ययन करने के लिए भी ये अत्यधिक उपयोगी हैं।

भोजदेव के समय के स्तम्भ लेख के अनुसार उक्त सम्राट के पंचमहाशब्दप्राप्त महासामन्त श्री विष्णुराम के शासन में आचार्य कमलदेव के शिष्य आचार्य श्रीदेव ने इस लुअच्छगिरि के प्रचीन शान्त्यायतन (शान्तिनाथ के मन्दिर) के निकट गोष्ठिक बाजुआ गागा द्वारा मानस्तम्भ निर्माण कराकर वि० सं० ९१९ शककाल ७८४ की आश्विन शुक्ल चतुर्दशी बृहस्पतिवार को उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में प्रतिष्ठापित किया था। अपने ऐतिहासिक एवं धार्मिक

महत्व के अतिरिक्त सन् ८६२ ई० के इस अभिलेख की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें विक्रम एवं शक दोनों ही संवतों के एक साथ उल्लेख का प्रायः सर्व प्राचीन उदाहरण मिलता है। एक विचित्र शि० ले० १८ लिपियों में उत्कीर्ण है। कहा जाता है कि आदि तीर्थंकर ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी ने उक्त अठारह लिपियों का सर्व प्रथम आविष्कार किया था। इसी मन्दिर के निकट एक अन्य जैन मन्दिर में ११वीं–१२वीं शती की लिपि में एक लेख है जिसमें एक दानशाला के बनाये जाने का वर्णन है।

इन जैन शिलालेखों में विभिन्न जैनाचार्यों, साध्वियों, विद्वानों, श्रावक-श्राविकाओं, राजा महाराजाओं आदि के नाम आये हैं।

इस प्रकार अपने आकर्षक प्राकृतिक वातावरण एवं असंख्य अप्रतिम कलाकृतियों, ऐतिहासिक शिलालेखों, आदि के लिए देवगढ़ सामान्य दर्शकों, कलाप्रेमियों, पुरातत्वज्ञों, इतिहास के विद्यार्थियों तथा धार्मिक जनसाधारण, सभी के लिए एक दर्शनीय एवं अध्ययनीय स्थल है। प्राचीन भारत का गौभव देवगढ़ आज भी भारतीय राष्ट्र का गौरव है।

देवगढ़ में यात्रियों की सुविधा के लिए पर्वत से नीचे वन्य विभाग का एक डाक बंगला और एक जैन धर्मशाला है, तथा दि० जैन देवगढ़ तीर्थ कमेटी की ओर से एक प्रदर्शक भी नियुक्त है। प्रतिवर्ष मार्च मास के अंतिम सप्ताह के लगभग देवगढ़ में एक भारी जैन मेला भरता है।

बानपुर

ललितपुर जिले की महरौनी तहसील में, महरौनी से ९ मील (पक्की सड़क पर) और ललितपुर से ३२ मील पर बानपुर नाम का गांव स्थित है, जिसे महाभारतकालीन बाणासुर दैत्य की राजधानी बाणपुर का सूचक माना जाता है। गांव के उत्तरी भाग में गणेश जी की २२ भुजाओं से युक्त अद्वितीय विशालकाय मूर्ति स्थित है, और पास बहने वाली जामनेर नदी पर दैत्यसुता उषा के नाम पर उषाघाट प्रसिद्ध है।

गांव की दक्षिणी दिशा में, बानपुर-महरौनी मार्ग पर २८०×२०० फुट की एक चहारदिवारी के भीतर पांच प्राचीन जिनमन्दिर हैं। प्राकृतिक सुषमा से परिवेष्टित यह स्थल ही दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बानपुर के नाम से प्रसिद्ध है, जो धार्मिक महत्व के अतिरिक्त एक श्रेष्ठ कलाधाम भी है।

उपरोक्त मन्दिरों में से नं० १ में सं० ११४२ (सन् १०८५ ई०) की प्रतिष्ठित संगमरमर की तीर्थंकर ऋषभदेव की भव्य प्रतिमा है, तथा एक अन्य देशी प्रस्तर की ५ फु० ४ इ० ऊँची तीर्थंकर मूर्ति कायोत्सर्ग मुद्रा में है, जिसके साथ शासनदेवों का अंकन है। मन्दिर न० २ में ८-८॥ फुट ऊँची दो खडिण्त तीर्थंकर मूर्तियां हैं। मन्दिर नं० ३, जो सम्भवतया इस अधिष्ठान का मुख्य मन्दिर था, के द्वार के ऊपर क्षेत्रपाल की मूर्ति बनी है, अन्दर एक वेदी में, मन्दिर के भौंहरे की खुदाई में प्राप्त, प्राचीन चरणचिन्ह स्थापित हैं, तथा एक अन्य वेदी में १४८४ ई० में प्रतिष्ठित पद्मासन जिनप्रतिमा विराजमान है। मन्दिर की बाहरी दीवार पर युगादिदेव, यक्ष-यक्षि, युगलिया, मिथुन तथा कतिपय पौराणिक दृश्यों के १९ कलापूर्ण अंकन हैं। मन्दिर न० ४ शिखर विहीन है और शान्तिनाथ जिनालय अथवा 'बड़े बाबा का मन्दिर' कहलाता है। इस मन्दिर में देशीपाषाण की १८ फुट ऊँची बड़ी मनोज्ञ, किन्तु नासिका आदि से खण्डित, शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमा है जिसकी चरण चौकी पर प्रतिष्ठा का सं० १००१ (सन् ९४४ ई०) अंकित है। शिलालेख के इधर-उधर छोटी-छोटी आकृतियाँ उपासकों आदि की बनी हैं। शन्तिनाथ के
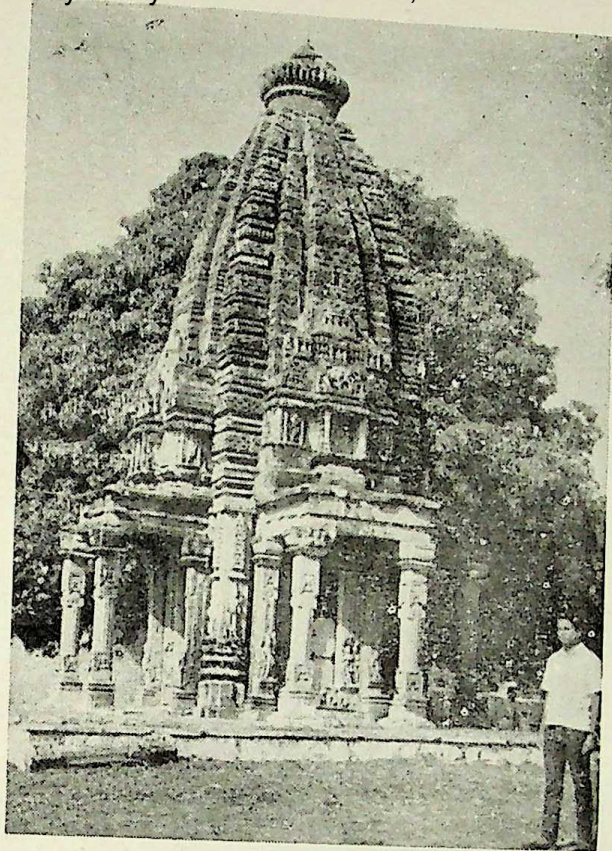
३४— चौमुखा सहस्रकूट कलापूर्ण प्राचीन मन्दिर, बानपुर
(जि० ललितपुर)

३५— धातुमयी पंचतीर्थी, राज्य संग्रहालय लखनऊ
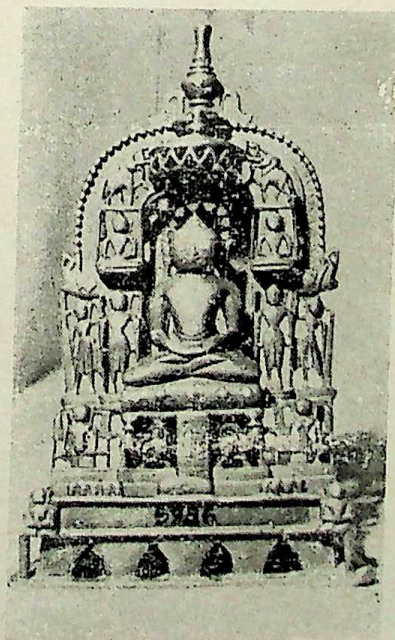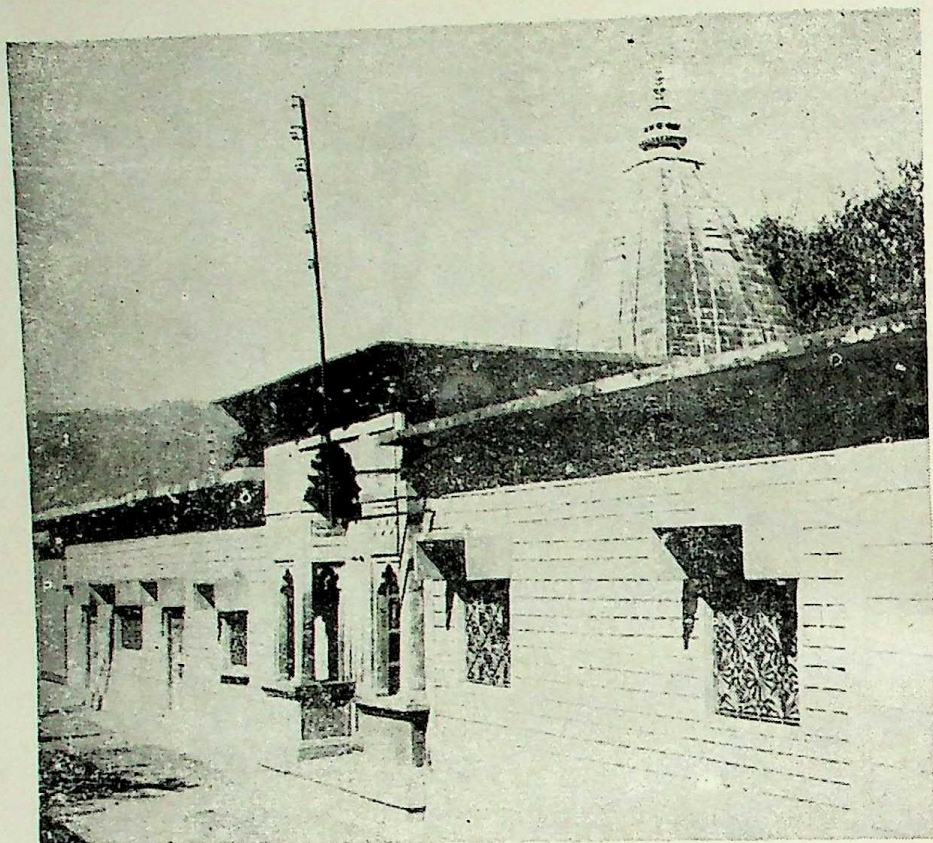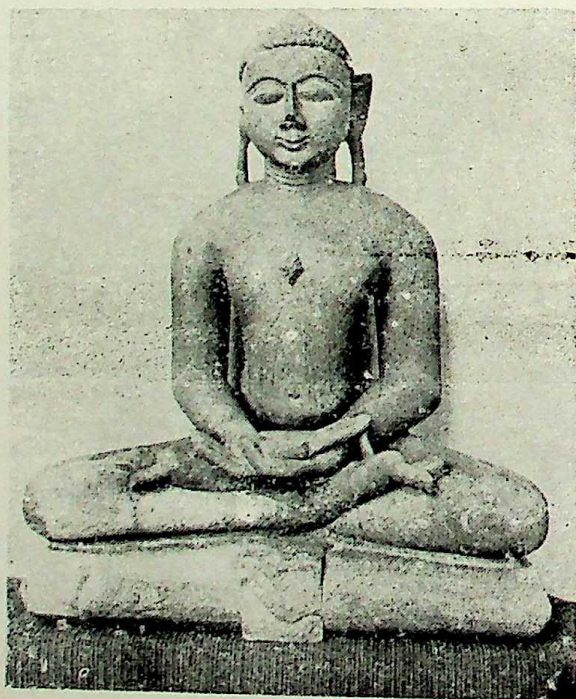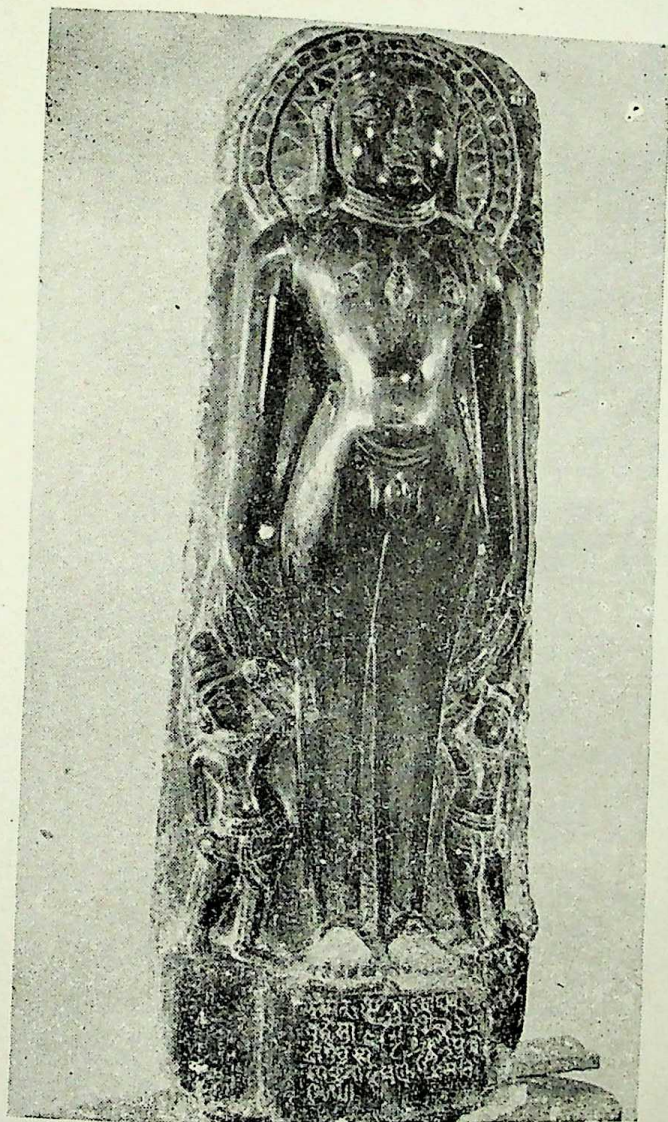
३८—लेखयुक्त महावीर प्रतिमा, महोबा, राज्य संग्रहालय लखनऊ

३९—वीरनाथ-पंचजिनेन्द्र पट्ट, श्रावस्ती, राज्य संग्रहालय लखनऊ

बाँयी ओर ७ फुट ऊँची कुन्थुनाथ की और दांयी ओर उतनी ही अरनाथ की प्रतिमाएँ स्थित हैं। जिनालय की बाहरी पार्श्वभित्ति पर भी एक कलापूर्ण पद्मासन जिनमूर्ति उत्कीर्ण है। उपरोक्त चारों मन्दिर एक विशाल चबूतरे के ऊपर बने हैं, और उसके सामने क्षेत्र का विशेष आकर्षण मन्दिर न० ५ है, जो अत्यन्त कलापूर्ण चतुर्मुख सहस्रकूट चैत्यालय है। लगभग ५० फीट ऊँचा यह मनोरम जिनालय २२ फीट चौड़ी पीठिका पर निर्मित है, और चन्देलकालीन खजुराहो कला का ही एक सुन्दर नमूना है। शिखर का शिल्प, बाह्यभित्तियों के प्रस्तराङ्कन, आदि की दृष्टि से यह मन्दिर उच्चकोटि की कलाकृति है। अहार क्षेत्र में प्राप्त एक शिलालेख के अनुसार बानपुर के इस सहस्रकूट चैत्यालय का निर्माता गृहपतिवंशी सेठ देवपाल था (गृहपति वंशसरोरुह सहस्ररश्मिः सहस्रकूटंयः। वाणपुरे वधितासीत श्रीमानिह देवपाल इति ।।)। उसी के प्रपौत्र ने ११८० ई० में अहार क्षेत्र की विशालकाय शान्तिनाथ प्रतिमा की स्थापना की थी, अतएव बाणपुर का उक्त चैत्यालय ११वीं शती का होना चाहिए। मन्दिर के भीतर एक ४ फुट चौड़े एवं ८ फुट ऊँचे शिलास्तम्भ पर १००८ जिनमूर्त्तियाँ सुष्ठुरीत्या अंकित हैं—इन्हीं के कारण यह सहस्रकूट चैत्यालय कहलाता है। उपरोक्त मन्दिरों एवं मूर्तियों आदि के अतिरिक्त भी इस स्थान में अनेक खण्डित-अखण्डित मूर्तियाँ एवं कलावशेष बिखरे पड़े हैं, जिनमें से ६८ मूर्तांकनों से युक्त एक शिलाखंड, जिसके मध्य में फणावलिमण्डित पद्मासन पार्श्व प्रतिमा है, उल्लेखनीय है। एक कमेटी इस तीर्थ की देखभाल करती है। क्षेत्र के जीर्णोद्धार एवं विकास की आवश्यकता है।

शूमेका पर्वत

ललितपुर जिले में जाखलौन रेलस्टेशन से ५ मील की दूरी पर शूमेका नाम की छोटी सी पहाड़ी है जिसके ऊपर पाषाण का गुम्बजदार-शिखरबन्द मन्दिर स्थिति है, और उसमें भगवान शान्तिनाथ के चरणचिन्ह स्थापित हैं। चारों ओर जंगल है, दृश्य रमणीय है, स्थान प्राचीन है, और अतिशय क्षेत्र के रूप में इसकी प्रसिद्धि है।

नवागढ़

ललितपुर जिले की महरौनी तहसील के सोजना ग्राम से ३ मील पर स्थित नावई (नवागढ़) के दक्षिण-पूर्व कोने पर पुराने जैनमन्दिरों खण्डहरों से बना टीला है। उसमें एक भौंहरे में तीर्थंकर अरनाथ ५ फुट ऊँची बड़ी मनोज्ञ मूर्ति है जो सं० १२०२ (सन् ११४५ ई०) की प्रतिष्ठित है। अन्य भी कलाकृतियाँ हैं। एक धर्मशाला और संग्रहालय भी है। अतिशय क्षेत्र के रूप में प्रसिद्धि है।

चाँदपुर

ललितपुर जिले में जाखलौन स्टेशन से ५ मील की दूरी पर, शूमेकापर्वत की तलहटी के निकट चाँदपुर नाम का ग्राम बसा है, इसके निकट ही जहाजपुर गांव है। उक्त पहाड़ के नीचे एक पुराने सरोवर के किनारे १२वीं शती के प्रस्तर निर्मित दो कलापूर्ण जिनमन्दिर स्थित हैं, जिनमें से एक में भगवान शान्तिनाथ की दस हाथ ऊँची खड्गासन श्यामवर्ण मनोज्ञ प्रतिमा, तथा अन्य २० छोटी-छोटी पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। दूसरे मन्दिर में भी वैसी ही २० प्रतिमाएँ हैं।

पवाजी

पवा या पवागिरि नाम की पहाड़ी ललितपुर जिले में तालबेहट रेल स्टेशन से ६ मील की दूरी पर स्थित पवा नामक ग्राम के निकट है। ग्राम में एक पुराना चैत्यालय है। ग्राम से १ मील पर स्थित पवागिरि पर एक

परकोटे के भीतर दो मढियां हैं, जिनमें से एक के नीचे स्थित भौंहरे में पत्थर की वेदी पर छः पद्मासनस्थ तीर्थंकर प्रतिमाएँ अढ़ाई से तीन फुट ऊँची विराजमान हैं—दो शीतलनाथ की हैं और एक-एक ऋषभनाथ, सम्भवनाथ, सुमतिनाथ और पार्श्वनाथ की हैं। एक प्रतिमा १२४२ ई० की और शेष १२८८ ई० की प्रतिष्ठित हैं। प्रतिमा सब मनोज्ञ हैं, और इस स्थान की अतिशय क्षेत्र के रूप में मान्यता है। अगहन के प्रारम्भ में ८ दिन का मेला होता है। स्थान रमणीक है।

बालाबेहट

ललितपुर जिले में ललितपुर से लगभग ४० कि० मी० पर बालाबेहट नाम का गांव है, जहां एक प्राचीन चन्देलकालीन शिखरबन्द मन्दिर में तीन वेदी हैं, जिनमें से मुख्य वेदी में दो फुट ऊँची कृष्ण पाषाण की अतिमनोज्ञ पद्मासनस्थ पार्श्व प्रतिमा है जो देवातिशय के लिए प्रसिद्ध है। पासपड़ौस की ग्रामीण जनता इन शामलिया पार्श्व नाथ की दुहाई देती है। एक धर्मशाला भी यहां है और फाल्गुनमास में रथोत्सव एवं मेला होता है। अन्य दो वेदियों में पाषाण एवं धातुनिर्मित कई-कई प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

दुधई

ललितपुर जिले में बालाबेहट के पास ही दुधई नाम का प्राचीन स्थान है जहां अनेक प्राचीन जैन कलावशेष बिखरे पड़े हैं जो पूर्व मध्यकालीन प्रतीत हुए हैं। इनमें विशेष उल्लेखनीय एक कलापूर्ण विशाल प्रस्तरांकन है जो २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ की बारात के जलूस का माना जाता है।

सिरौनजी

ललितपुर जिले में जखौरा रेलस्टेशन से १२ मील की दूरी पर स्थित सिरौन ग्राम में एक पुराना शिखरबन्द जैन मन्दिर है। ग्राम से थोड़ी दूर पर ५ प्राचीन मन्दिर हैं, जिनमें तीन एक ही खण्डहर के भीतर स्थित हैं। इनमें से बड़े मन्दिर की वेदी में कृष्ण पाषाण की दो-दो फुट ऊँची शान्तिनाथ की तीन मनोज्ञ प्रतिमाएँ हैं। दूसरे मन्दिर की वेदी में वैसी ही दो प्रतिमाएँ हैं तथा वेदी के आगे दोनों कोनों पर दो इन्द्र खड़े हैं। तीसरा मन्दिर है तो छोटा किन्तु उसके भीतर दीवार पर भगवान शान्तिनाथ की १६ फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा उत्कीर्ण है। इस प्रतिमा के अगल-बगल तीन-तीन फुट ऊँची दो प्रतिमाएँ तथा उनके ऊपर दो-दो फुटी ऊँची दो प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। चौथा मन्दिर गुम्बजदार है, वेदी में ४ फुट ऊँची प्रतिमा विराजमान है तथा चारों ओर दीवारों पर अनेक मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। पांचवें मन्दिर में भीतर वेदी में तो दो प्रतिमाएँ हैं, किन्तु बाहर आंगन में लगभग १०० खण्डित मूर्तियां छः-छः फुट ऊँची तथा अन्य अनेक ४ या ५ फुट ऊँची पड़ी हैं। आंगन के चबूतरे पर सं० १००८ (सन् ९५१ ई०) का लेख अंकित है। यह स्थान भी अतिशयक्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है, कलाधाम तो है ही। फाल्गुन मास में यहां वार्षिक रथोत्सव होता है।

ललितपुर

स्वयं ललितपुर शहर में, बस्ती से लगभग १ मील पर एक भारी ऊँचेगढ़ के भीतर सात मन्दिर व धर्मशाला हैं। यह स्थान क्षेत्रपाल के नाम से प्रसिद्ध है, और आस-पास में इसकी बड़ी मान्यता है। मन्दिर आदि सुन्दर हैं। क्षेत्रपाल मन्दिर ११वीं-१२वीं शती का अनुमान किया जाता है।

कुरगमा

झांसी जिले में, झांसी रेलवे स्टेशन से लगभग ८ कि० मी० की दूरी पर कुरगमा नाम का छोटा सा गांव है, जिसके बाहर एक बाग में एक पुराना मठ है। इस मठ के भौंहरे में १५-१६ प्राचीन मनोज्ञ पाषाण निर्मित तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं, जिनमें से कुछ पार्श्वनाथ की और कुछ भगवान महावीर की हैं, और अधिकतर १२८६ एवं १२८७ ई० की प्रतिष्ठित हैं। स्थान अतिशयपूर्ण है और तीर्थरूप में मान्य किया जाता है।

महोबा

हम्मीरपुर जिले में स्थित परमाल चन्देल की प्रसिद्ध राजधानी और लोककथा के वीरों अल्हा-ऊदल की क्रीड़ास्थली महोबानगर में प्राचीन जैनमन्दिरों एवं कलापूर्ण जैन मूर्तियों के अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं। चन्देल काल में यह स्थान एक अच्छा जैन केन्द्र रहा है।

कहाऊँ

देवरिया जिले में, देवरिया-सलेमपुर मार्ग पर, गोरखपुर से लगभग ७५ कि० मी०, खुखुन्दो (काकंदी) से १३ कि० मी०, सलेमपुर के निकट कहाऊँ नाम का छोटा ग्राम है, जिसका प्राचीन नाम ककुभ था। यह स्थान अपने गुप्तकालीन कलापूर्ण पंचजिनेन्द्र-स्तम्भ एवं अन्य जैन अवशेषों के लिए प्रसिद्ध है। सर्वप्रथम १९वीं शती के प्रारम्भ में बुचानन का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ था। १८३७ ई० में लिस्टन ने इस स्थान का परिचय प्रकाशित किया और १८६१-६२ में कनिंघम ने सर्वेक्षण करके पूरा विवरण प्रकाशित किया था। उस समय उक्त स्तम्भ के अतिरिक्त दो ध्वस्तप्राय: जैनमन्दिर, कई पुराने कुएँ और सरोवर वहां विद्यमान थे, तथा कहाऊँ गांव सहित ये सब भग्नावशेष एक लगभग ५०० गज लम्बे-चौड़े विस्तृत टीले पर स्थित थे। एक मन्दिर में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की पुरुषाकार खड्गासन प्रतिमा थी। गांव के उत्तर की ओर एक ऊँचे स्थल पर भूरे बलुए पत्थर का यह अखंड स्तंभ लगभग २५ फुट ऊँचा था और साढ़े चार फुट ऊँचे आधार पर स्थित था। स्तंभ पर भगवान पार्श्वनाथ की तथा अन्य प्रतिमाएँ उत्कीर्ण है, अन्य मूर्त्ताङ्कनभां हैं, और एक लेख भी अंकित है, जिसके अनुसार 'गुप्त सं० १४१ (सन् ४६० ई०) के ज्येष्ठ मास में, सम्राट स्कंदगुप्त के ५वें राज्यवर्ष में, जैनमुनिविहार से पावन हुए ककुभ ग्राम में ब्राह्मणश्रेष्ठ सोमिल के प्रपौत्र, भट्टिसोम के पौत्र और रुद्रसोम के संसार से भयभीत, गुरुभक्त, धर्मात्मा पुत्र मद्र ने अर्हंतदेवों के सर्व कल्याणकारी मार्ग का अनुसरण करते हुए यह यशःपुञ्ज उत्तुंग 'पञ्चेन्द्र' स्तंभ स्थापित किया था।' [विशेष जानकारी के लिए देखें जैना एंटीक्वेरी में प्रकाशित हमारा लेख 'खुखुन्दो एण्ड कहाऊँ']।

कन्नौज

फ़र्रुखाबाद जिले का कस्बा कन्नौज उत्तर भारत की एक प्राचीन महानगरी का सूचक है, जो शताब्दियों तक बड़े-बड़े साम्राज्यों की राजधानी रही। कान्यकुब्ज, गाधिपुर, कुशस्थलपुर, इन्द्रपुर आदि इसके विभिन्न नाम प्राचीन साहित्य में मिलते हैं। जैनधर्म के साथ भी इस नगर का घनिष्ट सम्बंध रहा—अनेक तीर्थंकरों के यहाँ समवसरण आये, अनेक जैन पुराणकथाओं में इस नगर के उल्लेख प्राप्त होते हैं, भगवान पार्श्वनाथ ने कुमारावस्था में एक बर्बर आक्रमणकारी के साथ भीषण युद्ध करके इस नगर की रक्षा की थी। अनेक प्राचीन जैन मन्दिरों और मूर्त्तियों के अवशेष भी नगर नें यत्र-तत्र मिलते रहे हैं।

एक इन्द्रपुर बुलन्दशहर जिले में भी है और जैनधर्म का उसके साथ सम्बंध रहा है। स्वयं बुलन्दशहर के प्राचीन नाम बरन (या वरण) और उच्चनगर थे, और मथुरा के शिलालेखों में जैनमुनियों के वारण गण तथा उच्चैनागरी शाखा के अनेक उल्लेख सूचित करते हैं कि दो हजार वर्ष पूर्व भी ये स्थान जैनमुनियों के केन्द्र रहे थे। वर्तमान अलीगढ़ का पुराना नाम भी कोल या कोइल है—इस नाम का एक छोटा सा गाँव अलीगढ़ के निकट अब भी विद्यमान है। यह स्थान भी प्रचीन काल में जैन केन्द्र रहा। सीतापुर जिले का खैराबाद मध्यकाल में एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र रहा और प्रायः तीर्थरूप में उसकी मान्यता रही।

चण्द्रवाड

अतिशयक्षेत्र चन्द्रवाड की पहचान आगरा जिले में फिरोजाबाद नगर से ४ मील दक्षिण की ओर, यमुनातट के निकट, फैले हुए खंडहरों से होती है। इस नगर का मूलनिर्माता जैनधर्मानुयायी चौहान वीर चन्द्रपाल था, जिसने नगर निर्माण के साथ ही यहाँ अपने इष्टदेव चन्द्रप्रभु का भव्य जिनालल बनवाकर उसमें उनकी स्फटिक मणि की पुरुषाकार प्रतिमा प्रतिष्ठापिन की थी। उस राजा ने तथा उसके बाद उसके वंशजों ने १०वीं से १६वीं शती पर्यन्त इस भूभाग पर शासन किया था। वंश के अधिकांश राजे जैनधर्म पोषक थे और उसके मन्त्री तो प्रायः सभी जैन हुए। उपरोक्त प्रतिमा बड़ी अतिशयपूर्ण मानी जाती रही है। कालदोष से चन्द्रवाड नगर उजड़गया, उसके स्थान में फिरोजाबाद बस गया–पुराने नगर की स्मृति के रूप में चौहानों के दुर्ग, जैन मन्दिर तथा कुछ अन्य भवनों के भग्नाव शेष बचे हैं। कुछ वर्ष हुए यमुना के तल से स्फटिक की चन्द्रप्रभु प्रतिमा प्राप्त हुई थी। उसे ही मूल प्रतिमा माना जाता है। तीर्थ नहीं रहा, किन्तु तीर्थ का अतिशय बना हुआ है।

मरसलगंज

आगरा जिले में, फिरोजाबाद से १२ मील उत्तर की ओर फरिहा गांव के निकट स्थित अतिशयक्षेत्र मरसलगंज अपनी आदिनाथ भगवान की विशाल, कलापूर्ण, पद्मासनस्थ प्रतिमा के लिए प्रसिद्ध है। दर्शनीय स्थान है, तीर्थरूप में मान्यता है, मेला भी भरता है।

असाईखेड़ा

इटावा जिला में, इटावा नगर से ९ मील की दूरी पर स्थित असाईखेड़ा या आसंईखेड़ा एक प्राचीन स्थान है। पहले यहाँ भरों का राज्य था, जो जैनधर्मानुयायी रहे प्रतीत होते हैं। चन्द्रवाड के चौहान राज्य संस्थापक चन्द्रपाल ने १०वीं शती में इस क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाया और यहाँ भी एक दुर्ग बनवाया। इस स्थान से जैन मन्दिरों एवं मूर्तियों के अनेक अवशेष मिले हैं जो १०वी से १४वीं शती तक के हैं—इनमें से कुछ मूर्त्तियां राज्य संग्रहालय लखनऊ में भी आई बताई जाती हैं जो सं० १०१८ से १२३० (सन् ९६१ से ११७३ ई०) तक की हैं।

राजमल

यह अतिशय क्षेत्र एटा जिले में है। अवागढ़ भी उसी जिले में हैं। राजमल टूण्डला-एटा मार्ग पर स्थित 'बीचकानगला' गांव से ३ मील पर स्थित है। यहां नेमिनाथ भगवान की सातिशय प्रतिमा है, एक धर्मशाला भी है, मेला भी होता है।

तिलोकपुर

अवध प्रान्त के बाराबंकी जिले में बाराबंकी से १० मील और बिन्दौरा से ४ मील पर स्थित यह बड़ा गांव है। यहाँ लगभग दो-ढाई सौ वर्ष पुराना एक अच्छा शिखरबंद जैन मन्दिर है, जिसके शिखर की बनावट में लखनऊ की नवाबी स्थापत्य शैली का प्रभाव रहा प्रतीत होता है। इसी गाँव में एक वैष्णव वैरागी परिवार के अधिकार में तीर्थंकर नेमिनाथ की एक ३ फुट ऊँची, श्यामवर्ण अति मनोज्ञ एवं अतिशयपूर्ण प्रतिमा रही चली आती है। उस प्रतिमा के कारण ही तिलोकपुर की प्रसिद्धि है।

बहसूमा

मेरठ जिले में, हस्तिनापुर के निकट बहसूमा नाम का कस्बा है, जो किसी समय गूजर राजाओं की राजधानी रहा। वहाँ के जैन मंदिर में एक प्राचीन प्रतिमा है, जिसे लोग बहुधा चौथे काल की कह देते हैं। संभावना यह है कि किसी समय हस्तिनापुर के जंगलों एवं खण्डहरों में से ही वह कभी किसी को प्राप्त हुई होगी।

बड़ागांव

मेरठ जिले की बागपत तहसील में कस्बा खेखड़ा के निकट बड़ागांव नाम का एक पुराना ग्राम है। लगभग ५०-५५ वर्ष पूर्व वहाँ एक चमत्कार के फलस्वरूप भूगर्भस्थ जैनमंदिर और मूर्त्तियां प्रकट हुई थीं। तभी से उस स्थान की अतिशय क्षेत्र के रूप में प्रसिद्धि हो गई।

वहलना

पश्चिमी प्रत्तर प्रदेश में मुजफ्फरनगर के निकट स्थित बहलना ग्राम में एक सुन्दर प्राचीन जिनप्रतिमा की भूगर्भ से प्राप्ति होने से एक अच्छा मंदिर व धर्मशालाएँ आदि बन गई हैं। इधर कुछ वर्षों से इस अतिशय क्षेत्र की बड़ी प्रसिद्धि हुई है, और अक्तूबर में प्रतिवर्ष होनेवाले इसके रथोत्सव में लाखों व्यक्तियों की भीड़ एकत्र होने लगी है।

द्वाराहाट

कुमायूं-हिमालय में अल्मोड़ा जिले के द्वाराहाट नामक स्थान में १०वीं से १५वीं शती तक कीं कई सुन्दर जैन मूर्त्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जो उसी स्थान में निर्मित हुई प्रतीत होती हैं। अतएव इससे प्रकट है कि पूर्व मध्यकाल में उस सुदूर पार्वतीय प्रदेश में भी एक अच्छी जैन बस्ती, जैन मंदिर और केन्द्र रहा होगा।

नैनीताल में भी नैनादेवी के मंदिर में कुछ वर्ष पूर्व तक कई प्राचीन जैन मूर्त्तियाँ थीं।

(छ) अर्वाचीन प्रसिद्ध जैन मंदिर

यों तो उत्तर प्रदेश के जिस भी नगर, कस्बे या ग्राम में जैनों के दस-पांच भी घर हैं, वहाँ एक न एक जैन मंदिर या चैत्यालय बहुधा पाया जाता है। ऐसे भी कई स्थान हैं, यथा शाहजहाँपुर, खैराबाद, गोरखपुर आदि जहाँ पूर्वकाल में जैनों की अच्छी बस्ती थी और अब नहीं के बराबर है, अतएव पुराने मंदिर बने हैं। जहाँ वर्तमान में भी अच्छी बस्तियाँ हैं वहाँ एकाधिक मंदिर तथा अन्य धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएँ हैं। आगरा, फिरोजाबाद, लखनऊ, मेरठ, सहारनपुर, वाराणसी, ललितपुर, कानपुर, इलाहाबाद आदि नगरों में तो प्रत्येक में १०-१५ से लेकर ३०-३५ तक जैन मंदिर हैं। इनमें से फिरोजाबाद, आगरा, खुर्जा, सहारनपुर, ललितपुर, लखनऊ, मेरठ, वाराणसी, अलीगढ़, मिर्जापुर, इटावा, हाथरस, बाराबंकी, कानपुर आदि नगरों में कई-कई मंदिर अति भव्य, विशाल एवं दर्शनीय हैं। फिरोजाबाद के जैन नगर में सेठ छदामीलाल द्वारा निर्मापित विशाल एवं सुन्दर मंदिर अति आकर्षक हैं। उसी मंदिर में एक लगभग ४० फुट उत्तुंग भगवान बाहुबलि की अप्रतिम प्रतिमा की स्थापना होने जा रही है। ●
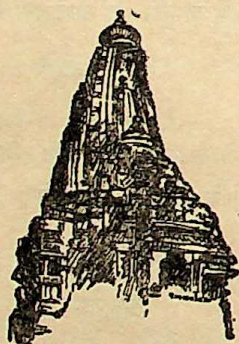
उत्तर प्रदेश के जैन सन्त

जैनधर्म निवृत्ति प्रधान धर्म है। उसका सम्पूर्ण बल तप-त्याग-संयम द्वारा आत्मशोधन एवं आत्मसाधना पर है, और लक्ष्य है इस प्रक्रिया द्वारा आत्मा को परमात्मा बना देना। किन्तु सभी स्त्री-पुरुष संसार त्यागी होकर ऐसी दुष्कर साधना नहीं कर सकते, इसीलिए जैन परम्परा में दो मार्ग विहित हैं—एक सामान्य गृहस्थजनों (श्रावक श्राविकाओं) का मार्ग है जो यथाशक्ति नियम-संयम का आंशिक पालन करते हुए न्यायपूर्वक अथवा धर्मतः अपने अर्थ और काम पुरुषार्थों का साधन करते हैं, सद्नागरिक बनकर अपने दुनियावी कर्त्तव्यों का पालन करते हैं और शनैः-शनैः आत्मोत्कर्ष साधन की ओर अग्रसर होते हैं। दूसरा मार्ग मोक्षमार्ग के उन एकनिष्ठ साधकों का हैं जो संसार-देह-भोगों से विरक्त होकर, गृहत्यागी, निरारम्भी, निष्परिग्रही साधु-साध्वियों के रूप में आत्मसाधना करते हुए तथा यथासम्भव लोकहित करते हुए अपने समय का सदुपयोग करते हैं। अतएव जैन शास्त्रों में साधु की परिभाषा की गई है कि जिसका मन इन्द्रियविषयों की आशा के वशीभूत नहीं है, जो किसी प्रकार का आरम्भ नहीं करता, अपने पास कोई भी अन्तरंग या बहिरंग परिग्रह नहीं रखता, तथा सदैव ज्ञान, ध्यान और तप में अनुरक्त या लीन रहता है, वही साधु कहलाता है—

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञान-ध्यान-तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥

अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह रूप पंच महाव्रत का धारी, मात्र भिक्षा में प्राप्त अन्न ग्रहण करने वाला, आत्मौपम्य का साधक, धर्म का उपदेश देने वाला धीर साधु ही गुरु रूप में मान्य होता है—

महाव्रतधराधीरा भैक्षमात्रोपजीविनः ।
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवोमताः ॥

उसकी दृष्टि में—

त्यागो हि परमोधर्मः त्यागएव परमतपः ।
त्यागात् इह यशोलाभः परत्रऽभ्योदयो महान ॥

वह इस त्यागरूपी परमधर्म का स्वयं तो पूर्णतया पालन करता ही है, अपने अनुयायी श्रावक-श्राविकाओं को भी, इस लोक में यशोलाभ और परलोक में अभ्युदय का दाता प्रतिपादित करके उक्त त्यागधर्म का जीवदया, परसेवा, परोपकार एवं उदार दानशीलता के रूप में यथाशक्ति पालन करने की निरन्तर शिक्षा देता है। ये साधु-सध्वियाँ अपनी आयु बढ़ाने, शरीर को पुष्ट करने या उसका बल और तेज बढ़ाने, अथवा जिह्वा के स्वाद के लिए भोजन नहीं करते, वरन् देने वाले को तनिक कष्ट न हो ऐसी भ्रामरीवृत्ति से और जैसा भी आहार मिले उसमें समभाव वाली गोचरीवृत्ति से मिला शुद्ध, प्राशुक, सात्विक आहार, वह भी भूख से कम मात्रा में, दिन में केवल एक बार करते हैं। चातुर्मास के अतिरिक्त किसी एक स्थान में जमकर ८-१० दिन से अधिक नहीं रहते, द्रव्यादि

कोई परिग्रह अपने पास नहीं रखते, शत्रु-मित्र में समभाव रहते हैं। जैन आगमों में, सदैव परमपद का अन्वेषण करते रहने वाले इन अनगार साधुओं कि सिंहवत पराक्रमी, गजवत् कर्म-युद्ध विजयी, वृषभवत् संयमवाहक, मृगवत यथालाभ-सन्तुष्ट, पशुवत निरीह भिक्षाचारी, पवनवत् निर्लेप, सूर्यवत् तपस्वी, सागरवत् गम्भीर, मेरुवत् अकम्प, चन्द्रवत् सौम्य, मणिवत् प्रभापुंज, क्षितिवत् तितिक्षु, सर्पवत् अनिश्चित स्थानवासी, तथा आकाशवत् निरालम्ब बताया है। श्रमण, संयत, ऋषि, मुनि, साधु, अनगार, भदन्त, दान्त, यति आदि उनके लिए प्रयुक्त एकार्थवाची विशेषण हैं। नारी संतनी आर्यिका, क्षुल्लिका, साध्वी, आर्या, ब्रह्मचारिणी आदि कहलाती हैं। जो गृहत्यागी धर्म-सेवी एवं जनसेवी महानुभाव पूर्ण मुनिधर्म पालन नहीं करते, किन्तु सामान्य श्रावकों की भाँति गृहस्थ अवस्था में भी नहीं रहते, वे ऐल्लक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी, वर्णी आदि कहलाते हैं। मध्यकाल में कुछ साधु तत्कालिक विविध परिस्थितियों के कारण वस्त्रधारी होकर मठों में भी रहने लगे। वे भट्टारक, श्री पूज्य, गृहस्थाचार्य आदि भी कहलाये। ये सभी स्त्री-पुरुष जैन सन्त 'तिन्नाणं तारयाणं' —स्वयं तिरें और दूसरों को तारें, ऐसे स्व-पर कल्याण-कारी होते हैं। जहां वे विचरते हैं वह क्षेत्र धन्य होता है, और जो गृहस्थ इन सन्तों के समागम का लाभ उठाते हैं और उनकी सेवा का अवसर प्राप्त करते हैं, वे भी धन्य हो जाते हैं। सच्चे वास्तविक आदर्श सन्तों का समागम अति दुर्लभ होता है।

उत्तर प्रदेश का परम सौभाग्य रहा है कि यहां ऐसे सन्त सदैव से होते रहे हैं। युग के आदि में भगवान ऋषभदेव ने इसी प्रदेश में सर्वप्रथम साधु मार्ग का प्रवर्त्तन स्वयं अपने आदर्श द्वारा तथा अनेक पुरुषों एवं नारी शिष्यों को साधु धर्म में दीक्षित करके किया था। तदनन्तर अन्य तेईस तीर्थंकर स्वयं तथा उनके अपने-अपने तीर्थ के साधु–साध्वियाँ इस प्रदेश में विचरते रहे। भगवान महावीर के समय में पूर्ववर्ती तीर्थंकर पार्श्व की परम्परा के केशि कुमार आदि अनेक साधु इस प्रदेश में विचर रहे थे। भगवान महावीर, उनके गौतमादि गणधरों तथा उनके संघ के अनेकों मुनि एवं आर्यिकाएँ इस प्रदेश में विचरे। महावीर के उपरान्त अन्तिम केवलि जम्बूस्वामी और उनके साधिक पांचसौ शिष्य सन्तों ने मथुरा के चौरासी क्षेत्र पर तप किया और सद्गति प्राप्त की। तदनन्तर, २री शती ई० पू० से लगभग ५वीं शती ई० पर्यन्त मथुरा जैन सन्तों का इस प्रदेश में प्रधान एवं बृहत् केन्द्र था। वहां से प्राप्त तत्कालीन शिलालेखों में ८५ विभिन्न जैन मुनियों ओर २५ आर्यिकाओं के तो नाम भी प्राप्त होते हैं, जिनमें कुमार या कुमारनन्दि, कण्हश्रमण, आर्यमंखु, नागहस्ति, महारक्षित, भदन्त जयसेन, नागनन्दि, आर्यबलदिन, महानन्दि, वाचक वृद्धहस्ति, वाचक भगिनन्दि, गणीनागसेन, वाचक ओघनन्दि, वाचक आर्य हस्तहस्ति, वाचक आर्यदेव, मुनि कुमार दत्त, आर्यिका जीवा, आर्या दत्ता, आर्या षष्ठिसिहा, ऋषिदास, पुष्यमित्र, आर्य मिहिल, आर्या श्यामा, आर्य ज्येष्ठहस्ति, आर्य नागभूति, वाचक सन्धिक, आर्या जया, आर्या संगमिका, आर्या वसुला, आर्य जयभूति, आर्य गृहरक्षित, वाचक मातृदिन, वाचक संघसिंह, आर्य बलत्रात आदि सन्त-सन्तनियाँ शुंग-शक-कुषाणकाल (लगभग २००ई० पू०—२००ई०) के चार सौ वर्षों में विशेष महत्वपूर्ण रहे प्रतीत होते हैं। मथुरा के अतिरिक्त उच्चनगर एवं वरण (बुलन्दशहर), कोल (अलीगढ़), अहिच्छत्रा, संकिसा, हस्तिनापुर, कौशाम्बी, श्वेताम्बिका, वज्रनगरी आदि उस युग में, इस प्रदेश में जैन मुनियों के प्रसिद्ध केन्द्र थे। उस काल के उक्त जैन साधुओं ने स्वयं को विभिन्न गण-शाख-कुलों आदि में व्यवस्थित रूप से संगठित किया हुआ था, और उन्होंने अपने धर्मात्मा श्रावक-श्राविकाओं से 'सर्व सात्त्वानां हिताय, सर्व सात्त्वानां सुखाय' अनगिनत विविध धार्मिक कृत्य एवं निर्माण कराये थे। दक्षिण के आचार्य समन्तभद्र स्वामी भी काशी आये थे, ऐसी एक अनुश्रुति है।

गुप्तकाल (५वीं शती ई०) में मथुरा के दतिलाचार्य और पंचस्तूपनिकाय के काशिवासी निर्ग्रन्थ श्रमणा-चार्य गुहनन्दि अति प्रसिद्ध थे। इन गुहनन्दि के शिष्य-प्रशिष्य उत्तर प्रदेश में ही नहीं, बिहार और बंगाल में

भी फैले हुए थे। आचार्य सिद्धसेन भी उत्तर प्रदेश में विचरे प्रतीत होते हैं, ७वीं शती में आचार्य मानतुंग और ८वीं-९वीं शती में बप्पभट्टिसूरि उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध जैन सन्त थे। देवगढ़ के आचार्य कमलदेव और श्रीदेव भी ९वीं शती के प्रभावक सन्त थे। मथुरा में ११वीं शती में जिनदेवसूरि, भावदेवसूरि और आचार्य विजयसिंह द्वारा (१०२३ ई०) में बिंब प्रतिष्ठा आदि धर्मकार्य कराने के उल्लेख हैं।

इसके उपरान्त मुस्लिम शासनकाल में उत्तर प्रदेश में जैन सन्तों का निवास एवं विहार विरल होता चला गया। दिगम्बर मुनि तो इस काल में अधिकांशतः वस्त्रधारी भट्टारक होने लगे और स्थानविशेषों में अपनी गद्दियां स्थापित करके उनके माध्यम से साहित्य सृजन, शिक्षा, मन्दिर-मूर्ति निर्माण एवं प्रतिष्ठा, पूजा-अनुष्ठान करने कराने लगे और गृहस्थजनों को धार्मिक लाभ पहुँचाने लगे। श्वेताम्बरों में भी उन्हीं की भांति मठाधीश यतियों एवं श्रीपूज्यों की संस्था विकसित हुई। १४वीं शती में ही दिल्ली में दिगम्बर परम्परा के नन्दि, सेन और काष्ठासंघ की तथा श्वेताम्बर खरतर गच्छ की गद्दियां स्थापित हो चुकी थीं। दिल्ली को केन्द्र बनाकर ये भट्टारक एवं यति पूरे उत्तर प्रदेश में गमनागमन करके श्रावकों को धर्मलाभ देते थे। उसी शती में उत्तर प्रदेश में विचरण एवं धर्म कार्य करने वाले जैन सन्तों में भट्टारक माधवसेन, प्रभाचन्द्र एवं पद्मनन्दि के तथा आचार्य जिनप्रभसूरि के नाम उल्लेखनीय हैं। १५वीं शती में हुए तारणस्वामी इस प्रदेश के बुन्देलखण्ड में विचरे प्रतीत होते हैं और १६वीं शती में आगरा जिले के शौरिपुर-हथकन्त अटेर में दिगम्बर भट्टारकों का प्रसिद्ध पट्ट स्थापित हुआ, जो वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ तक चलता रहा, और जिसमें अनेक धर्मप्रभावक सन्त हुए। उसी शती में मुगल सम्राट अकबर के निमन्त्रण पर गुजरात के आचार्यप्रवर हीर विजयसूरि, जिन्नचन्द्र, शान्तिचन्द्र आदि अनेक जैन संत आगरा पधारे और उत्तर प्रदेश में विचरे। १७वीं शती के प्रारम्भ में चन्दवाड के ब्रह्मगुलाल मुनि तथा उसके मध्य के लगभग शीतल मुनि नाम के दिगम्बर सन्त इस प्रदेश में विचर रहे थे। शीतलमुनि आगरा भी आये और अयोध्या में १६४७ ई० में उनका समाधिमरण हुआ। बाद की दो शताब्दियां अराजकता काल की थीं, उस काल में किसी उल्लेखनीय जैन साधु के इस प्रदेश में निवास करने या विचरने का पता नहीं चलता। भट्टारकों के उपशाखापट्ट बाराबंकी, कांधला आदि कई स्थानों में थे तथा जिनकुशलसूरि प्रभृति कतिपय यतियों के लखनऊ आदि कुछ स्थानों से सम्बद्ध होने के प्रमाण मिलते हैं।

आधुनिक युग में, लगभग १८५० ई० से वर्तकान पर्यन्त अनेक ब्रह्मचारी, वर्णी, क्षुल्लक, ऐल्लक, दिगम्बर मुनियों एवं आर्यिकाओं का तथा स्थानकवासी साधु-साध्वियों का इस प्रदेश के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इन संतों ने जनता में धार्मिक भावना जागृत करने, उसका नैतिक उन्नयन करने में अपने-अपने ढंग से योग दिया है।

गत शताब्दी में अलीगढ़ के आध्यामिक सन्त त्यागी बाबा दौलतराम, कांधला के सन्त एवं भक्त कवि जयनानन्द (नैनसुखदास), आगरा के महाप्रभावक स्थानकवासी मुनि रत्नचन्द्र और मेरठ के महातपस्वी सिद्ध बाबा लालमनदास हुए।

वर्तमान शताब्दी में दिवंगत हुए प्रदेश के जैन सन्तों में उल्लेखनीय हैं—

महमूदाबाद (जिला सीतापुर) के ब्रह्मचारी भगवानसागर जो लखनऊ में कई वर्ष रहे और शिक्षा एवं साहित्य के प्रचार में योग देते रहे। काशी के आचार्य विजयधर्मसूरि जो व्याख्यान वाचस्पति, नवयुग प्रवर्तक एवं शास्त्र विशारद जैसे विरुदधारी थे। स्थानकवासी सन्त भरताजी (भरतमुनि) जो बड़े सरल स्वभावी साधु थे—स्व० मुनि लालचन्द और सुखानन्द उनके शिष्य थे और वह स्वयं मुनि रत्नचन्द के शिष्य थे। पण्डापुर-मथुरा में जन्मे बाबा भागीरथ वर्णी (१८६८-१९४२ ई०) बड़े सरल परिणमी निर्भीक त्यागी, निस्पृही एवं शिक्षाप्रेमी

सन्त थे। ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद (१८७९-१९४२ ई०) का जन्म लखनऊ में हुआ था, यहीं अन्त में उनका समाधिमरण हुआ, किन्तु पूरा उत्तर प्रदेश ही नहीं सम्पूर्ण भारतवर्ष उनका कार्यक्षेत्र था। भारी समाजसुधारक, उत्कट शिक्षा प्रेमी, देशभक्त और इस युग के सबसे बड़े जैन मिशनरी थे। जैन समाज के ऐसे निःस्वार्थ हितचिंतक और उसे जागृत करने के लिए अथक परिश्रम जीवनभर करने वाले संत भी विरले ही हुए हैं। क्षुल्लक गणेश प्रसाद वर्णी (१८७४–१९६१ ई०) का सम्पूर्ण जीवन धर्म और समाज की सेवा में समर्पित रहा। ग्राम हंसेरा (तहसील महरौनी, जिला ललितपुर) में जन्मे, विभिन्न स्थानों में विद्याध्ययन कर न्यायाचार्य हुए, स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी की तथा अन्य अनेक संस्कृत विद्यालयों, पाठशालाओं आदि की स्थापना की, प्रायः प्रारंभ से ही 'वर्णी' विशेषणधारी ब्रह्मचारी रहे और अन्तिम १४ वर्षों में क्षुल्लक पद में रहे। बुन्देलखंड की जैन समाज को जागृत करने का श्रेय उन्हें ही है। यह वर्णीजी इस युग के महान आध्यात्मिक जैन संत थे। महात्मा भगवानदीन विलक्षण संत थे—उनका सम्पूर्ण जीवन देश और जनता जनार्दन की सेवा में व्यतीत हुआ। ग्राम चावली (जिला आगरा) में जन्मे पं० नन्दनलाल शास्त्री आचार्यप्रवर शान्तिसागर जी से दीक्षित होकर क्रमशः ब्रह्मचारी एवं क्षुल्लक-ऐल्लक ज्ञानसागर हुए, फिर मुनि एवं अन्त में आचार्यसुधर्मसागर के रूप में प्रसिद्ध हुए। फिरोजाबाद (जिला आगरा) में जन्मे पं० महेन्द्रकुमार शास्त्री ३२ वर्ष की आयु में मुनि दीक्षा लेकर कालान्तर में आचार्य महावीरकीर्ति (१९१०–७१ ई०) के रूप में प्रसिद्ध हुए और लगभग ५० मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक ब्रह्मचारी आदि त्यागि महात्माओं और साध्विवों के दीक्षा गुरु हुए। मुनि-श्रुतसागर (जिला आगरा), मेरठ की विद्यावती माताजी एवं साध्वी किरण, आगरा की शरबती देवी जिला मेरठ के मुनि स्वर्णसागर और विमलमुनि, आदि अन्य इस युग के कई संत-संतनिया दिवंगत हो चुके हैं।

उत्तर प्रदेश के वर्तमान जैन संतों में उल्लेखनीय हैं—आचार्य विमलसागर (कोसमा, जिला आगरा), आचार्य सन्मतिसागर (फफूंद, जि० एटा), आचार्य पार्श्वसागर (समोना, जिला आगरा), उपाध्याय अमरमुनि एवं उनका शिष्यवर्ग, मुनि पार्श्वसागर (एटा), मुनि श्रुतसागर (आगरा), मुनि संभवसागर (एटा), मुनिशीतलसागर (फिरोजाबाद), टिकैतनगर (जिला बाराबंकी) की विदुषीरत्न ज्ञानमती माताजी, अभयमती, रत्नमती, सिद्धमती, बाराबंकी की कुंथुमती, फिरोजाबाद की शान्तिमती आदि आर्यिकाएँ, क्षुल्लक दयासागर (आगरा) तथा अन्य कई ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी आदि। प्रदेश के बाहर के भी कई संतों, यथा उपाध्याय मुनि विद्यानंद, क्षुल्लक सहजानन्द (मनोहर लाल वर्णी) आदि का मुख्य कार्यक्षेत्र उत्तर प्रदेश है।
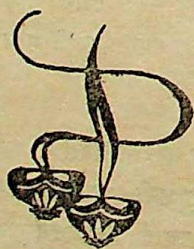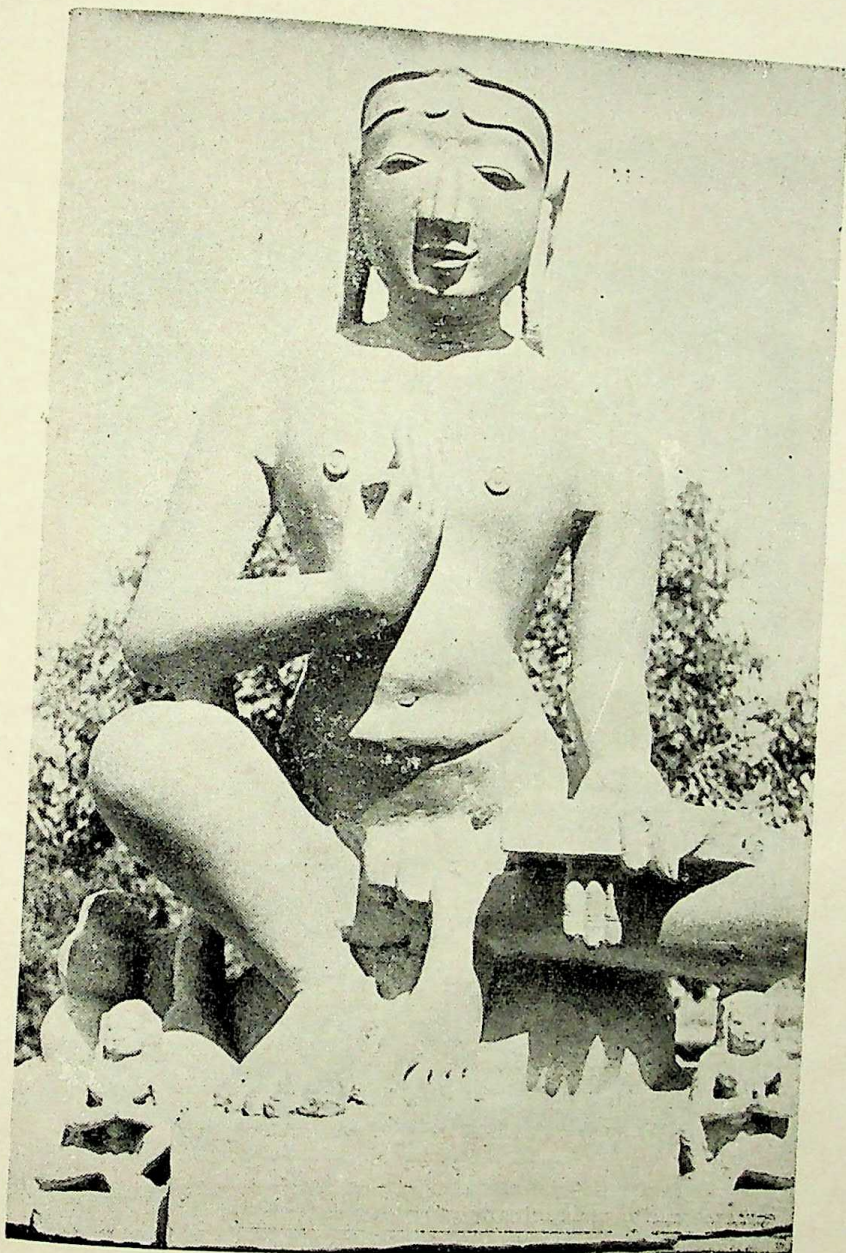
४०— उपाध्याय परमेष्ठि, देवगढ़
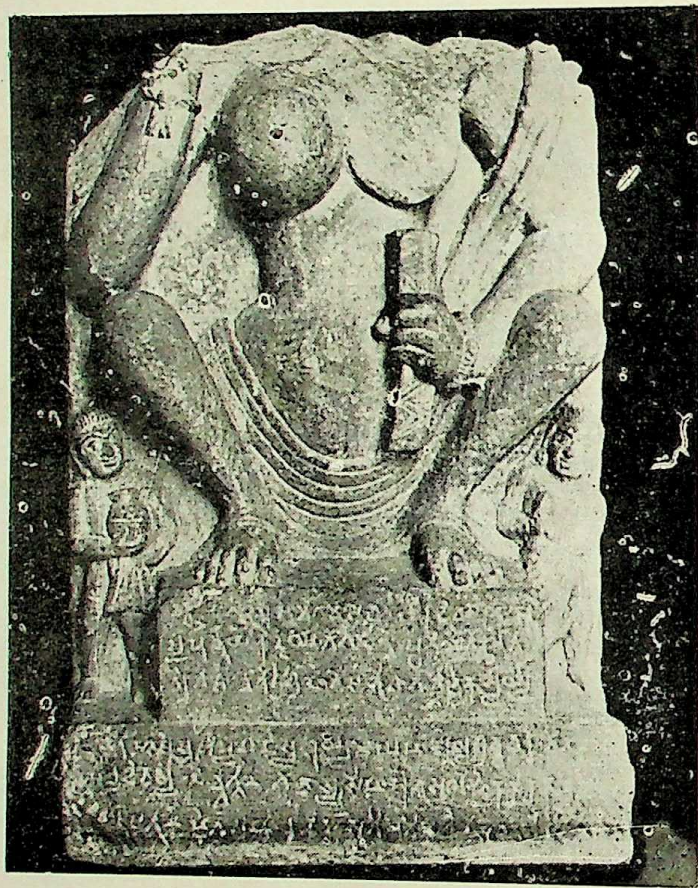
४१—भारतवर्ष की सर्वप्राचीन सरस्वती-प्रतिमा, कंकाली टीला मथुरा,
(रा० सं० लखनऊ)

उत्तर प्रदेश के जैन साहित्यकार

—०—

युग की आदि में जब आदिदेव ऋषभनाथ ने मानवी सभ्यता का ॐ नमः किया तो उन्होंने इसी उत्तर प्रदेश की अयोध्या नगरी में अपने प्रजाजन तत्कालीन मानवों को असि-मसि-कृषि-शिल्प-वाणिज्य-विद्या रूपी षट्कर्मों की शिक्षा दी, और स्त्रियों एवं पुरुषों को उनके लिए उपयुक्त क्रमशः ६४ एवं ७२ कलाएँ सिखाई थीं। मसिकर्म से लेखन का अभिप्राय है और लेखनकला की विविध विधाओं एवं प्रकारों का समावेश स्त्री-पुरुषों की उपरोक्त कलाओं में भी है। अनुश्रुति है कि उन प्रजापति स्वयंभू ने अपनी दो पुत्रियों में से कुमारी ब्राह्मी को अक्षरज्ञान सिखाया था, जिस कारण भारत की प्रचीन लिपि 'ब्राह्मीलिपि' के नाम से लोकप्रसिद्ध हुई। दूसरी पुत्री, कुमारी सुन्दरी को उन्होंने अंकज्ञान सिखाया था (देखिए—आदिपुराण, पर्व १६ श्लो-९८-११७)।

चिरकाल पर्यन्त प्रजा का सम्यक्रूप से प्रतिपालन करने के उपरान्त भगवान ने संसार का परित्याग करके तपश्चरण द्वारा आत्मशोधन किया और प्रयाग में वटवृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त करके वह आदि तीर्थंकर हुए तथा सभी प्राणियों के हित-सुख के लिए उन्होंने अपना दिव्य उपदेश दिया, जिसे उनके वृषभसेन आदि गणधरों ने जनभाषा में गूंथा। उनके उपरान्त, समय-समय पर होने वाले अन्य २३ तीर्थंकरों ने भी उसी सद्धर्म का उपदेश इस प्रदेश की जनता को दिया—उनके अपने-अपने गणधरों ने उसे अपने-अपने समय की जनभाषा में निबद्ध किया। इस प्रकार इस प्रदेश में मौलिक जैन श्रुत का प्रवाह सतत् प्रवाहित होता रहा।

अंतिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर (छठी शती ईसापूर्व) का उपदेश भी उनके इन्द्रभूति गौतम प्रभृति गणधरों ने द्वादशांग श्रुत के रूप में निबद्ध किया, और जनभाषा अर्धमागधी में निबद्ध वह श्रुतज्ञान कई शताब्दियों तक समर्थ आचार्यों की परम्परा में मौखिक द्वार से प्रवाहित होता रहा। जैन संघ में वाचकाचार्य, उच्चारणाचार्य, पृच्छकाचार्य, उपाध्याय आदि की योजना उक्त श्रुतज्ञान के संरक्षण एवं उसकी मौलिकता को सुरक्षित रखने के लिए ही की गई थी। किन्तु जब कालदोषसे, अनेक परिस्थितियों के कारण, सब सावधानियों के बरतने पर भी, उक्त श्रुत-ज्ञान में शनैःशनैः ह्रास होने लगा, और मतभेद तथा पाठभेद भी उत्पन्न होने लगे, तो श्रुतविच्छेद की चिन्ता से अनेक आचार्य एवं प्रबुद्ध श्रावक चिन्तित होने लगे। कठिनाई यह थी कि जैन मुनि निर्ग्रन्थ, निष्परिग्रही होते थे, किसी प्रकार का परिग्रह वह रख नहीं सकते थे, वर्षावास के चार महिनों के अतिरिक्त किसी एक स्थान में, वह भी बस्ती के बाहर, चार-छह दिन से अधिक रह नहीं सकते थे, और अपने संघ की व्यवस्था तथा श्रुत-संरक्षण के तंत्र में उन्हें आस्था थी। तथापि, काल ने उन्हें विवश कर दिया कि यदि वे तीर्थंकरों की वाणी को, जितना कुछ भी और जिस रूप में भी वह बची है, सुरक्षित रखना चाहते हैं तो उसे लिपिबद्ध करके पुस्तकारूढ़ कर दें।

और, यह कार्य भी इसी प्रदेश के मथुरा नगर में प्रतिष्ठित जैन संघ के दूरदर्शी प्रबुद्ध आचार्यों ने अपने प्रसिद्ध 'सरस्वती आंदोलन' द्वारा सुकर कर दिया। पुस्तकधारिणी सरस्वती की पाषाण प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करके,

धार्मिक कृत्यों की स्मृति सुरक्षित रखने के लिए अनेकों शिलालेख लिख या लिखाकर तथा जोरदार प्रचार द्वारा उन्होंने पुस्तक-साहित्य-प्रणयन के विषय में जो संकोच या विरोध था, उसे दूर किया।

मथुरा में चले इस 'सरस्वती आंदोलन' का सुफल यह हुआ कि कलिंग चक्रवर्ती खारवेल द्वारा आयोजित महामुनि सम्मेलन में श्रुतवांचना हुई और वहीं से दक्षिणापथ के जो आचार्य वहाँ पधारे थे, साहित्यप्रणयन की प्रेरणा लेकर गये। इस प्रकार सन् ईस्वी के प्रारंभ के लगभग ही उत्तर भारत में लोहाचार्य, गुणधर, आर्यमंखु, नागहस्ति, शिवार्य और स्वामि कुमार ने तथा दक्षिण देश में कुन्दकुन्दाचार्य, वट्टकेरि, धरसेन, पुष्पदंत, भूतबलि आदि अनेक आचार्यों ने आगमश्रुत के विभिन्न अंशों को लिपिबद्ध करने, पुस्तकारूढ़ करने अथवा मूलागम पर आधारित स्वतन्त्र पाहुड़ग्रन्थों में आगमिक ज्ञान का सार प्रस्तुत करने का कार्य प्रारंभ कर दिया। इससे महावीरवाणी के महत्त्वपूर्ण अंश सुरक्षित हुए और उनके ज्ञान का प्रवाह बना रहा। किन्तु इस कारण अनेक मतभेदों ने भी जन्म लिया, और पश्चिमी भारत के आचार्यों ने आर्य स्कंदिल की अध्यक्षता में उनके द्वारा सम्मत आगमों की एक वांचना भी मथुरा में की।

हमारा अनुमान है कि आगमों को पुस्तकारूढ़ करने तथा अगमानुसारी पुस्तक साहित्यप्रणयन करने में उत्तर भारत के जिन आचार्यों का ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रायः वे सब उत्तर प्रदेश तथा उसके मथुरा आदि प्रमुख केन्द्रों से सम्बद्ध रहे थे। इम प्रकार यद्यपि वर्तमान प्राचीनकालीन जैन साहित्य का बहुभाग दक्षिणी एवं पश्चिमी भारत में रचा गया, उसके प्रणयन की प्रेरणा तथा प्रारम्भ उत्तर प्रदेश में ही हुआ था। इसके साथ ही यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि अखिल भारतीय साहित्य एवं कला का प्रारम्भ और विकास, शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से, ब्राह्मण, जैन और बौद्ध, तीनों ही धर्मों के अनुयायियों ने ईसापूर्व प्रथम सहस्राब्द के उत्तरार्ध में प्रायः साथ ही साथ, समान उत्साह एवं मनोयोग के साथ किया था।

अत्यन्त विपुल, विभिन्न भाषयिक एवं विविध विषयक जैन साहित्य के निर्माण में, प्राचीन काल में कई कारणों से उत्तर प्रदेश का योग अत्यल्प रहा, तथापि प्रारम्भ से वर्तमान पर्यन्त इस प्रदेश का जो योगदान रहा है, उसका संक्षिप्त विवरण आगे दिया जा रहा है। इस सूची में उन साहित्यकारों का समावेश किया गया है जो उत्तर प्रदेश में जन्में, अल्पाधिक समय रहे या विचरे अथवा अन्य किसी रूप में उससे सम्बद्ध रहे। सूची में अज्ञानवश कतिपय भूलें भी हो सकती हैं, और यह दावा भी नहीं है कि वह पूर्ण है। प्रत्येक साहित्यकार के नाम के साथ कोष्ठक में, यदि ज्ञात हुआ, तो स्थान का निर्देश, तदनन्तर ईस्वी सन् में निश्चित या अनुमानित समय, ज्ञात रचनाओं का नाम, जिनके साथ कोष्ठक में भाषा का संकेत (प्रा०=प्राकृत, अप=अपभ्रंश, सं०=संस्कृत, हि०=हिन्दी) कर दिया गया है। जहाँ भाषा संकेत नहीं उसे हिन्दीं समझा जाय।

ग्रन्थकार और उनके ग्रन्थ

लोहाचार्य	ई० पूर्व १ली शती	—आराहणा (प्रा०)
अप्पभूति	"	
गुणधराचार्य	१ली शती ई०	—पेज्जदोसपाहुड (प्रा०) [पुस्तकारूढ़ आगरम]
स्वामिकुमार	"	—बारस-आणुपेक्खा (प्रा०)
विमलार्य	"	—पउमचरिउ (प्रा०)
शिवार्य	"	—भगवती आराधना (प्रा०)

आर्यमंखु	,,	—कसाय पाहुड (प्रा०)
नागहस्ति	२री शती ई०	,, ,,
यतिवृषभ	,,	—कसायपाहुड के चूर्णिसूत्र (प्रा०), तिलोयपण्णति (प्रा०), करणसूत्र (प्रा०)
पात्रकेसरि स्वामि (अहिच्छत्रा)	ल. ६०० ई०	—त्रिलक्षणकदर्थन (सं०), पात्रकेसरि स्तोत्र (सं०)
मानतुंगाचार्य (कान्यकुब्ज)	,,	—भक्तामर स्तोत्र (सं०)
जोइन्दु (योगीन्दुदेव)	ल० ७०० ई०	—परमात्म प्रकाश (अप०), योगसार (अप०)
धनञ्जय	,,	—राघव-पांडवीय-द्वियधानकाव्य (सं०), अनेकार्थ नाममाला (सं०)
स्वयंभू (कान्यकुब्ज-मूलतः)	ल० ८०० ई०	—रामायण (अप०), रिट्ठनेमिचरिउ (अप०), नागकुमार चरिउ (अप०), स्वयंभू छन्द (अप०)
वाक्पति (कान्यकुब्ज)	,,	—गौडबहो (अप०)
हरिचन्द्र	ल० ९०० ई०	—धर्मशर्माभ्युदय (सं०), जीवन्धर चम्पु (सं०)
गोविन्द कवि	,,	—कथारत्न समुद्र (सं०)
अमितगति प्रथम (माथुरसंघी)	,,	—योगसार प्राभृत (प्रा०)
जयराम	,,	—धर्मपरीक्षा (प्रा०)
सोमदेव	ल० ९६० ई०	—नीतिवाक्यामृत (सं०), महेन्द्र-मातलि-संजल्प (सं०), कन्नौज में रचे-जाने की संभावना, अन्य-ग्रन्थ दणिक्ष में रचे।
धनपाल (संकिसा)	ल० १००० ई०	—पाइलच्छीनाममाला (प्रा०), तिलकमंजरी (सं०), आदि
रामसिंह मुनि	,,	—दोहापाहुड़ (अप०)
वाग्भटकवि (अहिच्छत्रा)	,,	—नेमिनिर्वाणकाव्य (सं०)
कनकामर मुनि	१०६० ई०	—करकंडुचरिउ (अप०), यदुचरिउ (अप०)
रामसेन	१०७७ ई०	—तत्वानुशासन (सं०)
श्रीधर कवि	११३२–७३ ई०	—पार्श्वनाथ चरित्र, वर्धमान चरित्र, चन्द्रप्रभचरित्र, शान्तिनाथ चरित्र, सुकुमाल चरित्र, भविष्यदत्त-चरित्र-सब अप०
धनपाल पल्लीवाल	१२०४ ई०	—तिलकमंजरी कथासार (सं०)
गोकर्ण (चन्द्रवाड)	ल० १२५० ई०	—सूपकार सार (सं०)
प्रभाचन्द्र भट्टारक	ल० १२९०–१३६० ई०	—भगवती आराधना टीका (सं०), उपासकाध्ययन (सं०)
जिनप्रभसुरि	ल० १२९५–१३३३ ई०	—विविधतीर्थकल्प (सं० प्रा०) आदि अनेक ग्रंथ
गंधर्वकवि–पंडित ठक्कुर	१३०८ ई०	—यशोधर चरित्र (अप०), उपदेशरत्नमाला (अप०)
कवि थेल्ह	१३१४ ई०	—चउबीसीगीत (हि०)
ठक्कर फेरु	१३१५ ई०	—वास्तुसार, ज्योतिषसार गणितसार, द्रव्य परीक्षा, रत्न परीक्षा, आदि (सं०) (मुख्यतः दिल्ली में रहे)

साधारुकवि (झांसी जि०)	१३५४ ई०	—प्रद्युम्नचरित्र (हि०)
पद्मनंदि भट्टारक (चन्द्रवाड)	ल० १३६०–९५ ई०	—श्रावकाचार सारोद्धार (सं०), अन्य अनेक रचनाएँ
नेमिचन्दकवि (माथुरसंघी)	ल० १३७५ ई०	—रविव्रतकथा (अप०)
कमलकीर्ति (चन्द्रवाड)	१३८६ ई०	—अठारहनाते की कथा (हि०)
जयमित्र हल्ल	१३८८–१४२५ ई०	—वर्धमान काव्य, श्रेणिक चरित्र, मल्लिनाथ काव्य—सब अप०
धनपाल पुरवाड (चन्द्रवाड)	१३९७ ई०	—बाहुबलि चरित्र (अप०)
हरिचन्द कवि	ल० १४०० ई०	—पुण्यास्रवकथाकोश, वर्धमानकाव्य, श्रेणिक चरित्र—सब अप०
लक्ष्मण कवि	"	—नेमिनाथ चरित्र (अप०)
असवाल कवि	१४२२ ई०	—पार्श्वनाथ चरित्र (अप०)
रईधु महाकवि	ल० १४२३–५८ ई०	—मूलतः ग्वालियर के थे, पचासों ग्रन्थों के रचयिता, जिनमें से कई उ० प्र० में चन्द्रवाड आदि में रचे।
विनयचन्द्रमुनि	ल० १४२५ ई०	—इष्टोपदेश टीका (सं०)
यशःकीर्ति भट्टारक	ल० १४३०–५० ई०	—मूलतः ग्वालियर के, अनेक रचनाएँ, उ० प्र० में भी रहे और रचनाएँ कीं।
प्रभाचन्द्र (काष्ठासंघी)	१४३२ ई०	—पंचकल्याण पूजा (सं०), तत्त्वार्थ रत्न प्रभाकर (सं०)
साधारण ब्रह्म (काष्ठासंघी)	१४३५–५० ई०	—पुरानी हिन्दी में रचित लगभग दस व्रतकथाएँ
विजयासिह बुध	ल० १४४५ ई०	—अजितनाथ पुराण (अप०)
पदमु कवि	ल० १४५० ई०	—ध्यानामृत रास (हि०)
बुध रल्हण	"	—प्रद्युम्नचरित्र (अप०)
विमलकीर्ति	"	—सुखसम्पत्तिविधान कथा (अप०)
तेजपाल बुध	"	—वरांगचरित्र, संभवजिन चरित्र, संगीतसार–सब अप०
गुणभद्र भट्टारक (काष्ठासंघी)	ल० १४६३–१५२३ ई०	—अप० में अनेक व्रतकथाएँ रची।
पुण्यदत्त	"	—सुकुमाल चरित्र (अप०)
श्रीधर कवि	१४७३ ई०	—भविष्यदत्त पंचमी कथा (अप०)
कमलकीर्ति	१४८८ ई०	—तत्त्वसार टीका (सं०)
विद्याभूषण	ल० १५०० ई०	—भविष्यदत्तरास, वसन्तनेमि फाग
गंगादास पंडित	"	—महापुराण रास
विनयचन्द्र भट्टारक	"	—अनेक व्रतकथाएँ, रासा काव्य और पूजाएँ
प्रतापकीर्ति	१५१४ ई०	—श्रावकाचार रास
कवि चतुरु	"	—नेमीश्वर गीत
कवि ठकुरसी	१५२३–२८ ई०	—कृष्णचरित्र, पंचेन्द्रिय बेल, नेमिसुर की बेल, मेघमाला व्रत कथा
गौरवदास	१५२४ ई०	—यशोधर चरित्र
कर्मचन्द	ल०१५२५ ई०	—मृगावतीं चौपपाई

ब्रह्म गोपाल	,,	—पंचकल्याण कोद्यापनविधि (सं०)
अभयनंदि	,,	—षोडश भावना आरती
जिनदास पंडित	१५२७ ई०	—वृहत्‌सिद्धचक्र पूजा (प्र०) आदि कई पूजापाठ
बुध वीरु	१५२९ ई०	—धर्मचक्रपूजा, नवग्रह पूजा, सिद्धचक्र पूजा, ऋषिमंडल पूजा—सब सं०
मुनि कल्याणकीर्ति	ल० १५३० ई०	—राजुल का बारहमासा
पं० अचलकीर्ति (फिरोजाबाद)	,,	—अठारहनाते की कथा, विषापहार भाषा
महाचन्द कवि	,,	—शान्तिनाथ चरित्र (अप०)
बूचिराज (बल्हकवि)	१५३२ ई०	—मदन जुद्ध (अप०)
गरीबदास	१५४३ ई०	—यशोधर चरित्र
दामोदर कवि	१५४६ ई०	—मदनकुमार रास
कुमुदचन्द्र	१५५० ई०	—भरत बाहुवलि छंद, ऋषभविवाहलो, महावीर स्वामी का रास, त्रेपन क्रिया विनती—सब हि०
पांडे राजमल्ल (आगरा)	१५४०–९० ई०	—जम्बूस्वामीचरित्र (सं०), पंचाध्यायी (सं०), लाटी संहिता (सं०), इत्यादि
फूलचंद पंडित	१५५५ ई०	—रत्नकरंडश्रावकाचार—पद्यानुवाद
सूरदास	१५५९ ई०	—हनुमान कथा
ब्रह्म रायमल्ल	१५५९–७६ ई०	—हनुमंत कथा, भविष्यदत्त कथा, व्रतकथाएँ, नेमीश्वर रास, प्रद्युम्नरास, श्रीपाल रास—सब हि०
कमलकीर्ति	ल० १५७० ई०	—आदिनाथ स्तुति
ज्ञानभूषण	१५८०–८५ ई०	—कई पूजा पाठ (सं०)
पांडे जिनदास (आगरा)	१५८५ ई०	—जम्बूस्वामी चरित्र, ज्ञानसूर्योदय, जोगीरासा आदि कई रचनाएँ
पं० बनारसीदास महाकवि	१५८६-१६४४ ई०	—अर्धकथानक, नाटक समयसार, बनारसी नाममाला कोश, बनारसी विलास (६० रचनाओं का संग्रह), इत्यादि अनेक कृतियाँ—सब हि०
परिमल्ल कवि	१५९४ ई०	—श्रीपाल चरित्र, श्रेयांस रास
जोगीदास (सलेमगढ़)	ल० १६०० ई०	—अष्टमीव्रत कथा रास
रूपचन्द पंडित जोगी	ल० १६००–५० ई०	—परमार्थी दोहा शतक, गीत परमार्थी, खटोलना गीत, परमार्थ जकड़ी, नेमिनाथ रासा, अध्यात्मदोहा, पंच मंगल पाठ, आदि—सब हि०
श्रीभूषण (हथकंत)	१६०२–१० ई०	—लक्ष्मी-सरस्वती संवाद, ज्येष्ठ जिनवर व्रतोद्यपन, अनन्तव्रत पूजा
नन्दकवि (आगरा)	१६०६–१३ ई०	—सुदर्शनचरित्र, यशोधर चरित्र
विमल कीर्ति	१६०९ ई०	—यशोधर रास
बनवारी लाल (खतौली)	,,	—भविष्यदत्त चरित्र

ज्ञानसागर ब्रह्म	ल० १६१०–३५ ई०	—अनेक सं० पूजापाठ, हि० व्रतकथाएँ, तीर्थावली एवं फुटकर पद आदि
ज्ञानभूषण भ.	"	—तत्त्वज्ञानतरंगिणी, परमार्थोपदेश संग्रह, नेमिनिर्वाण काव्य पंजिका—हि०
जगत्भूषभ भट्टारक	ल० १६१०–४० ई०	—कई सं० पूजापाठ व सम्मेदाष्टक काव्य
हीरानन्द श्रावक	१६११ ई०	—अध्यात्मबावनी
ब्रह्मगुलाल (चन्द्रवाड)	१६१४ ई०	—कृपणजगावन चरित्र, समोसरण चौपई, त्रेपन क्रिया
भगौतीदास पंडित (संकिसा)	ल० १६२०–५५ ई०	—अनेकार्थनाममाला, सीतासतु, मृगांकलेखाचरित्र, कई रास, ढमाल, चूनड़ी, व्रतकथाएँ, गीत, रूपक, विनती आदि लगभग २५ हि० रचनाएँ
चन्द्रमणि अग्रवाल	ल० १६२५ ई०	—सीताचरित्र
कुँअरपाल (आगरा)	१६२५–५२ ई०	—सूक्तमुक्तावली, समकितबत्तीसी
रावत सालिवाहन (हथकंत)	१६३८ ई०	—हरिवंश पुराण
जगजीवन (आगरा)	१६४४ ई०	—नाटक समयसार की टीका, बनारसी विलास का संकलन
यति लक्ष्मीचन्द्र (फतहपुर)	ल० १६४५ ई०	—ज्ञानार्णव-पद्यानुवाद
धर्मदास (आगरा)	"	—इष्टोपदेश—भाषानुवाद
पं० मनोहरदास (आगरा)	१६४८ ई०	—धर्मपरीक्षा –हि० पद्यानुवाद
हेमराज पांडे (आगरा)	१६५२–७० ई०	—प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय, गोम्मटसार, नयचक्र आदि आगमिक ग्रंथों की भाषा वचनिकाएँ, भक्तामर भाषा आदि
पं० हीरानन्द (आगरा)	१६५४ ई०	—पंचास्तिकायसार–हि० पद्यानुवाद
कविचन्द्र (आगरा)	१६५६ ई०	—सीता चरित्र काव्य
अचलकीर्ति	१६६०–६६ ई०	—धर्मरासो, अठारह नाते की कथा आदि
कासिदास (आगरा)	१६६५ ई०	—सम्यक्त्व कौमुदी, पद्मनंदि पच्चीसी, आगम विलास
विश्व भूषण भ० (हथकंत)	ल० १६६५–८५ ई०	—करकडुंकथा (सं०), जिन दत्त चरित्र, दशलक्षण उद्यापन कथा, अष्टान्हिका कथा, भक्तामर कथा आदि
जगतराम राजा	१६६५ ई०	—पद्मनंदिपंचविंशतिका, सम्यक्त्व कौमुदी
विंद्रावन (हथकंत)	१६६९ ई०	—शनिश्चर कथा
भैया भगवतीदास (आगरा)	१६७०–१७०० ई०	—लगभग ६७ श्रेष्ठ पद्य रचनाएँ जो ब्रह्म विलास में संग्रहीत हैं
विनोदी लाल (शहजादपुर)	"	—श्रीपाल विनोद, सम्यक्त्व कौमुदी, सम्यक्त्व लीला विलास, राजुल पचीसी, कृष्ण पचीसी, भक्तामर चरित्र कथा, अठारहनाते की कथा आदि अनेक रचनाएँ

जुगतराइ (आगरा)	१६७३ ई०	—छन्दरत्नावली
ब्र० जिनदास (हथकंत)	१६७५ ई०	—हरिवंश पुराण
ब्र० विनय सागर (")	"	—रामायण रास
पं० शिरोमणिदास	"	—धर्मसार, सिद्धान्त शिरोमणि, उर्वशी नाममाला
द्यानतराय (आगरा)	१६७६–१७२४ ई०	—द्यानत विलास अपरनाम धर्म विलास में संकलित सैकड़ों रचनाएँ
बुलाकीचन्द जैसवाल	१६८० ई०	—वचनकोश
हेमराज (गहेली–इटावा)	१६८५–१७२० ई०	—अनेक व्रतकथाएँ
बुलाकीदास पंडित (आगरा)	१६९०–९७ ई०	—भारत भाषा (पांडव पुराण), प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
मंगल कवि	१७०० ई०	—कर्मविपाक
सुरेन्द्रभूषण	१७०३–४३ ई०	—ऋषिपंचमी और श्रुतपंचमी व्रतकथाएं
भूधरमल्ल (आगरा)	१७१३–३२ ई०	—पार्श्व पुराण, भूधर शतक, चरचा समाधान
भावसिंह (आगरा)	१७२५–४८ ई०	—पुण्यास्रवकथा कोश, जीवचरित्र
ललितकीर्ति	१७२६ ई०	—अनेक व्रतकथाएं, सिद्धचक्र पाठ, अष्टक धमारि
जगतराय पंडित (आगरा)	१७२७ ई०	—आगम विलास, ज्ञानानंद श्रावकाचार आदि
जीवराज (आगरा)	१७३५ ई०	—पुण्यास्रवकथाकोश
हरिकृष्ण पांडे (अटेर)	१७४२ ई०	—अनेक व्रत कथाएँ
भारामल्ल (फर्रुखाबाद)	१७५६ ई०	—चारुदत्त चरित्र, सप्तव्यसन चरित्र, दर्शन कथा, शील कथा, रात्रि भोजन कथा
केशोदास	१७६० ई०	—हिंडोलना
नथमल बिलाला	१७६५–७८ ई०	—सिद्धान्त सार दीपक, जिन गुण विलास, नागकुमार चरित्र, जीवंधर चरित्र, जम्बूस्वामि चरित्र, महीपाल चरित्र, भक्तामर कथा आदि
नवलशाह (खटोला ग्राम)	१७६८ ई०	—वर्धमान पुराण महाकाव्य
लालचन्द्र पांडे (अटेर)	१७७०–७७ ई०	—सिद्धांतसार दीपक, वरांगचरित्र
जिनेन्द्रभूषण (अटेर)	१७७०–१८२५ ई०	—जिनेन्द्रपुराण (महापुराण)
संतलाल	१७७५ ई०	—सिद्ध चक्र विधान आदि कई पूजापाठ
सुन्दरलाल लमेचु (अटेर)	"	—सिंदूर प्रकरण की वचनिका
भूरजी अग्रवाल	"	—यशोधर चरित्र
विलासराय (इटावा)	१७८० ई०	—पद्मनंदि पचीसी वचनिका, नयचक्र वचनिका
गुलाबराइ (इटावा)	१७८०–८५ ई०	—सम्मेद शिखर महात्म्य, शिखर विलास
आसाराम	१७८५ ई०	—अहिच्छत पारसनाथ स्तोत्र और विधान
झुनकलाल (शिकोहाबाद)	१७८६–८७ ई०	—नेमिनाथ जी के कवित्त, पारसनाथ जी के कवित्त
देवदत्त दीक्षित (हथकंत-अटेर)	१७८८ ई०	—स्वर्णाचल महात्म्य (सं०), सम्मेदाचल महात्म्य (सं०), तथा सात तीर्थंकरों के हिन्दी पद्य में रचित पुराण चरित्र (अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, चन्द्रप्रभ, वर्धमान)

इन्द्रजीत ” ” —चार तीर्थंकरों के भाषा पुराण (कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत)

मनसुखसागर ब्र० १७८९ ई० —ऋषभ पुराण, यशोधर चरित्र, सम्मेदशिखर महात्म्य, नवगृह विधान, रक्षाबन्धन पूजा, सोनागिर पूजा

सुखसागर पंडित १७९० ई० —सुगंध दशमी कथा

जीवराज ” —मौन एकादशी कथा

दिलसुखराय १७९४ ई० —सम्मेद शिखर पूजा

चेतनकवि १७९६ ई० —अध्यात्म बारह खड़ी, आत्मबोध नामावली

सम्पतराम १७९७ ई० —ज्ञानसूर्योदय नाटक–छन्दोबद्ध

गोपीलाल परवार (मऊरानीपुर) १८०० ई० —नागकुमार चरित्र

प्यारेलाल ” —सद्भाषितावली––छन्दोबद्ध

अतिसुखराय ” —श्रीपाल चरित्र

मनरंगलाल (कन्नौज) १८००–३७ ई० —चौबीसी पाठ, नेमिचन्द्रिका, सप्तव्यसनचरित्र, सम्मेदाचल महात्म्य, सप्तर्षि पूजा, चौरासी जाति जयमाल

विजयनाथ माथुर १८०४ ई० —वर्धमान पुराण

कमलनयन बुढ़ेलवाल (मैनपुरी) १८०३–२० ई० —जिनदत्त चरित्र, वरांगचरित, सम्मेद शिखर यात्रा वर्णन, अढ़ाईद्वीप पाठ, सहस्र नाम पाठ, पंच कल्याणक पाठ, समवसरण पूजा

वृन्दावन दास (वाराणसी, जन्म १७९१) १८१०–४८ई० —प्रवचन सार परमागम, छन्द शतक, अर्हत्पासाकेवलि, सतसैया, धर्मबुद्धि मंत्री कथा, चतुर्विंशति-जिन पूजा-पाठ, तीस चौबीसी पाठ, वृन्दावन-विलास (फुटकर रचनाओं का संग्रह)

लालचन्द (काशि) १८१३ ई० —अकृत्रिम चैत्यालय पूजा

भूधर मिश्र (आगरा) १८१४ ई० —पुरुषार्थ सिद्धयुपाय वचनिका, चर्चा समाधान

रत्नसागर ब्र० (हथकंत) १८१८ ई० —पंच परमेष्टि पूजा

महेन्द्रभूषण भ० (”) ” —जय कुमार चरित

शिवप्रसाद, राजा, सितारेहिन्द (वाराणसी) १८२३–९५ ई० —इतिहास तिमिर नाशक, राजाभोज का सपना आदि

हीरालाल (बड़ौत) १८२५ ई० —चन्द्रप्रभ पुराण

बासीलाल १८२७ ई० —वैराग्य शतक–भाषा पद्यानुवाद

मनराखनलाल (जामसा) ” —सुधारससार–छन्दोबद्ध

सदानन्द (भोगाँव) १८३० ई० —कंपिलाजी की रथ यात्रा–छन्दोबद्ध

हरकृष्णलाल (हसागढ़) ” —पंच कल्याणक पूजा

दौलतराम पं० (सासनी-अलीगढ़) १८३४ ई० —छहढाला, ग्यारह प्रतिमा स्वरूप, दंडक की चौपाई, परमार्थ जकड़ी, दौलत विलास या दौलत कवितावली (लगभग १२५ पदों आदि का संग्रह)

नन्दराम (आगरा)	१८४७ ई०	—योगसार, यशोधर चरित्र, त्रैलोक्यसार पूजा
हरगुलाल (खतौली)	१८४९ ई०	—सज्जनचित्तवल्लभ–वचनिका
अजितदास (वाराणसी)	१८५० ई०	—जैन रामायण–छन्दोबद्ध (अपूर्ण)
प्रागदास (मथुरा)	"	—जम्बूस्वामी की पूजा
गुलजारीलाल जैसवाल	"	—आत्म विलास
तुलसीराम	,	—आदि पुराण, जैन विवाह विधि
बनवारी लाल	"	—प्रश्न समाधान
छत्रपति (फीरोजाबाद)	१८५०–७७ ई०	—मदन मोहन पंचशती, उद्यम प्रकाश, द्वादशानुप्रक्षा, ब्रह्म गुलाल मुनि चरित्र, बीस विहरमान तीर्थंकर पाठ
नयनसुखदास यति (कांधला)	१८५०–१९०० ई०	—अद्भुत राम चरित, गुणधर चरित्र, अठारहनाते की कथा, मुनिवंश दीपिका, बारहमासा संग्रह, नयनानंद-विलास (अनेक फुटकर रचनाओं का संग्रह)
भैरूँलाल (वाराणसी)	१८५३ ई०	—पंच कल्याणक पूजा
ज्ञानानन्द (वाराणसी)	१८५७ ई०	—समय तरंग, ज्ञान विलास
शिखरचन्द (वाराणसी)	१८७५–८५ ई०	—विद्यमान विंशति जिन पूजा, जिनसहस्त्रनाम पूजा
छोटेलाल जैसवाल (अलीगढ़)	१८७५–९२ ई०	—देवपूजा (सं०), पंच कल्याणक पाठ, चौबीसी पाठ, दशाध्यायिसूत्र भाषा, पद, रेखता, लावनी आदि
मिस्टर जैन वैद्य (जवाहिरलाल)	१८८०–१९०९ ई०	—कमल मोहिनी भँवरसिंह नाटक, व्याख्यान प्रबोधक, ज्ञानवर्ण माला
बलदेवदास पाटनी (आगरा)	१८९३ ई०	—आत्मासार प्रबोध शतक, ज्ञान शतक सवैया, ज्ञान वर्णमाला
नाथूराम लमेचु	१८९५–१९०२ ई०	—ज्ञानानंद रत्नाकर, स्वानुभवदर्पण सटीक, तत्त्वार्थ सूत्र का आशय, नेमीश्वर विवाह, जैन व्रत कथा रत्न, रक्षाबन्धन कथा, आदि

उत्तर प्रदेश के वर्तमान शताब्दी (२०वीं शती ई०) के उल्लेखनीय दिवंगत जैन साहियकार हैं—

पं० गोपालदास बरैया आगरा, पं० रिषभदास चिलकाना, ब्र० भगवान सागर महमूदाबाद, पं० उमराव सिंह वाराणसी, बा० ऋषभदास वकील मेरठ, बा० रतनचन्द वकील इलाहाबाद, बा० सूरजभान वकील नुकुड़-देवबंद, ला० जैनीलाल सहारनपुर, पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर फ़ीरोजाबाद, पं० श्रीलाल एवं प्यारेलाल अलीगढ़, पं० गौरीलाल, पं० झुम्मनलाल, बा० नेमीदास वकील सहारनपुर, जोती प्रसाद 'प्रेमी' देवबंद, बा० मोतीलाल आगरा, बा० दयाचन्द गोयलीय, मा० बिहारीलाल 'चैतन्य' बुलन्दशहर, भोलानाथ 'दरख़शाँ' बुलन्दशहर, सेठ पदमराज रानीवाले खुर्जा, बा० मानिकचन्द, ब्र० सीतलप्रसाद लखनऊ, पं० गणेश प्रसाद वर्णी, महात्मा भगवानदीन, स्वामी कर्मानन्द, पं० जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' सरसावा, बैरिस्टर जगमंदरलाल जैनी सहारनपुर, बैरिस्टर चम्पत राय जैन हरदोई, बा० अजित प्रसाद वकील लखनऊ, पं० चन्द्र सेन जैन वैद्य इटावा, पं० बनारसी दास उर्फ 'दास', मंगतराय 'साधु' बुलन्दशहर, डा० वेणी प्रसाद आगरा, डा० निहालकरण सेठी आगरा, पं० निद्धामल

सहारनपुर, पं० तुलसीराम वा० भू० बड़ौत, बा० जगरूपसहाय वकील एटा, मा० मुख्त्यारसिंह (मुक्त्यानंद) मुज़फ्फरनगर, चावली (जिला आगरा) के पं० नृसिंहदास, पं० लालाराम, पं० माणिक्यचन्द्र न्या०आ०, पं० खूबचन्द सि०आ० और प्रो० विमलदास कौन्देय, आचार्य सुधर्मसागर, आचार्य महावीर कीर्ति, बा० कामता प्रसाद जैन अलीगंज (एटा), महेन्द्रजी आगरा, डा० पुष्यमित्र आगरा, डा० बूलचन्द जैन, भगवत् स्वरूप 'भगवत' ऐतमादपुर (आगरा), फूलचंद 'पुष्पेंदु' लखनऊ, डा० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य वाराणसी, पं० मक्खनलाल प्रचारक, हरिप्रसाद हरि, रामस्वरूप भारतीय, आदि।

उत्तर प्रदेश के वर्तमान उल्लेखनीय जैन साहित्यकार हैं—

पं० मक्खनलाल शास्त्री 'तिलक' (चावली), पं० फूलचन्द शास्त्री वाराणसी, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, डा० ज्योति प्रसाद जैन लखनऊ, पं० राजेन्द्र कुमार मथुरा, प्रो० घासीराम जैन मेरठ, कल्याण कुमार 'शशि' रामपुर, पं० परमेष्ठीदास ललितपुर, सहारनपुर के अयोध्या प्रसाद गोयलीय, दिगम्बरदास जैन एडवोकेट और पं० रतनचन्द्र जैन मुख्तार, बा० रतनलाल जैन वकील बिजनौर, आगरा के सेठ अचलसिंह, श्री धन्यकुमार जैन, उपाध्याय अमर मुनि, श्री जवाहर लाल लोढा, डा० बी०एम० टोंक, डा० राजकुमार जैन, श्री प्रताप चन्द जैन, श्रीचन्द सुराणा 'सरस', रामसिंह जैन, प्रो० कपूर चन्द जैन, डा० जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल और पं० बलभद्र जैन, आर्यिकारत्न ज्ञानमती, क्षुल्लक मनोहर लाल (सहजानंद) वर्णी, डा० जगदीश चन्द्र जैन, श्री अक्षय कुमार जैन, प्रो० अनन्त प्रसाद लोकपाल गोरखपुर, प्रो० ओ० पी० जैन रुड़की, वाराणसी के डा० दरबारी लाल कोठिया, डा० मोहनलाल मेहता, श्री जमनालाल, शरद कुमार 'साधक', प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला, पं० अमृतलाल शास्त्री, प्रो० उदयचन्द्र जैन, डा० गोकुलचन्द्र जैन, डा० कोमल प्रसाद जैन, डा० सुदर्शन लाल जैन, श्री फूलचन्द प्रेमी और श्री गणेश प्रसाद जैन, डा० विमल प्रकाश जैन, पं० बाबू लाल जैन रानीखेत, डा० चमनलाल जैन एटा, डा० श्याम सिंह जैन मिर्जापुर, श्री वीरेन्द्र प्रसाद जैन अलीगंज (एटा), बड़ौत के डा० प्रेम सागर जैन, पं० सुखनंदन लाल जैन और पं० बाबूलाल जमादार, खतौली के पं० जयन्ती प्रसाद जैन शास्त्री, फीरोजाबाद के डा० लाल बहादुर शास्त्री, पं० श्याम सुन्दर लाल शास्त्री, पं कुंजीलाल शास्त्री और प्रो० नरेन्द्र प्रकाश जैन, अलीगढ़ के प्रो० जगवीर किशोर जैन एवं डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, पं सुमेर चंद जैन बहराइच, कवि सुरेन्द्रसागर प्रचंडिया एटा, पं० सरमनलाल जैन सरधना, डा० प्रेमचन्द नजीबाबाद, मेरठ के श्री राजेन्द्र कुमार जैन और वसन्तलाल जैन, ललितपुर के हुकमचंद तन्मय बुखारिया, सकरार के सरमनलाल सरस एवं हजारी लाल 'काका', और लखनऊ के श्री ज्ञानचन्द्र जैन, श्री कैलाश भूषण जिन्दल, श्रीमती शशि जैन, डा० पूर्णचन्द जैन, डा० प्रद्युम्नकुमार जैन, डा० शशिकान्त, श्री रमाकान्त जैन, श्री नन्द किशोर जैन एवं डा० उमेदमल मुनोत, इत्यादि।

इस प्रकार वर्तमान शती में अद्यावधि लगभग १५० जैन विद्वान, साहित्यकार, लेखक, कवि आदि उत्तर प्रदेश में हुए हैं, जिनमें से लगभग ७०-८० विद्यमान हैं और अपने-अपने क्षेत्रों में कार्यरत हैं। उपरोक्त सूचियों में अनभिज्ञता के कारण कई एक उल्लेखनीय नाम छूट गये भी हो सकते हैं—यदि ऐसा हुआ है तो उसके लिए संपादक क्षमा प्रार्थी है।

उत्तर प्रदेश के जैन पत्र और पत्रकार

—:००:—

गत लगभग डेढ़ शताब्दी के पुनरुत्थान युग में सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का एक बहुत बड़ा साधन पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं प्रचार रहा है। जैन समाज एक अति अल्पसंख्यक समाज होते हुए भी एक अधिकांशतः मध्य वित्त, शिक्षित एवं प्रबुद्ध समाज रही है, अतः इस आधुनिक प्रचार साधन का जैनों ने भी पर्याप्त प्रयोग एवं उपयोग किया है और स्वयं अपनी अनेक उत्तम पत्र-पत्रिकाएँ निकालने तथा सफलता पूर्वक उनके संचालन के अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र की पत्रकारिता को भी कई श्रेष्ठ पत्रकार प्रदान किये हैं।

पत्रकारिता और छापेखाने (मुद्रणकला) का प्रायः अविनाभावी सम्बन्ध है। सर्वप्रथम ज्ञात मुद्रित पुस्तक ८६८ ई० में चीन में छपी थी, १५वीं शती के मध्य के लगभग युरोप (जर्मनी) में मुद्रण का प्रारम्भ हुआ और भारतवर्ष का सर्वप्रथम छापाखाना गोआ में १५५६ ई० में स्थापित हुआ था, जिसमें उसी वर्ष लातीनी भाषा में ईसाई धर्म की एक पुस्तक छपी थी। भारतीय भाषाओं में १६१६ ई० में रायतूर के छापेखाने में छपी मराठी भाषा की क्राइस्टपुराण नामक पुस्तक थी, और हिन्दी की सर्वप्रथम छपी पुस्तक बम्बई के कुरियर प्रेस में १८२३ ई० में मुद्रित विदुरनीति थी। हिन्दी भाषा और नागरी लिपि में मुद्रित सर्वप्रथम जैन पुस्तक पं. बनारसीदास कृत साधुवन्दना १८५० ई० में आगरा में छपी थी।

सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में भारतवर्ष का सर्वप्रथम समाचारपत्र १७८० ई० में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा का बंगाल-गजट था, उर्दू का सर्वप्रथम अख़बार जाम-इ-जहांनुमा १८२२ में, और हिन्दी का उदन्त-मार्त्तण्ड १८२६ में कानपुर से प्रकाशित हुआ था। जैनों का सर्वप्रथम ज्ञात समाचारपत्र गुजराती मासिक जैन-दिवाकर १८७५ ई० में अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ, और हिन्दी का सर्वप्रथम जैन पत्र साप्ताहिक 'जैन' १८८४ ई० में फर्रुखनगर से प्रकाशित हुआ था। उत्तर प्रदेश का सर्वप्रथम जैन पत्र सम्भवतया दिगम्बर जैन महासभा द्वारा मथुरा से १८९४ ई० में प्रकाशित साप्ताहिक हिन्दी 'जैनगजट' था, जो अब तक बराबर चालू है, यद्यपि अब अनेक वर्षों से वह अजमेर से प्रकाशित होता है। उत्तर प्रदेश से ही अंग्रेजी की सर्वप्रथम पत्रिका 'जैन गजट' १९०४ ई० में निकलना प्रारम्भ हुई और लगभग ५० वर्षों तक चलती रही।

इस प्रकार लगभग एक सौ वर्ष पूर्व जैन पत्र-पत्रिकाओं का निकलना जो प्रारम्भ हुआ तो उनकी संख्या एवं विविधता में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। श्री अगरचन्द नाहटा ने १९३८ ई० (जैनसिद्धान्त भास्कर, भा. ५, कि. १ पृ. ४२-४५) में जो सर्वेक्षण दिया था उसके अनुसार तब तक लगभग ११० जैन-पत्र-पत्रिकाएँ निकलकर भूतकालीन बन चुकी थीं और ६६ उस समय वर्तमान थीं। सन् १९५८ में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'प्रकाशित जैन साहित्य' की प्रस्तावना (पृ.६३, ६५-६७) में हमने सूचित किया था कि तब तक लगभग २५० जैन सामायिक पत्र-पत्रिकाएँ निकल चुकी थीं जिनमें से लगभग १५० तो अस्तगत हो चुकी थीं और लगभग १०० चालू थीं। वर्तमान में ऐसा अनुमान है कि गत सौ वर्षों के बीच हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड, तामिल, बंगला, उर्दू और अंग्रेजी

भाषाओं की, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक, वार्षिक आदि लगभग तीन सौ जैन पत्र-पत्रिकाएँ भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों से प्रकाशित हुई हैं। इनमें से लगभग १३० वर्तमान हैं, शेष अल्पाधिक काल तक चलकर बन्द हो चुकी हैं। स्वयं उत्तर प्रदेश में वर्तमान में लगभग २५ जैन पत्र-पत्रिकाएँ निकल रहीं हैं, और प्रदेश की अस्तगत अथवा कालान्तर में अन्यत्र स्थानांतरित पत्र-पत्रिकाओं में कई विशेष उल्लेखनीय रही हैं, यथा जैनगजट (अंग्रेजी मासिक लखनऊ), जैनगजट (हिन्दी साप्ताहिक), जैन होस्टल मेगजीन (अंग्रेजी त्रैमासिक, इलाहाबाद), अनेकांत (हिन्दी मासिक, वीर सेवामन्दिर सरसावा), जैन प्रदीप (उर्दू पाक्षिक, देवबन्द), सनातन जैन (हि. मा., बुलन्द-शहर), ज्ञानोदय (हि. मा., वाराणसी), ज्ञानपीठ-पत्रिका (हि. मा., वाराणसी), दिव्यध्वनि (हि. मा., आगरा), इत्यादि।

जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य करने वाले उत्तर प्रदेश के दिवंगत महानुभावों में उल्लेखनीय रहे हैं—बा० सूरजभान वकील देवबन्द (हि. ज्ञान प्रकाशक, उ. जैनहित उपदेशक, आदि), पं. गोपालदास बरैया आगरा (जैनमित्र), आचार्य जुगल किशोर मुख्तार सरसावा (जैन हितैषी, जैनगजट, समन्तभद्र, अनेकान्त), ब्र. सीतल प्रसाद लखनऊ (जैनमित्र), बैरिस्टर जगमन्दरलाल जैनी सहारनपुर एवं बा. अजित प्रसाद वकील लखनऊ (अंग्रेजी जैन गजट), श्री ज्योति प्रसाद 'प्रेमी' देवबन्द (उर्दू जैन प्रदीप, आदि), मंगतराय मुख्तार 'साधु' बुलन्दशहर (सनातन जैन), ला. कपूरचन्द जैन आगरा (जैन सन्देश), सेठ पद्मराज रानीवाले खुर्जा (काव्याम्बुधि, जैन सिद्धान्त भास्कर, जैना एंटीक्वेरी), बा. कामता प्रसाद जैन अलीगंज (वीर, अहिंसावाणी, वायस आफ अहिंसा, आदि), पं. श्रीलाल अलीगढ़, चन्द्रसेन वैद्य इटावा,

प्रदेश के वर्तमान जैन पत्रकारों में उल्लेखनीय हैं—पं. कैलाशचन्द शास्त्री वाराणसी (जैन सन्देश), श्री जवाहर लाल लोढ़ा आगरा (श्वेताम्बर जैन), डा० ज्योतिप्रसाद जैन लखनऊ (जैन सिद्धान्त भास्कर-जैना एन्टी-क्वेरी, जैन सन्देश-शोधांक, वायस आफ अहिंसा-वर्तमान, तथा भूतपूर्व—जैनकुमार, छात्र, मानसी, अनेकान्त, अहिंसा-वाणी आदि), पं. परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ ललितपुर (वीर, जैनमित्र), पं. राजेन्द्रकुमार न्यायतीर्थ मथुरा (जैन संस्कृति), डा० मोहनलाल मेहता वाराणसी (श्रमण), श्री जमनालाल जैन वाराणसी (जैन जगत, श्रमण), पं. बलभद्र जैन (जैन सन्देश, दिव्यध्वनि), श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय सहारनपुर (ज्ञानोदय), श्रीचन्द सुराणा आगरा (अमर भारती), पं. परमानन्द शास्त्री दिल्ली (अनेकान्त), डा० लालबहादुर शास्त्री दिल्ली एवं श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन फिरोजाबाद (पद्मावती सन्देश), श्री वीरेन्द्र प्रसाद जैन अलीगंज (अहिंसावाणी एवं वायस आफ अहिंसा), श्री राजेन्द्र कुमार जैन मेरठ (वीर), श्री सुकुमार जैन मेरठ (महावीर निर्वाण बुलेटिन), श्री अक्षय कुमार जैन दिल्ली (वीर-परिनिर्वाण), श्री मोती चन्द सर्राफ (सम्यक्ज्ञान), श्री गोर्धनदास आगरा (दिग.-जैन), जिनेन्द्र प्रकाश जैन एटा (करुणादीप), पं. कैलाशचन्द्र पंचरत्न लखनऊ (सत्यार्थ एवं धर्मवाणी), श्री नन्दकिशोर जैन लखनऊ (ज्ञानकीर्ति), श्री प्रतापचन्द जैन आगरा (अमर भारती), आदि।

उत्तर प्रदेश के निवासी जिन जैनों ने सार्वजनिक पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है या कर रहे हैं, वे हैं—स्व. श्री महेन्द्र जी आगरा (साहित्य सन्देश, आगरा पंच आदि), श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय (ज्ञानोदय), श्री अक्षयकुमार जैन प. वि. (नवभारत टाइम्स), श्री ज्ञानचन्दजैन (नवजीवन), श्री आनन्द प्रकाश जैन, श्री ज्ञानेन्द्र कुमार जैन, श्री शरदकुमार 'साधक' (चौराहा), आदि।

उत्तर प्रदेश की वर्तमान जैन पत्र-पत्रिकाएँ—

नाम	भाषा	प्रकार	प्रकाशन स्थान
१. जैन सन्देश	हिन्दी	साप्ताहिक	भा. दि. जैन संघ, चौरासी मथुरा

२. श्वेताम्बर जैन	,,	,,	मोती कटरा, आगरा
३. दिग-जैन	,,	,,	जौहरी बाजार, आगरा
४. वीर	,,	पाक्षिक	भा. दि. जैन परिषद, ६९, तीरगरान स्ट्रीट, मेरठ शहर
५. करुणादीप	,,	,,	दया प्रकाश जैन, एटा
६. सत्यार्थ	,,	,,	पुलगामा चौक, लखनऊ
७. अमर भारती	,,	मासिक	सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामंडी, आगरा
८. अहिंसावाणी	,,	,,	विश्व जैन मिशन, अलीगंज (एटा)
९. वायस आफ अहिंसा	अंग्रेजी	,,	,, ,,
१०. ऋषभ सन्देश	हिन्दी	,,	ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, चौरासी, मथुरा
११. सम्यग्ज्ञान	,,	,,	दि.जै. त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ)
१२. श्रमण	,,	,,	पा.वि. शोध संस्थान, वाराणसी
१३. जैन संस्कृति	,,	,,	जै.सं.सेवक समाज, चौरासी, मथुरा
१४. वर्णी सन्देश	,,	,,	धूलियागंज, आगरा
१५. पद्मावती सन्देश	,,	,,	फिरोजाबाद
१६. ज्ञानकीर्ति	,,	,,	चौक, लखनऊ
१७. धर्मवाणी	,,	,,	,, ,,
१८. अनेकान्त	,,	द्वैमासिक	मूलतः वीर सेवामन्दिर सरसवा का मुखपत्र, अब दिल्ली से प्रकाशित है
१९. प्राच्यमुक्ता	,,	त्रैमासिक	प्रा.वि. शोध अकादमी, चुरारा, झांसी
२०. जैन सन्देश-शोधाङ्क	,,	,,	भा.दि. जै. संघ, चौरासी, मथुरा
२१. दिशाबोध	,,	वार्षिक	जैन सभा, रुड़की वि.वि., रुड़की
२२. सत्संग सन्देश	,,	,,	जैन सत्संग मंडल, सादतगंज, लखनऊ

उपरोक्त के अतिरिक्त प्रदेश के कई जैन विद्यालयों, कालिजों आदि की भी वार्षिक मेगजीन निकलती हैं, जिनमें स्याद्वादविद्यालय की स्याद्वाद पत्रिका अच्छी निकलती है। कुछ अन्य पत्र-पत्रिकाएँ ऐसी भी हो सकती हैं जिनके विषय में अनभिज्ञता होने से उनका उल्लेख ऊपर नहीं किया जा सका।
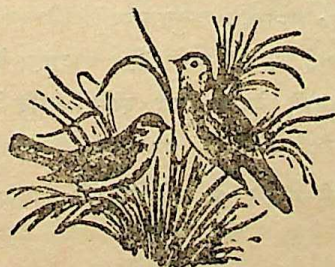
उत्तर प्रदेश के जैन स्वतन्त्रता-सेनानी

—:००:—

वर्तमान शताब्दी के पूर्वार्ध में देश में राष्ट्रीय चेतना फूंकने और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के हेतु विदेशी शासन के विरुद्ध किये गये चिरकालीन संघर्ष एवं स्वातन्त्र्य संग्राम में उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों के निवासी जिन जैन स्त्री-पुरुषों ने सक्रिय भाग लिया है, उनमें से उल्लेखनीय स्वतन्त्रता-सेनानियों का जिले-वार संक्षिप्त परिचय नीचे लिखे अनुसार है :—

मेरठ जिला

बा० कीर्ति प्रसाद वकील, मेरठ——महात्मा गांधी के आन्दोलन के प्रारम्भ से ही सक्रिय सहयोगी थे। अपनी अच्छी चलती वकालत छोड़ कर १९२१ के असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े और जेल यात्रा भी की। वकालत फिर नहीं की, और शेष जीवन राष्ट्रसेवा, समाजसेवा तथा एक गुरुकुल की देख भाल में व्यतीत किया। उनके अनुज बा० रिसालसिंह वकील ने भी असहयोग आन्दोलन में सोत्साह भाग लिया था, किन्तु पारिवारिक परिस्थितियों के कारण वकालत नहीं छोड़ी थी।

ला० अतर सेन देशभक्त, मेरठ——बड़े गरम कांग्रेसी कार्यकर्ता थे, उर्दू में 'देशभक्त' अखबार निकालते थे जो कई बार सरकार द्वारा जब्त हुआ। सन् १९२१ और १९३० के आन्दोलनों में जेल यात्राएँ भी कीं।

बा० गिरिलाल मुख्तार, मेरठ——बड़े उत्साही कांग्रेसी कार्यकर्ता थे, १९३०-३१ के आन्दोलन में जेल यात्रा की।

ला० सुन्दर लाल जैन, मेरठ—ने १९३०–३१ में कांग्रेस सेवा दल में कार्य किया और १९४२ के आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर जेल यात्रा भी की।

मास्टर पृथ्वी सिंह जैन——भी प्रारम्भ में कांग्रेस सेवा दल के सदस्य रहे, तदनन्तर कांग्रेस के अच्छे कार्यकर्त्ताओं में रहते आये है। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में जेल यात्रा भी की।

ज्योति प्रसाद जैन, मेरठ——(प्र० सम्पादक प्रस्तुत ग्रन्थ) भी १९२९–३१ में कांग्रेस सेवा दल के सक्रिय सदस्य रहे, जिसके कारण एक वर्ष की पढ़ाई की भी हानि की। सेवादल के कार्य के अतिरिक्त समाज में खादी के प्रचार और जिनमन्दिर के रेशमी व मखमली वेष्ठन, परदे, चंदोयों आदि के स्थान में खादी के लगवाने में काफी योग दिया।

बा० सुखबीर सिंह मुख्तार—भी कांग्रेस के बड़े उत्साही कार्यकर्त्ता रहे और आंदोलनों में भाग लेने के लिए जेल यात्राएँ कीं।

धर्मपत्नी बाबू उमराव सिंह मुख्तार—भी कांग्रेस की अच्छी कार्ययर्त्ता रहीं।

१९२१–४२ राष्ट्रीयता की एक अजब लहर थी, जिसमें मेरठ शहर एवं सदर के अन्य अनेक जैन युवकों एवं प्रौढ़ों ने तथा कई महिलाओं ने भी उत्साह के साथ भाग लिया था।

बा० कामता प्रसाद मुख्तार बड़ौत—बड़े क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ता थे—हिंसक आंदोलन में भी उनका सक्रिय योग रहा, जेल यात्रा भी की। कस्बे बड़ौत के कई अन्य जैनों ने भी कांग्रेस आंदोलन में भाग लिया।

पं० शीलचन्द न्यायतीर्थ, मवाना—ने १९४२ के भारत छोड़ो आंदोलन में डटकर भाग लिया और पुलिस को चकमा देने में सफल रहे। मवाना तहसील के आप तभी से प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्त्ता रहते आये हैं।

ला० चतर सेन खद्दर वाले सरधना—भी शुद्ध खादीधारी एवं कांग्रेस के अच्छे कार्यकर्त्ता रहे हैं।

सेठ भगवती प्रसाद जैन हापुड़—भी कांग्रेस के अच्छे कार्यकर्त्ता रहते आये हैं।

खेकड़ा के निकट बड़ा गांव के युवक शीतल प्रसाद ने स्याद्वाद विद्यालय वाराणसी के छात्रों द्वारा १९४२ में किये गये उग्र आंदोलन में अग्रणी भाग लिया था और पुलिस के हाथों भीषण यंत्रणाएं सही थीं।

महात्मा भगवानदीन जी—उत्तर प्रदेश के ही मूलतः निवासी पल्लीवाल जैन थे और हस्तिनापुर (जिला मेरठ) में श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना (लगभग १९१४ ई०) के साथ ही उसके अधिष्ठाता हुए थे और तब भी 'महात्मा' कहलाते थे। भरी जवानी में ही गृहस्थी से विरक्त होकर राष्ट्र और जनता की सेवा का उन्होंने व्रत ले लिया था और सन् १९१८ में ही, शायद अन्य सब कांग्रेसियों से पहले, विदेशी शासन के विरोधी विचारों एवं कार्यों के लिए जेल गये थे। राष्ट्रपिता गांधी जी से शायद पहले से ही 'महात्मा' कहलाने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के यह अपने ढंग के अनोखे त्यागी एवं निस्पृह महात्मा थे। उनका पूरा जीवन जन सामान्य की सेवा में बीता। उनके भागिनेय, प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रकुमार हस्तिनापुर के उक्त ब्रह्मचर्याश्रम के प्रारंभिक छात्रों में से थे और राष्ट्र-भक्ति से ओत-प्रोत रहे हैं तथा उसके कारण जेल यात्रा भी की है।

सहारनपुर ज़िला

श्री ज्योति प्रसाद जैन 'प्रेमी' देवबन्द—'जैन प्रदीप' (उर्दू) के यशस्वी संपादक श्री ज्योति प्रसाद 'प्रेमी' ने १९२०–२१ के असहयोग आन्दोलन में बड़े उत्साह के साथ सक्रिय भाग लिया। काँग्रेस-संगठन को मजबूत बनाने, तिलक स्वराज्य फंड का चन्दा एकत्र करने और जोशीले भाषण देने में अपने क्षेत्र में अग्रणी थे। गिरफ्तार भी हुए। १९३० के आन्दोलन को उनसे बल मिला। अपने पत्र 'जैन प्रदीप' में वे बराबर राष्ट्र के साथ रहे, 'भगवान महावीर और गान्धी' लेख पर माँगी जमानत के कारण ही 'जैन प्रदीप' बन्द हुआ था। मृत्यु पर्यन्त वे खादी पहनते रहे और उसके लिए सदैव युवकों को प्रोत्साहित करते रहे।

बाबू झूमन लाल जैन, सहारनपुर—१९२० में अपनी चमकती वकालत को छोड़कर वे राजनीति में आये, अन्त तक कांग्रेस के साथ रहे। स्पष्ट वक्ता, पैने लेखक और संयमी कार्यकर्त्ता थे। सन् १९३२ में उन्होंने जेल यात्रा भी की।

श्री हंस कुमार जैन—१७-१८ साल की उम्र में ही, १९३० में रुड़की छावनी में फौजों को भड़काने के अपराध में उन्हें ४ साल की सख्त कैद की सजा सुनाई गई। १९३२ और १९४२ में भी वे जेल गये और सदैव वहाँ का कठोर वातावरण उनकी बंशी-ध्वनि और मधुर रागों से थिरकता रहा। अपने पिता बाबू झूमन लाल जी की तरह वह भी निस्पृह और सरल रहे।

बाबू अजित प्रसाद जैन वकील, सहारनपुर—आप का सहारनपुर ही नहीं, प्रान्त एवं केन्द्र की राजनीति में भी उल्लेखनीय स्थान रहा है। आप कांग्रेस की ओर से सन् १९३६ से एसेम्बली के सदस्य रहे और विधान निर्मात्री परिषद में एकमात्र जैन सदस्य थे। उत्तर प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष, केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में खाद्यमंत्री एवं एक राज्य के राज्यपाल भी रहे। उत्तर प्रदेश के किसान-कानून के प्रमुख विधाता रहे।

श्रीमती लक्ष्मीदेवी जैन, सहारनपुर, धर्मपत्नी श्री अजित प्रसाद जैन—अपने पति के राजनीतिक जीवन में प्रेरक और सहयोगिनी रहीं, कांग्रेस के कार्यों में सदा भाग लेती रहीं और प्रमाणित कांग्रेसी जेल यात्री भी हैं। आप के साथ आप की कुछ मास की पुत्री 'टोई' भी जेल में रही।

श्री विशाल चन्द्र जैन—राष्ट्रीय विचारों के देशभक्त रहे। स्वतन्त्रता के उपरान्त वर्षों आनरेरी मजिस्ट्रेट रहकर जनता की सेवा की है।

श्री हुलाश चन्द्र जैन, रामपुर (जि० सहारनपुर)—१९२० से ही वे कांग्रेस के काम में दिलचस्पी लेने लगे थे। १९३० में देवबन्द तहसील को जलाने में उन्होंने रात-दिन मेहनत की और जेल गये। १९४२ में भी उन्हें काफी दिन जेल में रहना पड़ा।

श्री मामचन्द जैन देवबन्द (जि० सहारनपुर)--१९३० में वे अपने गम्भीर नारों और मीठे एलानों के के साथ कांग्रेस में आये। एक दिन हथकड़ियाँ पहने वे सहारनपुर जेल पहुंच गये।

श्री त्रिलोक चन्द जैन, सहारनपुर--बी० ए० की सार्टीफिकेट ठुकराकर उन्होंने बागी सार्टीफिकेट लिया और तब से वे बराबर कांग्रेस के उत्साही कार्यकर्ता रहे।

श्री प्रकाशचन्द्र जैन, सहारनपुर--१९४२ में कांग्रेस में आये और जेल गये। वहीं इस होनहार युवक की मृत्यु हो गयी।

हड़ताल की आहुतियाँ--९ अगस्त १९४२ को सब नेता गिरफ्तार हो गये और सहारनपुर में हड़ताल हो गयी। परिणामस्वरूप अनेक लोगों को जेल में ठूंस दिया गया, जिसमें निम्नलिखित जैनों के नाम उल्लेखनीय हैं—श्री शिखरचन्द मुनीम—६ मास सख्त कैद, श्री प्रकाशचन्द मुनीम–३ मास सख्त कैद व ३००) रु० का अर्थ-दण्ड, श्री बाबू राम जैन–६ मास सख्त कैद, श्री कैलास चन्द जैन—६ मास सख्त कैद।

तोड़-फोड़ के अपराध में--जैन समाज के यशस्वी तरुण कवि श्री शान्ति स्वरूप जैन 'कुसुम' १९४२ में जिले के उन तरुणों में थे जिन्होंने आन्दोलन के स्थान में क्रांन्ति का रास्ता पकड़ा। कुछ दिनों में वे पुलिस की आंखों में गड़ गये और पकड़े गये।

कौलाश प्रसाद, मंगलकिरण आदि अन्य कई अच्छे कार्यकर्त्ता सहारनपुर में रहे हैं। श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय, जो अब सहारनपुर में ही बस गये हैं, किसी समय उग्र स्वतन्त्रता सेनानी रहे और १९३२ के नमक सत्याग्रह में दो वर्ष का कारावास भुगत चुके हैं।

बिजनौर जिला

बा० रतनलाल जैन वकील, भूतपूर्व एम० एल० सी०--बिजनौर जिले के किसानों के प्राण, ढ़ाई हजार रुपये लगान के छोड़ दिये, अपने घर के लगभग २ हजार रुपये के मखमल तंजेब आदि के विदेशी कपड़ों की बिजनौर के बाजार में होली जला दी। जैन समाज के निस्वार्थ राष्ट्रभक्तों में बाबू रतनलाल प्रमुख रहे हैं। वह १९२१ में ही वकालत छोड़कर कांग्रेस के कार्य में जुट गये थे और गिरफ्तार हुए थे तथा ५०० रु० जुर्माना हुआ था, किंतु

उनकी वीर पत्नी ने उस जुर्माने को नहीं दिया और न सरकार वसूल ही कर सकी। इसके बाद जब नमक कानून तोड़ा जा रहा था, इनके घर पर ही नमक बनाया गया, बिजनौर जिले के सभी कार्यकर्ता उपस्थित थे। तैयार किये गये नमक की बोली बा० राजेन्द्र कुमार जी की माता जी ने १२०० रु० में ली। बा० रतनलाल अपने साथियों के साथ गिरफ्तार हो गये और लगभग ३ साल की सजा भुगतकर वापस आये। आप के पिता ला० हीरालाल जी बीमार थे किन्तु गांधी जी द्वारा कांग्रेस आंदोलन की आज्ञा प्राप्त होते ही आप फिर से गिरफ्तार होकर २ वर्ष तक और जेल के अतिथि रहे। तदनन्तर यू० पी० एसेम्बली के सदस्य चुने गये। वह फिर जेल में बंद हुए। राष्ट्रीय जाग्रति और स्वतन्त्रता संग्राम में आप का बहुत बड़ा हाथ रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वर्षों उ० प्र० विधान परिषद के सदस्य रहे।

बा० नेमीशरण जैन एडवोकेट—बा. रतनलाल जी के उत्साही साथी रहे। १९२१ तक तो आप 'अमन सभा' के वाइस चेयरमैन रहे और कांग्रेस के विरुद्ध कार्य किया। इसके बाद आप की रुचि कांग्रेस में हो गई। और जेल के मेहमान बने। सन् २२-२८-४२ में भी आपने जेल की यात्राएं कीं। कांग्रेस के टिकट पर एम. एल. सी. भी रहे। फूड कमेटी के चेयरमैन भी रहे।

श्रीमती शीलवती देवी—धर्मपत्नी बा० नेमीशरण ने कांग्रेस के लिए अपने सुख को तिलांजलि दे दी और दो बार जेल गयीं। आप की सन्तान भी लगभग सभी राष्ट्रीय सेवा के लिए तत्पर रही। रविचन्द्र जैन शास्त्री की धर्मपत्नी प्रेमलता देवी भीं उनकी सहयोगिनी रहीं।

बा० मूलेशचन्द्र, नजीबाबाद—साहू परिवार के उत्साही युवक कांग्रेस कार्यकर्ता रहे। ३ बार जेल यात्रा की। बाद में नजीबाबाद फूड कमेटी का प्रबन्ध किया।

कानपुर जिला

वैद्यराज कन्हैयालाल—आप भारत के प्रमुख वैद्यों में रहे हैं। युक्त प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के सभापति तथा भा० वैद्य सम्मेलन के कोषाध्यक्ष भी रहे। बाल गंगाधर तिलक द्वारा चलाये स्वदेशी आन्दोलन के समय आप ने बम्बई में स्वदेशी व्रत धारण किया था। सन् ३० के आन्दोलन में ६ मास के लिए जेल गये। कांग्रेस की ओर से म्युनिसिपल बोर्ड कानपुर के सदस्य भी रहे।

धर्मपत्नी वैद्यराज कन्हैयालाल—आप को स्वदेशी से बड़ा प्रेम था। आप के कारण जैन समाज की तथा नगर की स्त्रियों में स्वदेशी का काफी प्रचार हुआ था। १९३१ के आन्दोलन में जब कांग्रेस अवैध थी और कानपुर में यू० पी० कांग्रेस का जलसा बा. पुरुषोत्तम दास टण्डन के सभापतित्व में हुआ तो उसकी स्वागताध्यक्ष बनने के कारण आप को ६ माह का कारावास हुआ था।

आयुर्वेदाचार्य महेशचन्द जैन—वैद्यराज के मझले पुत्र हैं। आप ने कानपुर के जैन अजैन नवयुवकों में कांग्रेस प्रेम उत्पन्न किया। सन् १९४० में आप ने २ माह का कारावास भुगता।

बा० सुन्दरलाल जैन—आप वैद्यराज कन्हैयालाल के सबसे बड़े पुत्र हैं, सन् १९४० के आन्दोलन में १ वर्ष के लिए जेल गये।

मुजफ्फरनगर जिला

बा० सुमति प्रसाद बी.ए. वकील—जिले के प्रमुख कांग्रेसी नेता रहे हैं। सन् १९२१ में आप ने दो वर्ष के लिए वकालत छोड़ी, सन् ३० व ३२ में कांग्रेस आंदोलनों में सजा पाई व जेल गये। १९४१–४२ में कांग्रेस

आंदोलन में नजरबन्द रहे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद एम०एल०सी० और तदनन्तर वर्षों तक लोक सभा के सदस्य रहे हैं।

लाला उग्रसेन––सन् १९१९ से कांग्रेस में कार्य किया है। गांधी जी के अनन्य भक्त रहे। आप के कुल परिवार में खादी का ही प्रयोग होता रहा। सन् ३० व ३२ में जेल यात्रा की और सन् ४१ व ४२ में नजर बन्द रहे।

ला० बनवारीलाल चरथावल––खादी के प्रयोग, सच्चाई व ईमानदारी के लिए अति प्रसिद्ध रहे। सन् १९३० में जेल यात्रा की।

ला० चुन्नीलाल चरथावल––आप लाला बनवारी लाल के सुपुत्र हैं। सन् ४१ व ४२ में जेलयात्रा की।

ला० उलफत राय––आप ने सदा शुद्ध खादी का प्रयोग किया। सन् ३० व ३२ व ४२ में जेल यात्राएँ की।

बा० दीपचन्द वकील––सन् ४२ में जेल यात्री रहे।

बा० भारतचन्द––सन् ४२ के आंदोलन में कालेज छोड़ा व जेल यात्रा की।

बा० अकलंक प्रसाद बी. ए.––सन् ४२ में जेल यात्रा की।

बा० मामचन्द––ने सन् ४२ में जेल यात्रा की।

लाला सुखवीर सिंह घी वाले––ने सन् ४२ में जेल यात्रा की।

बा० आनन्द प्रकाश––आप क्रांतिकारी दल के सदस्य थे, सन् १९४२ में जेल यात्रा की।

ला० गेन्दनलाल––राष्ट्रीय विचार के व्यक्ति रहे और सदैव शुद्ध खादी का प्रयोग किया है।

बा० प्रेमचन्द––ने सन् ४२ में कालेज छोड़ा और जेल यात्रा की।

देहरादून जिला

श्री नरेन्द्र कुमार जैन बी. ए.––जिला सहारनपुर के देवबन्द कस्बे के निवासी हैं। सार्वजनिक कार्यों में आप की प्रारम्भ से ही रुचि रही। सन् ४२ के आंदोलन में सहपाठियों के साथ स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े और हिरासत में ले लिये गये, जेल में भी रहे।

रामपुर जिला

रामपुर के प्रसिद्ध कवि एवं वैद्य श्री कल्याणकुमार 'शशि' (जन्म १९०७ ई०) १९२४ से ही पक्के कांग्रेसी रहे और १९३० में ६ माह के लिए जेल यात्रा की, तथा कुछ काल तक सत्याग्रह आश्रम मुरादाबाद के अध्यक्ष भी रहे।

मुरादाबाद जिला

मुंशी गेन्दनलाल, सम्भल––एक वकील के मुहर्रिर थे, व मुरादाबाद की जैन सेवा समिति के कैप्टन थे। वह देश के दीवाने थे। सन् २१ में राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े। सन् ३१ में जेल गये, जेल में बीमार हो गये, ६ मास के बाद बाहर आये तो चारपाई की शरण ली और भयंकर रोग यन्त्रणा से पीड़ित होकर केवल ४१ वर्ष की अवस्था में ही चल बसे।

श्रीमती गंगा देवी—आप जैन समाज के ख्याति प्राप्त मुंशी मुकुन्दरामजी की पुत्री थीं और मुरादाबाद से राष्ट्रीय प्रोग्राम में भाग लेने वाली आप ही एकमात्र जैन महिला थीं। कांग्रेस प्लेटफार्म पर बड़े-बड़े व्याख्यान दिये और जेल यात्रा की।

हकीम टेकचन्द, ड्योढ़ी—आप सोलहों आने गांधी बाबा के चेले रहे और ग्राम सेवा में लगे रहे।

श्री सिपाही लाला, राजथल—सन् ४१ से ही राष्ट्रीय विचार रखते हैं। सन् ४२ के आंदोलन में छिपे रहकर प्रचार किया और अपना सम्पूर्ण जीवन देश सेवा में लगाया।

लाल केशोशरण ग्राम हरियाना—उत्कट देश सेवी और कांग्रेस कार्यकर्ता रहे। कई बार जेलयात्रा की, सन् ४२ के आंदोलन में स्थानीय कोर्ट में जाकर राष्ट्रीय ध्वजारोहण किया और आजादी का संदेश सुनाया, गिरफ्तार हुए और लम्बे समय तक कारावास में रहे। जेल जीवन में ही आप की प्रिय पुत्री का शरीरान्त हुआ, और आप की पत्नी भी सख्त बीमार रहीं, पर आप ने परवाह न की।

आगरा जिला

सेठ अचल सिंह—आप आगरे के प्रसिद्ध एवं सर्वप्रमुख राष्ट्रीय नेता रहते आये हैं और कांग्रेस की ओर से युक्तप्रान्तीय धारा सभा के सन १९३६ से सदस्य रहे तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से लोक सभा के सदस्य रहते आये हैं। अनेक बार जेल यात्रा की है। जिला कांग्रेस कमेटी के अनेक बार सभापति रहे। अंचल ग्राम सेवा संघ के संस्थापक हैं।

बाबू चांदमल जैन वकील—आप श्वेताम्बरी ओसवाल जैन समाज के प्रमुख कार्यकर्ता थे। १९२१ के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिय था। उस समय की नौकरशाही नीच से नीच कार्य करने में नहीं चूकती थी, आपको हंटरों से पीटा गया था और कठिन कारावास भी भुगतना पड़ा था।

सेठ रतन लाल जैन—आप स्थानकवासी अग्रवाल थे और लोहे के बहुत बड़े व्यापारी थे। आपने १९३६ से ही राष्ट्रीय सेवा में भाग लिया तथा १९४२ के आन्दोलन में नजरबन्द होकर कारागृह में भेज दिये गये थे, जहाँ से १ माह बाद छोड़े गये। आप वार्ड कांग्रेस कमेटी के सदस्य तथा अधिकारी अनेकों बार चुने गये।

श्री महेन्द्र जी—आपको बचपन से ही साहित्यिक होने का चाव था। आप अपने नाना जी के पास रहते थे और "जैसवाल जैन" के संपादक, साहित्यरत्न भंडार के मालिक और हिन्दी प्रचारणी सभा के प्रायः स्थायी मंत्री रहे। १९३० के आन्दोलन में 'सैनिक' की मैनेजरी की और आन्दोलन की विज्ञप्ति बड़े जोर-शोर से की। 'सैनिक' के बन्द करवा दिये जाने पर 'सिंहनाद' पत्र निकाला जो कि साइकिलोस्टाइल प्रकाशित होता था। गांधी-इरविन पेक्ट होने से कुछ दिन पूर्व आप को गिरफ्तार कर लिया गया और ६ माह के लिए जेल भेज दिया गया। १९३४ में आगरे में आरती-समाज के मामले में भी आपने अपने 'आगरा पंच' द्वारा जनता की सराहनीय सेवा की। १९४१ में आप सरकार द्वारा नजरबन्द कर लिये गये और ७ माह बाद छोड़े गये। पुनः १९४२ में जेल भेजे गये। इन दिनों आपका साहित्य प्रेस तथा मासिक 'साहित्य सन्देश' सरकार द्वारा बन्द कर दिये गये। आपको सरकार ने २ साल तक बन्द रखा।

श्रीमती अंगूरी देवी (धर्मपत्नी श्री महेन्द्र जी)—आप को सन १९३० के आन्दोलन में ६ मास की कड़ी सजा हुई थी। आप हर राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग देती रही हैं, ४०-४२ के आन्दोलन में भी आपने रिलीफ आदि के कार्य में काफी सहयोग दिया था।

लाला नेमीचन्द जैन मीतल—आप १९३० के आन्दोलन में महेन्द्र जी के साथ कांग्रेस विज्ञप्ति के प्रकाशन का कार्य करते थे। 'आगरा पंच' के प्रकाशक भी रहे। वार्ड कांग्रेस कमेटी के कई बार अधिकारी व कांग्रेस कमेटी के मेम्बर रहे। १९४२ के आंदोलन में 'आजाद हिन्दुस्तान' और कांग्रेस की विज्ञप्तियां प्रकाशित की थीं। आप उन १४ आदमियों में से एक हैं जिन पर आगरा षडयन्त्र बम्ब केस चलाया गया था। दिसम्बर १९४२ में गिरफ्तार किये गये और फतेहगढ़ जेल भेज दिये गये। आप २ साल के लगभग जेल में रहे।

श्री गोविन्द दास जैन—आप ने भी १९४२ के आंदोलन में भाग लिया था और श्री नेमीचन्द्र के सहयोगी थे। आप को २ माह नजरबन्द रखा गया।

श्री बंगाली मल जैन—१९४२ में पुलिस ने आप को नजरबन्द किया था, सैबोटेज आदि के केस में फांसा था। कांग्रेस मिनिस्ट्री आने पर आप छोड़ दिये गये।

बाबू मानिकचन्द जैन—१९३० के आंदोलन में आप को ६ मास की सजा हुई थी तथा १९४१ में इस जुर्म में नजरबन्द किये गये कि 'आजाद हिन्दुस्तान' के काम में सहयोग देते रहे, ११ मास तक नजरबन्द रहे। आप वार्ड कांग्रेस कमेटी के सदस्य रहे।

बाबू कपूर चन्द जैन—आपने १९३० में अपने महावीर प्रेस से 'हिन्दुस्तान समाचार' नामक राष्ट्रीय अखबार निकाला था। इस अंक के निकलने के बाद आप से २०००) रु० की जमानत मांग ली गयी तथा प्रेस से भी जमानत मांग ली गई। आप ने जमानत न देकर लगभग ६ मास तक अपना प्रेस बन्द रखा, १९४२ के आंदोलन में भी आप के प्रेस को 'आजाद हिन्दुस्तान' प्रकाशित करने के शक में बन्द कर दिया गया और २ साल तक बंद रखा गया। आप आंदोलन की हर कार्यवाही में पूरा-पूरा सहयोग देते थे।

बाबू निर्मल कुमार जैन—आप को सरकार ने १९४२ के आंदोलन में रोक्सी सिनेमा में बम्ब रखने के सन्देह में गिरफ्तार किया था। काफी समय तक जेल की हवालात भोगी।

बाबू गोर्वनदास जैन—आप १९३० के आंदोलन में जैन सेवा मण्डल के उपमंत्री थे। मंडल ने यह निश्चय किया था कि मंदिरों में खादी के वस्त्र पहिनकर लोग दर्शन करने जावें तथा खादी के वस्त्र ही वहाँ इस्तेमाल हों। आपने इस कार्य के लिए सत्याग्रह तक किया। १९४० के आंदोलन में भी आपने काफी भाग लिया था। १९४२ के आंदोलन में तो पुलिस ने आपको इस अभियोग में कि आप गुप्त रीति से आंदोलन का संचालन करते हैं तथा 'आजाद हिन्दुस्तान' का प्रकाशन और संपादन करते हैं, गिरफ्तार कर लिया। डेढ़ साल तक नजरबन्द रखा गया। आप वार्ड एवं जिला कांग्रेस कमेटी के सदस्य एवं पदाधिकारी भी रहे हैं।

बाबू किशन लाल—१९३० के आंदोलन में आप को कारावास हुआ। हार्डी बम्ब केस के आप भी अभियुक्त रहे। आप १९४० के आंदोलन में नजरबन्द किये गये, फिर १९४२ में आप को ९ अगस्त से पूर्व ही क्रान्तिकारी होने के कारण पुलिस ने नजरबन्द कर दिया था तथा लगभग २ साल बाद आप को छोड़ा।

बाबू चिम्मन लाल—आप को १९४२ के आंदोलन में ध्वंसात्मक कार्य करने के अपराध में गिरफ्तार किया गया था। जब केस साबित नहीं हो सका तो नजरबन्द कर दिया गया। आप को सरकार ने क्रान्तिकारी माना था। आप वार्ड कांग्रेस कमेटी के उत्साही कार्यकर्ता रहे।

श्री श्यामलाल सत्यार्थी—आपको १९३० के आंदोलन में ६ मास की कड़ी सजा हुई थी। आप की पत्नी तथा पुत्र इसी बीच में स्वर्ग सिधार गये थे।

श्रीमती शरबती देवी—आप स्वर्गीय बाबू सांमलदासजी की सुपुत्री थीं, १९३० के आंदोलन में आपको कारावास में कठोर सजा भुगतनी पड़ी थी, बाद में अर्जिका हो गयीं।

बाबू प्रतापचन्द—आप ने १९३० में कांग्रेस की आर्थिक सहायता के लिए बहुत उद्योग किया था। बाबू कपूरचंद व नेमीचंद जैन के मित्र होने के कारण आप सरकारी नौकरी से मुअत्तिल कर दिये गये थे।

बाबू फूलचन्द बरवासिया—फूलचंद बजाज, प्यारेलाल बजाज आदि ने सन् १९३० के ही आंदोलन से राष्ट्रीय कार्य किया, खादी प्रचार के कार्य में तथा दिगम्बर जैन मंदिरों में खादी के प्रचार के लिए काफी उद्योग किया। सन १९४२ के आंदोलन में भी काफी सहयोग दिया था।

लाला करोड़ी मल—आप सन १९३० से कांग्रेस के मुख्य कार्यकर्ता रहे, उस आंदोलन में खादी के प्रचार के लिए सत्याग्रह किया था तथा १९४२ के आंदोलन में भी बहुत काम किया था। सरकार के गुप्तचर विभाग ने आपकी भी देखरेख की थी।

ला० मोतीलाल—आप कांग्रेस के कामों में बराबर सहयोग देते रहते हैं। सन १९४२ के आंदोलन में 'आजाद हिन्दुस्तान' पर्चे बांटने के संदेह में आप को ६ माह की सजा हुई थी।

श्री शीतला प्रसाद—सन १९४२ के आंदोलन में आपने बहुत सहयोग दिया था।

बाबू सन्त लाल फिरोजाबाद—आपको सरकार द्वारा डाकबंगला जलाने के अपराध में पकड़कर जेल भेजा गया था परंतु केस साबित न होने पर आपको नजरबन्द कर दिया गया। मई १९४३ में आपको इस शर्त पर छोड़ा गया कि आप थाने में हाजिरी दिया करें परन्तु आपने सरकार की इस आज्ञा को न माना अतः पुनः नजरबंद कर दिये गये और अक्टूबर १९४६ में छूटे।

श्री राम बाबू फिरोजाबाद—आप और श्री संतलाल पर एक ही जुर्म लगाया गया था। उनके साथ ही साथ कारागृह में रहे।

श्री वसन्त लाल फिरोजाबाद—आप भी सन्तलाज और राम बाबू की भांति डाक बंगला जलाने के अपराध में गिरफ्तार हुए थे परन्तु जुर्म न साबित होने पर नजरबन्द कर दिये गये थे और मई, ४३ में शर्त लगाकर छोड़ दिये गये थे। कुछ दिनों बाद पुनः शर्त तोड़ने के कारण गिरफ्तार किये गये।

श्री नत्थी लाल जैन—१९४२ के आन्दोलन में रिलीफ आदि के अनेक कार्यों में आपने बहुत सहयोग दिया था। आप की मित्र मंडली से भी आंदोलन को काफी सहयोग मिला था।

बाबू हुकुमचन्द जैन—आपने १९४२ के आन्दोलन में बहुत काम किया था।

बाबू दरबारीलाल जैन वकील—१९४२ के आन्दोलन में आपने सक्रिय भाग लिया था।

बाबू रतनलाल बंसल—आप १९४२ के आन्दोलन में नजरबन्द किये गये थे।

बाबू मानिक चन्द जैन फिरोजाबाद—सरकार ने आप को १९४२ के आन्दोलन में भाग लेने के जुर्म में जेल भेजा था।

श्री राजकुमार फिरोजाबाद—१९४२ के आन्दोलन में आप पर पुलिस ने यह अभियोग लगाया था कि इन्होंने डाक बंगला जलाया है। आप को नजरबन्द कर दिया गया और मई १९४३ में छोड़ा गया परन्तु पुनः शर्त तोड़ने पर गिरफ्तार कर अक्टूबर १९४३ तक नजरबन्द रखा गया।

श्री धनपत सिंह जैन फिरोजाबाद—आप श्री राजकुमार जैन के ज्येष्ठ भ्राता थे, उनके ही केस में अभियुक्त ही नहीं, लीडर मानकर पुलिस ने गिरफ्तार किया था और सवा साल तक जेल में रखा था।

श्री गुलजारी लाल—नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से रहे हैं। आप को पुलिस ने १९४० के आन्दोलन में नजरबन्द कर लिया था। आप फिरोजाबाद म्यू० बोर्ड के चेयरमैन भी रहे।

बाबू नेमीचंद जैन—आप जोतराज वसैया आगरा के रहने वाले हैं और १९३० से राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य करते रहे। इस आन्दोलन में एक साल की सजा हुई थी। आप मंडल कांग्रेस कमेटी के प्रमुख कार्यकर्त्ता रहे। १९४० में आप नजरबन्द कर दिये गये। सन् १९४२ में आप पर यह जुर्म लगाया गया कि कागारोल का डाक बंगला आपने जलाया था।

बा० उत्तमचन्द वकील, बरार (आगरा)—१९३६ से आप राष्ट्रीय क्षेत्र में अधिक प्रकाश में आये और जिला कांग्रेस कमेटी के सदस्य तथा मंडल कांग्रेस कमेटी के पदाधिकारी बराबर रहे। आपने किसानों का संगठन बहुत जोरों से किया। १९४० के आन्दोलन में आप नजरबन्द कर किये गये और लगभग एक साल जेल में रहना पड़ा। १९४२ के आन्दोलन में आप ९ अगस्त को ही गिरफ्तार कर लिये गये थे और मई १९४४ में छोड़े गये।

श्री पीतमचन्द जैन, रायभा (आगरा)—आप टेलीफोन के तार काटने के सिलसिले में गिरफ्तार किये गये थे और कई माह तक नजरबन्द रहे।

श्री श्याम लाल जैन, रायभा (आगरा)—आप भी श्री पीतमचन्द के साथ उसी अभियोग में गिरफ्तार किये गये थे, जेल में लकवा मार जाने के कारण बहुत कष्ट हुआ था।

श्री बाबूलाल जैन (आगरा)—आप अपने मंडल कांग्रेस कमेटी के मंत्री थे, अतः ९ अगस्त १९४२ के आन्दोलन में नजरबन्द कर लिये गये और दो मास बाद छोड़े गये।

बाबू रामस्वरूप 'भारतीय', जारखी, आगरा—आप जैन समाज के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता रहे, सन् १९४२ के आन्दोलन में सरकार ने आप को गिरफ्तार करके नजरबन्द कर दिया, दो माह के बाद छोड़ा था।

चिरंजीलाल जैन वैद्य, बाह (आगरा)—१९३० से ही कांग्रेस के उत्साही कार्यकर्ता हैं, १९३२ में भी गिरफ्तार हुए, १९४१ में ६ माह जेल में रहे, और १९४२ से चार साल तक फरार रहे। जिला कांग्रेस कमिटि के मंत्री और ब्लाक कांग्रेस कमिटि के अध्यक्ष हैं।

श्री पन्ना लाल जैन 'सरल' जारखी (आगरा)—आप सन १९४२ के आंदोलन में जारखी मंडल से एकमात्र आंदोलन कर्ता और जेल यात्री थे। अपनी लोकप्रियता के कारण १९४६ में भी सर्व सम्मति से मंडल के प्रधान मंत्री निर्वाचित हुए। सन १९४२ में निर्धन सेवा सदन स्थापित करके गांवों में फैली हुई गल्ले की कमी को अपने खर्चे से मंगाकर पूरा किया। चोर बाजारी के सिद्धांतः विरोधी होने के कारण कपड़े के सुचारु रूप से चलते हुए अपने व्यवसाय को समाप्त कर दिया।

श्री कल्याणदास जैन, आगरा—भी पक्के कांग्रेसी कार्यकर्त्ता रहे, नगर निगम के कांग्रेसी मेयर भी रहे।

एटा जिला

ला० सन्त कुमार जैन, अवागढ़, अपने नगर के प्रमुख राष्ट्रीय कार्यकर्ता रहे, १९४२ में ९ मास की जेल काटी, और छूटने पर स्थानीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान हुए।

मैनपुरी जिला

बाबू रामस्वरूप जैन खैरगढ़—आप फिरोजाबाद में १९४२ के आन्दोलन के समय गिरफ्तार किये गये थे। अपने मंडल के मन्त्री थे। अगस्त १९४२ से फरार हो गये थे। जनवरी १९४३ में फिरोजाबाद में गिरफ्तार कर लिए गये और लगभग सवा साल नजरबन्द रहे।

श्री गुणधरलाल, कुरावली (जि० मैनपुरी)—१९२९ ई० से कांग्रेस में कार्यरत रहे, नमक कानून-भंग आंदोलन में भाग लेने के कारण एक वर्ष का कठिन कारावास और १०० रु० जुर्माना हुआ, घर की आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गई।

श्री देश दीपक जैन, कुरावली—श्री गुणधरलाल के सुपुत्र, १९४० ई० से ही स्वातन्त्र्य संग्राम में जुट गये और १९४२ में १४ मास का कठोर कारावास तथा १५० रु० जुर्माना भुगता। जेल जाने से कपड़े की दुकान जो थी ठप होगई।

सेठ दरबारी लाल, कुरावली—श्री देशदीपक के सहयगी थे, १९४२ के आन्दोलन में इन्हें १ वर्ष का कारावास और ५०० रु० जुर्माना हुआ। इनके पीछे कई आत्मीयों की मृत्यु हो गई तथा आर्थिक हानि भी बहुत हुई। जेल से छूटकर मंडल कांग्रेस कमेटी के कोषाध्यक्ष रहे।

ललितपुर जिला

मथुरा प्रसाद वैद्य, ललितपुर (जन्म मेहरोनी वि०स० १९५१) जेल यात्रा १९३० व १९४२ ई०, जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष १९४१-१९४७ ई०।

वृन्दावन इमालिया, ललितपुर (जन्म १९१२ ई०), जेल यात्रा १९३० एक वर्ष, १९३२ दिल्ली ६ सप्ताह, १९३२ जिला झांसी ६ माह। प्रथम पंक्ति के रण बांकुरों में हैं, जिन्होंने आजादी के संघर्ष में सब कुछ होम कर दिया था।

हुकुमचन्द्र बुखारिया 'तन्मय', ललितपुर (जन्म १९२१ ई०), १९४२ में ९ वर्ष का कठोर कारावास व १०० रु० आर्थिक दण्ड। १९-२० वर्ष की अवस्था में ही राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था।

उत्तमचंद्र कठरया, ललितपुर, जेलयात्रा अगस्त १९४२ में १ वर्ष तथा १०० रु० अर्थ-दण्ड।

गोविंददास सिंघई, ललितपुर (जन्म १९१३), जेलयात्रा १९३२ में १ वर्ष।

गोविंदास जैन, ललितपुर (जन्म १९११ ई०), जेलयात्रा १९४१ ६ माह।

हुकुम चंद बड़घरिया, ललितपुर (जन्म वि १९७८), जेलयात्रा १९४२ में, १ वर्ष तथा १०० रु० अर्थ दण्ड।

राम चंद्र जैन, ललितपुर, जेलयात्रा १९४२ में १ वर्ष व १०० रु० अर्थ-दण्ड।

पं० परमेष्ठीदास जैन, ललितपुर, (जन्म १९०७ ई०) जेलयात्रा १९४२ में ४ माह। हिन्दी भाषा का प्रचार कार्य महात्मा गान्धी के रचनात्मक कार्यों में एक महत्वपूर्ण कार्य था जिसमें आप पूरी तन्मयता से लगे रहे। सन् १९४२ के स्वाधीनता आन्दोलन में आपने अपने लेखों और भाषणों से अनेक व्यक्तियों को सत्याग्रह आन्दोलन करने की प्रेरणा दी, तथा स्वयं उस आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते हुए बन्दी बनाए गए। पहले सूरत जेल में रखे गये, बाद में साबरमती जेल में स्थानांतरित कर दिया गया। जेल में भी स्व० श्री जी० वी० मावलंकर के सहयोग से सहस्राधिक जेल-साथियों को राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की परीक्षाओं में सम्मिलित करवाया।

श्रीमती कमला देवी, ललितपुर, धर्मपत्नी पं० परमेष्ठी दास, (जन्म १९१६) जेलयात्रा १९४२ में ५ माह। सन १९४२ ई० के जन-आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते हुए भारत रक्षा कानून की दफा ५६ के अन्तर्गत आप जेल में ५ माह रहीं। उस समय दफा १४४ को भंग करके जुलूसों का नेतृत्व किया था, सभाबन्दी कानून भंग

करके सभा में भाषण देने के कारण आप को साबरमती जेल में रहना पड़ा। इस समय आपका पुत्र जैनेन्द्र केवल ३ वर्ष का था, अतः वह भी अपनी मां के साथ जेल में रहा। वह जेल में अपने पति के राष्ट्रभाषा प्रचार के कार्य में भी सक्रिय योग देती रहीं।

सुखलाल इमलिया ललितपुर (जन्म १९१९ ई०), जेलयात्रा १९४२ में १ वर्ष की तथा १०० रु० अर्थ-दण्ड। अपने अग्रज श्री वृन्दावन इमालिया, जो स्वतन्त्रता संग्राम के प्रमुख प्रणेता थे से प्रभावित होकर परिवार के भरण-पोषण की परवाह न करते हुए भारत माता को स्वतन्त्र कराने हेतु स्वयं भी सेनानियों की कतार में खड़े हो गये।

श्री धन्नालाल गुढ़ा, ललितपुर (जन्म १९१४ ई०), जेलयात्रा १९४२ में १ वर्ष की तथा १०० रु० अर्थ-दण्ड।

श्री शिखरचंद सिघई, ललितपुर (जन्म १९२१ ई०), जेलयात्रा अगस्त १९४२ में १ वर्ष की तथा १०० रु० अर्थ-दण्ड।

श्री बाबूलाल घी वाले, ललितपुर (जन्म सं० १९७२) जेलयात्रा १९४२ में १ वर्ष तथा १०० रु० अर्थ-दण्ड।

श्रीमती केशरबाई, ललितपुर (जन्म १९१५ ई०), जेलयात्रा १९४१ में १ माह।

श्री खूबचंद पुष्प, ललितपुर (जन्म १९८१ वि०), जेलयात्रा, १९४२ में १ वर्ष की तथा ५०० रु० अर्थ-दण्ड।

श्री गोपालदास जैन, साढूमल, जिला ललितपुर (जन्म १९१२ ई०), जेलयात्रा १९४१ और १९४२ में क्रमशः १ माह व १ वर्ष की।

श्री कपूरचन्द जैन, संदपुर, जि० ललितपुर (जन्म १९२१ ई०), जेलयात्रा १९३१ में ६ माह की तथा २५ रु० जुर्माना। श्री विजय कृष्ण शर्मा के साथ क्रान्तिकारी आन्दोलन में भी भाग लिया। १९४८-४९ में प्रान्तीय रक्षा दल में रहे।

श्री घनश्याम दास, लुहरी जि० ललितपुर (जन्म १९४२ ई०), जेलयात्रा १९४२ में, ६ माह की कैद।

पं० फूलचन्द, सिलावन जि० ललितपुर (जन्म सं० १९५७), जेलयात्रा १९४१ में १ मास की सजा तथा १०० रु० जुर्माना।

श्री अभिनन्दन कुमार टड़ैया, ललितपुर——जेलयात्रा १९४२ में १ वर्ष की तथा १००) अर्थ-दण्ड। आप ललितपुर-झांसी के प्रसिद्ध वकील भी हैं।

श्री ताराचन्द कजिया वाले, ललितपुर——(जन्म १९२० ई०) जेल यात्रा, १९४२ में १ वर्ष की सजा तथा १०० रु. का अर्थ-दण्ड।

प्रो० खुशाल चन्द, गोरा जि० ललितपुर——(जन्म १९१३ ई०) वर्तमान में प्राध्यापक काशी विद्यापीठ, जेलयात्रा १९४१, १९४२। अपने पूर्वज चिंतामणि शाह तथा उमराव शाह की भांति इन्होंने भी अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों का सदैव के लिए अंत करने के लिए १९३० से ही बानर सेना के रूप में कार्य प्रारम्भ किया। तीसरे व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय आप उत्तर प्रदेश कांग्रेस के संगठन मंत्री थे, ढाई मास तक हैलटशाही से जूझते हुए २५ जलाई १९४१ को नजरबंद हुए, १ फरवरी १९४२ में जेल से छूटने के बाद 'भारत छोड़ो आंदोलन' में सक्रिय भाग लेने पर पुनः जेल का पंक्षी जेल में ३ सितम्बर १९४२ को भेज दिया गया; जहाँ से अंत में १९४४ को छूटे।

श्री कुन्दनलाल मलैया, साढूमल, ललितपुर—जेलयात्रा, सन् १९४१ में ६ माह की तथा १०० रु. का अर्थ दण्ड एवं १९४२ में १ वर्ष की सजा तथा १०० रु. का अर्थ-दण्ड। मलैया जी उन सपूतों में अग्रणी हैं जिन्होंने देश को आजाद कराने में अपना तन-मन-धन होम किया था।

श्री शिवप्रसाद जैन जाखलौन, जि० ललितपुर—सन् ४२ में ९ माह नजरबंद।

श्री दुलीचन्द जैन, तालबेहट, जिला ललितपुर—जेलयात्रा, १९४१ में ६ माह की सजा।

श्री मोतीलाल टड़ैया, ललितपुर—जेलयात्रा, ९९४२ में १ वर्ष का कठोर कारावास व १०० रु० का आर्थिक-दण्ड।

श्री डालचन्द जैन, मंडावरा, जि० ललितपुर—जेल यात्रा, १९४२ में १ वर्ष की कठोर सजा।

इनकी देशभक्त जननी अर्थाभाव के कारण स्वयं जीविकोपार्जन में तिल-तिल आहुती देती रहीं और पुत्र को सदैव देश पर प्राणोत्सर्ग करने की प्रेरणा में गति देती रहीं।

श्री भैयालाल परवार, सैदपुर, जि० ललितपुर—१९४१ में एक माह की सजा तथा सौ रु० का अर्थ-दण्ड।

श्री गोकुलचन्द जैन, लड़बारी बार, जि० ललितपुर—१९४१ में १ माह की सजा तथा १०० रु० का अर्थ-दण्ड।

श्री परमानन्द, बार, जि० ललितपुर—१९४१ में १ माह की सजा, ५० रु० का अर्थदण्ड।

श्री शीतल प्रसाद, करोंदा जि० ललितपुर—१९३२ में ६ माह की सजा। ग्रामीण नेता के रूप में आप सदैव संघर्ष का नेतृत्व करते रहे।

श्री हरिश्चन्द्र जैन, अध्यापक, ललितपुर—(जन्म १९१८) सन् १९४१ से मंडल कांग्रेस कमेटी के उत्साही एवं सक्रिय सदस्य रहे।

श्री ताराचन्द्र जैन, ललितपुर—ने भी स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया।

जिला झांसी

बा० शिव प्रसाद, जाखलौन—सन् ३४ ई० में कांग्रेस में आये, सन् ३७ ई० में जाखलौन के जमींदार ने बेगार नहीं देने की वजह से किसानों को तंग किया और उनके जलाने के लिए जंगल से लकड़ी देना भी बंद कर दिया तो शिव प्रसाद जी ने २०० किसानों कों साथ लेकर आबादी जंगल कटवा दिया। जंगल पर जमींदार अपने सिपाहियों के साथ मय बंदूकों के गये, कलक्टर झांसी को भी तार दिया, किन्तु कांग्रेस की जीत हुई। कुम्हारों से भी जागीरदार ने बेगार में बर्तन मांगे तो उन्होंने मिट्टी खोदना बन्द कर दिया। शिवप्रसादजी ने कुम्हारों का साथ दिया, और इनकी ही जीत हुई। सन् ४० से सरकारी पंचायत बोर्ड के ३ साल तक सरपंच रहे। सन् ३४ ई० से ही स्थानीय कांग्रेस कमेटी के प्रेसीडेन्ट रहे।

भाई राजधर जैन, जाखलौन—सन् ३० ई० ले कांग्रेस में आये। यहां कांग्रेस की नींव आप ही ने डाली और सन् ३२ से उक्त कांग्रेस कमेटी के मन्त्री रहे। सन् ४२ ई० के आन्दोलन में आप व बाबू शिवप्रसाद जी साथ ही साथ जेल गये और ११ माह बाद छूटे। सरकारी पंचायत बोर्ड के भी ३ साल तक पंच रहे। सन् ३७ ई० में जंगल कटवाने व कुम्हारों को मिट्टी खुदवाने में भी आपने अच्छा कार्य किया।

विशम्भर दास गार्गीय—झांसी नगर की जैन समाज के के नेता, उग्र समाज सुधारक और राष्ट्र सेवी सज्जन थे।

पं. फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री—सन् १९४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय आप को एक जोरदार भाषण के सिलसिले में ललितपुर में गिरफ्तार कर लिया गया और ३ माह का कठोर कारावास तथा १००) का अर्थ-दण्ड हुआ। जैन विद्यालय बनारस के छात्रों को उस आन्दोलन में काफ़ी स्फूर्ति देते रहे।

वाराणसी जिला

प्रो० खुशाल चन्द एम० ए० साहित्याचार्य—२८ वर्ष का यह युवक सन् ४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह में तूफान की तरह प्रसिद्धि में आया और आते ही प्रान्तीय नेताओं की अगली पंक्ति में जा पहुंचा। कांग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन के मुख्य संचालक और संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी के रूप में प्रान्त की उल्लेखनीय राष्ट्रीय सेवा की। जुलाई सन् ४१ में पकड़े गये और दो माह नजरबन्द रहे तथा चार माह की सजा भुगती। सन् ४२ के आन्दोलन में नेताओं की गिरफ्तारी के समय भी गिरफ्तार कर लिये गये और कई वर्ष तक सरकार के मेहमान रहे। यहां से निकलने के बाद भी आप कांग्रेस में सक्रिय कार्य करते आ रहे हैं।

श्री अमोलक चन्द्र वकील—सन् ३० का द्वितीय स्वतन्त्रता संग्राम प्रारम्भ होते ही इस युवक वकील ने सब ही राजनैतिक मुकदमे मुफ्त लड़े। फलतः नौकरशाही की नजरों में खटके। जेल में हुए अत्याचारों के भण्डाफोड़ को लेकर सरकार ने इन पर मुकदमा चलाया और ५००) अर्थदण्ड दिया। सन् ३७ में श्री गोविन्द बल्लभ पन्त की अध्यक्षता में हुए जिला राजनैतिक सम्मेलन के प्रधान मंत्री हुए। इसके बाद सन् ३८-३९ में आप युक्त प्रान्त के शिक्षामंत्री बा० सम्पूर्णानन्द जी के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। सन् १९४२ में आपने व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लिया और ६ मास का कारावास तथा १०० रुपया अर्थ दण्ड भोगा।

अगस्त आंदोलन और स्याद्वाद विद्यालय, काशी—सन् ४२ के अगस्त आन्दोलन में स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी, जो अपने प्रकार का एक प्रमुख जैन विद्यालय है, के छात्रों ने प्रशंसनीय भूमिका अदा की, और जलसे, जुलूस, तोड़फोड़, हड़ताल, ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचार—सभी प्रवृत्तियों में उत्साह के साथ सक्रिय भाग लिया। फलस्वरूप विद्यालय पर खुफिया पुलिस का कड़ा पहरा बैठ गया। इन छात्रों में प्रमुख थे शीतल प्रसाद (बड़ागाँव, जि० मेरठ), घनश्यामदास, रतन चन्द्र पहाड़ी, धन्य कुमार, हरीन्द्र भूषण, नाभि नन्दन, बालचन्द, दयाचन्द्र, सुगन चन्द, गुलाब चन्द, अमृत लाल आदि जिनमें से अनेकों ने पुलिस द्वारा दी गई कड़ी यातनाएं तथा कारावास आदि भुगते।

लखनऊ जिला

लखनऊ नगर में श्री जिनेन्द्रचन्द्र कागजी कुछ समय तक कांग्रेस के कार्यकर्त्ता और खादी के प्रचारक रहे हैं।

ऊपर उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों, नगरों, कस्बों या ग्रामों के निवासी जिन राष्ट्रसेवी देशभक्त स्वतन्त्रता सेनानियों का सांकेतिक परिचय दिया गया है, उनके अतिरिक्त भी प्रदेश के अन्य सहस्त्रों जैनों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उक्त संग्राम में भाग लिया, स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए विविध त्याग किये, कष्ट और कठिनाइयाँ सहीं। जो विशेष उल्लेखनीय थे और जिनके विषय में कुछ निश्चित रूप से ज्ञात हो सका, उन्हीं का उल्लेख ऊपर किया गया है।
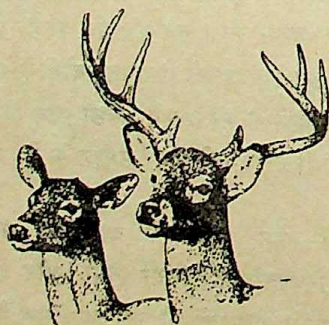
उत्तर प्रदेश की जैन संस्थाएँ

अखिल भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक संगठन

	कार्यालय
१. भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद	—मेरठ
२. भारतीय दिगम्बर जैन संघ	—मथुरा
३. अखिल विश्व जैन मिशन (प्रधान संचालक डा० ज्योति प्रसाद जैन, लखनऊ)	—अलीगंज
४. अखिल भारतीय दि० जै० विद्वत्परिषद	—वाराणसी
५. भा० दि०जै० शास्त्रि परिषद	—फिरोजाबाद
६. भारतीय जैन मिलन	—देहरादून
७. भा०जीवदया प्रचारिणी सभा	—आगरा

इनके अतिरिक्त प्रान्तीय, जातीय (जैसवाल सभा, पद्मावत पुरवाल सभा आदि), साम्प्रदायिक (श्वेताम्बर, स्थानकवासी आदि) जैसे संगठन भी प्रदेश में हैं, तथा प्रदेश के कई स्थानों में भा. दि. जैन परिषद, विश्व जैन मिशन, जैन मिलन, भा. जैन महामंडल जैसी अखिल भारतीय संस्थाओं की शाखाएँ भी स्थापित हैं।

शिक्षा संस्थाएँ

(क) संस्कृत विद्यालय—१. स्याद्वाद महाविद्यालय भदैनी, वाराणसी
२. संस्कृत विद्यालय, साढूमल, जिला ललितपुर
३. संस्कृत जैन पाठशाला, बरवासागर, जिला झांसी

(ख) गुरुकुल-आश्रम—१. ऋषभब्रह्मचर्याश्रम, चौरासी, मथुरा
२. दि० जैन गुरुकुल, हस्तिनापुर, जिला मेरठ

(ग) शोध संस्थान—१. पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी
२. वर्णी शोध संस्थान, वाराणसी
३. जैन साहित्य शोध संस्थान, आगरा
४. अहिंसा शोध संस्थान, अलीगंज
५. जैन विद्या शोध संस्थान, लखनऊ

(घ) डिग्री कालिज—बड़ौत, बिजनौर, नजीबाबाद (एक पुरुष एवं एक महिला कालेज), सहारनपुर, आगरा, फ़िरोजाबाद, खतौली और पावानगर में जैन डिग्री कालिज (स्नातक एवं स्नातकोत्तर महाविद्यालय) हैं।

(ङ) माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालय—प्रदेश के विभिन्न स्थानों में लगभग २५-३० जैन हाई स्कूल एवं इण्टरमीडिएट कालिज हैं।

(च) प्राथमिक शालाएं—प्रदेश के विभिन्न स्थानों में लगभग एक सौ जूनियर या प्राइमरी स्कूल, मान्टेसरी या किन्डरगार्टन स्कूल, अथवा प्राथमिक पाठशालाएँ हैं।

(छ) **छात्रालय**—पूर्वोक्त विद्यालयों, कालेजों और स्कूलों से सम्बद्ध छात्रावासों के अतिरिक्त जैन होस्टल इलाहाबाद, जैन बोर्डिंग हाउस मेरठ, जैन बोर्डिंग हाउस आगरा और सन्मति निकेतन वाराणसी उल्लेखनीय हैं।

(ज) **छात्रवृत्ति फंड**—मूलतः नजीबाबाद निवासी श्री साहू शान्तिप्रसाद जी एवं साहू रमेशचन्द्र जी द्वारा स्थापित वृहत्छात्रवृत्ति फंडों के अतिरिक्त मेरठ में दो छात्रवृत्ति फंड कार्य कर रहे हैं। अन्यत्र भी व्यक्तिगत रूप में अनेक सज्जन निर्धन छात्रों की सहायतार्थ छात्रवृत्तियाँ देते हैं।

(झ) **पुस्तकालय**—प्रदेश में उच्च कोटि का केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय कोई जैन पुस्तकालय नहीं है, किंतु प्रायः सभी नगरों एवं कस्बों में जहाँ जैनों की अच्छी बस्ती है, एक या अधिक सार्वजनिक जैन पुस्तकालय चल रहे हैं।

(ञ) **शास्त्र भंडार**—प्रायः प्रत्येक बड़े तथा अपेक्षाकृत पुराने जैन मंदिर में एक छोटा या बड़ा शास्त्र भंडार रहता आया है। आगरा, मेरठ शहर, फिरोजाबाद, बाराबंकी, खुर्जा, सहारनपुर, लखनऊ आदि के मंदिरों में अच्छे शास्त्र भंडार हैं, जिनमें सैकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहीत हैं—इनमें से कई तो अप्रकाशित ही नहीं अलभ्य एव महत्वपूर्ण भी हैं।

(ट) **ग्रन्थमालाएँ एवं प्रकाशन संस्थाएँ**—श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित भारतीय ज्ञानपीठ और उसकी लोकोदय एवं मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमालाओं का मुख्य कार्यालय मूलतः वाराणसी में ही था। अब कार्यालय दिल्ली में स्थानान्तरित हो गया है किन्तु वाराणसी में भी उसका एक प्रधान अंग बना हुआ है। वाराणसी में ही वर्णी ग्रन्थमाला, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट ग्रन्थमाला, पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला स्थापित हैं। जैन मिशन कार्यालय अलीगंज, भा. दि. जैन संघ मथुरा व भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद बड़ौत भी अच्छी प्रकाशन संस्था हैं। मेरठ सदर में सहजानन्दवर्णी ग्रन्थमाला का कार्यालय है तथा मेरठ शहर में वीर निर्वाण भारती ग्रन्थमाला स्थापित है। आगरा में सन्मति ज्ञानपीठ लोहा मण्डी अच्छी प्रकाशन संस्था है। अन्यत्र भी कई छोटी-बड़ी ग्रन्थमालाएँ एवं धर्मार्थ साहित्य प्रकाशन संस्थाएँ चल रही हैं। इनके अतिरिक्त प्रतिवर्ष व्यक्तिगत रूप से सैकड़ों पुस्तकें लोग प्रकाशित कराकर वितरित करते रहते हैं।

(ठ) **धर्मशालएँ**—प्रायः प्रत्येक बड़े नगर या कस्बे में, जहाँ जैनों की अच्छी बस्ती है, एक या अधिक जैन धर्मशालाएँ हैं, जिनमें यात्रियों से कोई किराया या फीस नहीं ली जाती और उनकी सुविधा का यथासम्भव ध्यान रक्खा जाता है।

(ड) **औषधालय-चिकित्सालय**—अनेक स्थानों में धर्मार्थ जैन औषधालय, चिकित्सालय आदि चल रहे हैं। इनमें से अधिकांश आयुर्वेदिक हैं, कुछ होम्योपैथिक हैं और दो एक एलोपेथिक भी हैं। ललितपुर में एक नेत्र चिकित्सालय स्थापित किया जा रहा है। अलीगढ़ में एक प्रसूतिग्रह स्थापित हुआ है।

(ढ) दीन-दुखियों, अपाहिजों, विधवाओं और बेरोजगारों की सहायता के लिए व्यक्तिगत रूप से कई स्थानों में व्यवस्था है, किन्तु कोई सुगठित एवं व्यापक महत्त्व का कार्य अभी इस दिशा में नहीं हो रहा है। 'महावीर जन कल्याण निधि' जैसी योजना की ऐसे जनहित के कार्यों के लिए बड़ी आवश्यकता है।

(ण) कई नगरों में राहत कार्यों एवं विशेष अवसरों पर जनसेवा हित कार्य करने वाले युवकों के स्वयंसेवक दल भी गठित हैं, किन्तु ये भी जितने और जैसे होने चाहिए, नहीं हैं।

इस प्रकार सामाजिक चेतना, शिक्षा प्रचार एवं प्रसार और सार्वजनिक हित के कार्यों में प्रदेश के जैन, अपनी संख्या के अनुपात को देखते हुए, सन्तोषजनक रूप में प्रयत्नशील कहे जा सकते हैं।

उत्तर प्रदेश में जैनों की वर्तमान स्थिति

—श्री रमाकान्त जैन

चौबीस में से अठारह तीर्थंकरों की जन्मभूमि होने का गौरव पाने वाला भारतीय गणतन्त्र का जनसंख्या की दृष्टि से सबसे विशाल यह राज्य उत्तर प्रदेश इतिहास काल के प्रारम्भ से ही आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ और तदनन्तर हुए तेइस अन्य तीर्थंकरों के अनुयायियों से युक्त रहा है। वर्तमान में मुख्यतया वैश्य वर्ण में सीमित जैन-मतावलम्बी इस प्रदेश में अग्रवाल, ओसवाल, खन्डेलवाल, खरौआ, जैसवाल, परवार, पल्लीवाल, गंगवाल, गंगेरवाल, गोलालारे, पद्मावती पुरवाल, बुढ़ेलवाल, लमेचू, श्रीमाल आदि विभिन्न जातियों के हैं। दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानक वासी, तेरापन्थी इत्यादि जैन धर्म के वर्तमान सभी सम्प्रदायों और उपसम्प्रदायों के भक्त श्रावक इस प्रदेश में निवास करते हैं। यह अवश्य है कि उन सब में दिगम्बर सम्प्रदाय वालों की संख्या सर्वाधिक है। अहिंसा परमोधर्मः को मानने वाले परम शाकाहरी और अणुव्रतों का यथाशक्ति अनुपालन करने वाले जैनी जन यद्यपि यहाँ मुख्यतया व्यापार एवं उद्योग-धन्धों में रत हैं, किन्तु इन्जीनियरिंग, डाक्टरी, वकालत और शिक्षण कार्य करने वालों में उनकी संख्या कम नहीं है। राजकीय सेवा में भी विभिन्न विभागों और ओहदों पर वे पदासीन हैं—शायद ही कोई ऐसा विभाग हो जहाँ जैन न हों। इनमें अनेक त्यागी-व्रती, समाज सुधारक, देशभक्त स्वतन्त्रता-सेनानी, साहित्य मनीषी, विद्वान, विचारक और पत्रकार भी हैं जो अपने-अपने क्षेत्रों में लब्ध प्रतिष्ठ हैं। विद्या का ॐ नमः न कर पाने वाले दुर्भाग्यशालियों की संख्या जैनों में नगण्य है और उनकी सम्पन्नता के सौभाग्य की ख्याति उन्हें दूसरों की ईर्ष्या का पात्र बनाती रही है। तभी तो किंग्सले डेविस ने अपनी पुस्तक "पापुलेशन ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान" में जनगणना सम्बन्धी आंकड़ों का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि जनसंख्या के आधार पर जैन धर्म भारत का छठा बड़ा धर्म है और साक्षरता की दृष्टि से जैन धर्मानुयायी इस देश में तीसरे स्थान पर हैं तथा सम्पन्नता की दृष्टि से भी पारसी और यहूदियों के उपरान्त इन्हीं का स्थान है।

वर्तमान में इस प्रदेश में कितने जैनी-जन कहां-कहां निवास करते हैं इसकी सूचना हमें जनगणना के आंकड़ों से मिलती है। भारत सरकार द्वारा हर दस वर्ष पर सम्पूर्ण देश में कराई जाने वाली जनगणना के आंकड़ों को देखने से विदित होता है कि ५० वर्षों में, सन् १९२१ ई० की जनगणना से सन् १९७१ ई० की जनगणना पर्यन्त, इस प्रदेश में जैनों की संख्या ६८,१११ से बढ़कर १,२४,७२८ हो गई। यह संख्या सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या, जो १९७१ ई० में ८,८३,६४,७७९ थीं, का केवल ०.१४ प्रतिशत होते हुए भी अनुयायियों की संख्या के

आधार पर जैन धर्म का इस प्रदेश में हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई धर्म के अनन्तर पांचवां स्थान है। महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश और मैसूर (वर्तमान कर्णाटक) राज्यों के बाद सर्वाधिक जैन मतावलम्बी उत्तर प्रदेश राज्य में निवास करते हैं और उनकी संख्या भारतीय गणतन्त्र में जैनों की कुल संख्या (२६,०४,६४६) का ४.७९ प्रतिशत है।

आगे रजिस्ट्रार जनरल आफ इण्डिया, नई दिल्ली, द्वारा "सेंसस आफ इण्डिया, १९७१–रिलीजन, पेपर नं० २ ऑफ १९७२" में प्रकाशित आंकड़ों के आधार पर उत्तर प्रदेश के समस्त मंडलों और जिलों में तथा उनके नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले जैन स्त्री-पुरुषों की संख्या सूची दी जा रही है। इस तालिका को देखने से विदित होगा कि प्रदेश के कुल जैनों में ६५,६२३पुरुष तथा ५९,१०५ महिलाएं हैं। इनमें से ४६,१६१ पुरुष तथा ४०,९३५ नारियां नगरों में और १९,४६२ पुरुष एवं १८,१७० महिलाएं ग्रामों में निवास करती हैं। इस प्रकार इस प्रदेश में जैनों की संख्या का अधिकांश नगरों में निवास करता है।

देहरादून जिले की, जो कि अभी हाल ही में मेरठ मण्डल से निकालकर गढ़वाल मण्डल में सम्मिलित कर दिया गया है, जैन जनता को छोड़ भी देवें तो भी मेरठ मण्डल के अवशेष चार जिलों में रहने वाले जैनियों की संख्या (४९,४४५) अन्य सब मण्डलों से अधिक है। इस दृष्टि से दूसरे स्थान पर आगरा मण्डल है जहाँ संख्या ३५,३१५ है और तीसरे स्थान पर १६,८७० की संख्या लिए हुए झांसी मण्डल है। दस हजार से अधिक जैन जनसंख्या वाले जिले केवल चार हैं जिनमें प्रथम स्थान मेरठ (२७,६६५), द्वितीय आगरा (२१,२५५), तृतीय झांसी (नवसृजित जिला ललितपुर सहित) (१६,००५) तथा चतुर्थ मुजफ्फरनगर (१२,१५१) जिले का है। जैन जनगणना की दृष्टि से भारतीय गणतन्त्र के समस्त जिलों में भी इन जिलों की स्थिति क्रमशः २१वें, ३३वें, ४९वें तथा ५७वें स्थान पर है। दस हजार से कम किन्तु एक हजार से अधिक जैन जनसंख्या वाले जिले १३ हैं। इनके नाम संख्या के आधार पर क्रमशः निम्नवत हैं :

क्र० सं०	नाम जिला	जैन जन संख्या
१.	सहारनपुर	८,४३०
२.	मैनपुरी	५,५९३
३.	एटा	४,१८४
४.	कानपुर	३,६३७
५.	अलीगढ़	३,०४१
६.	देहरादून	३,०२३
७.	इटावा	२,८९६
८.	बाराबंकी	१,७८३
९.	मुरादाबाद	१,७०१
१०.	लखनऊ	१,५६९
११.	बिजनौर	१,२७६
१२.	मथुरा	१,२४२
१३.	बुलंदशहर	१,१९९

उपर्युक्त १७ (४+१३) जिलों में से बुलंदशहर, मथुरा और बाराबंकी जिलों को छोड़कर शेष १४ जिलों के नगरीय क्षेत्रों में ही एक सहस्त्र से अधिक जैनी जन निवास करते हैं। ऐसे जिले जिनके ग्रामीण क्षेत्रों में भी उनकी संख्या एक सहस्त्र अथवा अधिक हैं, आठ हैं। इनके नाम हैं :—मेरठ, झांसी, आगरा, मुजफ्फरनगर, मैनपुरी, एटा, सहारनपुर और बाराबंकी। सबसे कम जैन जनसंख्या वाला जिला गाजीपुर है तथा सबसे कम नगरीय जैन जन संख्या उत्तर काशी जिले में है। ग्यारह जिले ऐसे भी हैं जिनके ग्रामीण क्षेत्रों में जैनों की संख्या सूचित नहीं की गई है। किसी स्थान विशेष की कुल जन संख्या के अनुपात में जैनों की संख्या के आधार पर प्रदेश के जिलों में झांसी जिला, नगरों में मुजफ्फरनगर तथा ग्रामीण क्षेत्रों में झांसी जिले का ग्रामीण क्षेत्र अग्रणी स्थान रखते हैं।

इन आंकड़ों से एक बात स्पष्ट है कि जैनी जन पूर्वी भाग की अपेक्षा इस राज्य के पश्चिमी भाग में अपने को केन्द्रित किये हुये हैं। सम्पूर्ण भारत के रंगमंच की भी यही स्थिति है। पश्चिमी भारत ही इनका मुख्य गढ़ है। अतः हमारा राज्य भी उसका अपवाद कैसे बनता ?

सन् १९६१ ई० की जनगणना के समय उत्तर प्रदेश राज्य की कुल जन संख्या ७,३७,४६,४०१ थी और उसमें जैनों की संख्या १,२२,१०८ अर्थात् ०.१७ प्रतिशत थी। यद्यपि सन् १९६१ ई० से सन् १९७१ ई० के मध्य दस वर्षों में प्रदेश की जन संख्या में १९.८२ प्रतिशत की वृद्धि हुई, प्रदेश की जैनों की जन संख्या में केवल २.१५ प्रतिशत ही रही। उससे पूर्व १९५१ से १९६१ की जनगणना के मध्य यह वृद्धि २४.९३% थी। जन संख्या में बृद्धि होने की दर में इस भारी कमी के परिलक्षित होने का कारण इस अवधि में जैनों का धर्म परिवर्तन, प्रदेश से बहिर्गमन अथवा उनकी मृत्युदर का बढ़ना नहीं है, अपितु राष्ट्रीय कार्यक्रम परिवार-नियोजन में सक्रिय योग देकर जन्मदर घटाने का स्तुत्य प्रयास प्रतीत होता है। यह भी संभव है कि जनगणना कर्मचारियों की अनभिज्ञता अथवा असावधानीवश तथा कहीं-कहीं स्वयं जैनों द्वारा इस मामले में बरती गई उदासीनता के कारण प्रगणकों द्वारा उनमें से अनेकों को भ्रमवश हिंदू धर्मानुयायियों में लिख लिया गया हो और उनकी सही गणना न हो पाई हो। इस संभावना का आधार यह है कि कई स्थानों पर जनगणना रिपोर्ट में दिखाये गये आंकड़ों से अधिक संख्या में जैनी जन पाये जाते हैं।

भगवान महावीर की परम्परा के अनुयायी ये श्रावक आज उनके निर्वाण के ढाई सहस्र वर्ष बाद भी उनके जीवन से प्रेरणा ग्रहण करते हुए और उनके उपदेशों के यत्किंचित् अनुपालन का प्रयास करते हुए एक सद्नागरिक का आदर्श उपस्थित करते हैं। अपनी स्वल्प संख्या और सीमित संसाधनों के साथ वे अपने धर्म और समाजों की ही नहीं, सम्पूर्ण प्रदेश और देश की भी सर्वतोमुखी उन्नति के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। यही कारण है कि ये श्रमणो-पासक समग्र भारतीय समाज में एक सम्माननीय स्थान प्राप्त किये हुए हैं।

उत्तर प्रदेश की जैन जनसंख्या सूची

मण्डल/जिले का नाम	पूर्ण योग	कुल संख्या		नगरीय क्षेत्र		ग्रामीण क्षेत्र	
		पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
१. गढ़वाल मण्डल							
१. उत्तर काशी	१४८	८६	६२	२	—	८४	६२
२. चमोली	१६	८	८	८	८	—	—
३. टिहरी गढ़वाल	९७	५०	४७	५०	४७	—	—
४. गढ़वाल	१६९	७५	९४	४६	७२	२९	२२
५. देहरादून	३०२३	१८१२	१२११	१६७३	१०५३	१३९	१५८
योग	३४५३	२०३१	१४२२	१७७९	११८०	२५२	२४२
२. कुमायूँ मण्डल							
६. पिथौरागढ़	६	५	१	२	१	३	—
७. अल्मोड़ा	२०	१४	६	१०	६	४	—
८. नैनीताल	३१२	१६७	१४५	१२६	१२१	४१	२४
योग	३३८	१८६	१५२	१३८	१२८	४८	२४
३. रुहेलखण्ड मण्डल							
९. बिजनौर	१२७६	६५०	६२६	६२१	६११	२९	१५
१०. मुरादबाद	१७०१	८७३	८२८	६८०	६४३	१९३	१८५
११. बदायूं	५३९	३४१	१९८	२८३	१४९	५८	४९
१२. रामपुर	५३४	३०३	२३१	१७८	१४२	१२५	८९
१३. बरेली	३०५	१६६	१३९	१४३	१२३	२३	१६
१४. पीलीभीत	२८	१७	११	१७	११	—	—
१५. शाहजहांपुर	७७	३७	४०	२५	३३	१२	७
योग	४४६०	२३८७	२०७३	१९४७	१७१२	४४०	३६१
४. मेरठ मण्डल							
१६. सहारनपुर	८४३०	४४११	४०१९	३७४९	३४३३	६६२	५८६
१७. मुजफ्फरनगर	१२१५१	६४३४	५७१७	४०८८	३४९६	२३४६	२२२१
१८. मेरठ	२७६६५	१४११५	१३५५०	९१२१	८५९७	४९९४	४९५३
१९. बुलन्दशहर	११९९	६२२	५७७	३७४	३६७	२४८	२१०
योग	४९४४५	२५५८२	२३८६३	१७३३२	१५८९३	८२५०	७९७०

मण्डल/जिले का नाम	कुल योग	कुल संख्या		नगरीय क्षेत्र		ग्रामीण क्षेत्र	
		पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
५. आगरा मण्डल							
२०. अलीगढ़	३०४१	१४६३	१५७८	१२३३	१२१६	२३०	३६२
२१. मथुरा	१२४२	६६६	५७६	५३०	४३०	१३६	१४६
२२. आगरा	२१२५५	११७४७	९५०८	९२८२	७३६५	२४६५	२१४३
२३. एटा	४१८४	२१०५	२०७९	१३०७	११४५	७९८	९३४
२४. मैनपुरी	५५९३	२८३३	२७६०	१७६४	१८५७	१०६९	९०३
योग	३५३१५	१८८१४	१६५०१	१४११६	१२०१३	४६९८	४४८८
६. इलाहाबाद मण्डल							
२५. फर्रुखाबाद	७१३	३७२	३४१	३४७	३२३	२५	१८
२६. इटावा	२८९६	१५४८	१३४८	१२६२	११०२	२८६	२४६
२७. कानपुर	३६३७	१८६८	१७६९	१८६६	१७६३	२	६
२८. फतेहपुर	१५२	८१	७१	१६	१८	६५	५३
२९. इलाहाबाद	८४६	४५६	३९०	२३९	२०१	२१७	१८९
योग	८२४४	४३२५	३९१९	३७३०	३४०७	५९५	५१२
७. झांसी मण्डल							
३०. झांसी	१६००५	८४२९	७५७६	४१८६	३८५४	४२४३	३७२२
३१. ललितपुर							
३२. जालौन	१५२	७८	७४	३७	३४	४१	४०
३३. हमीरपुर	२१६	११५	१०१	८०	६९	३५	३२
३४. बान्दा	४९७	१९२	३०५	१९२	२९७	—	८
योग	१६८७०	८८१४	८०५६	४४५०	४२१७	४३६४	३८३९
८. लखनऊ मण्डल							
३५. खीरी]	१७३	९३	८०	५०	५३	४३	२७
३६. सीतापुर]	४३२	२१८	२१४	१७७	१७७	४१	३७
३७. हरदोई	९५	५१	४४	५१	४४	—	—
३८. उन्नाव	१८	१०	८	६	५	४	३
३९. लखनऊ	१५६९	८०५	७६४	८०३	७६१	२	३
४०. रायबरेली	१८८	८५	१०३	७०	८५	१५	१८
योग	२४७५	१२६२	१२१३	११५७	११२५	१०५	८८

मण्डल/जिले का नाम	कुल संख्या			नगरीय क्षेत्र		ग्रामीण क्षेत्र	
	पूर्ण योग	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
९. फैजाबाद मण्डल							
४१. बहराइच	३६५	१८३	१८२	१७०	१६५	१३	१७
४२. गोण्डा	५०	२७	२३	२४	१९	३	४
४३. बाराबंकी	१७८३	९१९	८६४	४१२	३७१	५०७	४९३
४४. फैजाबाद	३८	२४	१४	२३	१४	१	—
४५. सुल्तानपुर	६	२	४	२	४	—	—
४६. प्रतापगढ़	१४	६	८	६	८	—	—
योग	२२५६	११६१	१०९५	६३७	५८१	५२४	५१४
१०. गोरखपुर मण्डल							
४७. बस्ती	४१	२१	२०	२१	२०	—	—
४८. गोरखपुर	१४८	८०	६८	७९	६७	१	१
४९. देवरिया	५५	३०	२५	२६	२१	४	४
५०. आजमगढ़	१६	१०	६	१०	६	—	—
योग	२६०	१४१	११९	१३६	११४	५	५
११. वाराणसी मण्डल							
५१. जौनपुर	१२	९	३	९	३	—	—
५२. बलिया	४	२	२	२	२	—	—
५३. गाजीपुर	३	३	—	३	—	—	—
५४. वाराणसी	९१५	५३१	३८४	४६६	३४४	६५	४०
५५. मिर्जापुर	६७८	३७५	३०३	२५९	२१६	११६	८७
योग	१६१२	९२०	६९२	७३९	५६५	१८१	१२७
उत्तर प्रदेश	१,२४,७२८	६५६२३	५९१०५	४६१६१	४०९३५	१९४६२	१८१७०
				८७०९६		३७६३२	
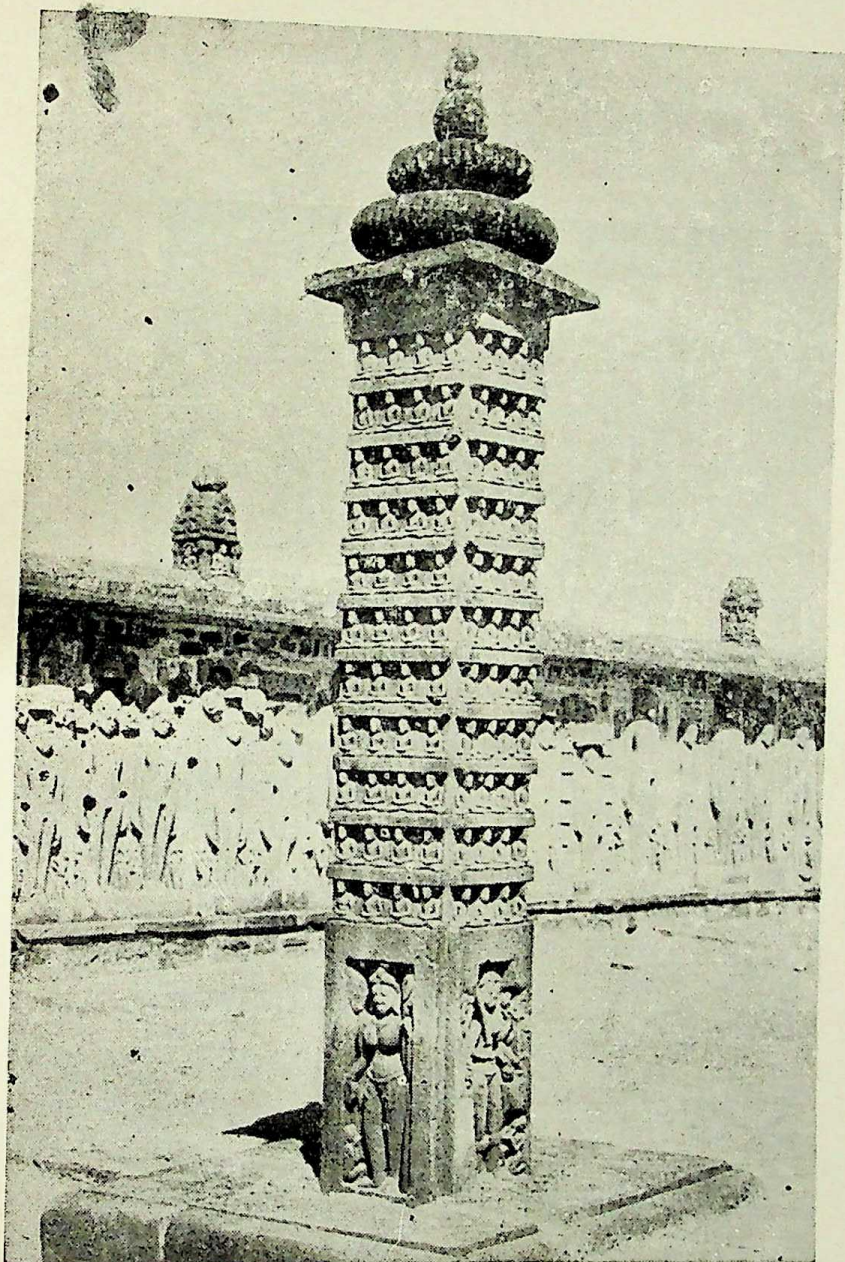
९—मानस्तम्भ (१७६ जिनमूर्तियों के अंकन से युक्त), देवगढ़

८—भगवान महावीर (गुप्तकालीन प्रतिमा), कंकाली टीला, मथुरा

उत्तर प्रदेश में तीर्थंकर महावीर

—डा० शशि कान्त

(१)

हम आपको आज से २५०० वर्ष पहले के उत्तर प्रदेश में ले जा रहे हैं। वर्तमान अवध के क्षेत्र में उस समय कोसल जनपद था। वहां राजा प्रसेनजित राज्य करता था। उसने राजतन्त्र को सुदृढ़ किया और कोसल को एक अत्यन्त समृद्ध एवं शक्तिशाली राज्य बना लिया। काशी जनपद पर विजय प्राप्त कर दक्षिण-पूर्व में स्थित कोलियों, बुलियों और शाक्यों की जनतान्त्रिक सत्ताओं को समाप्त कर राप्ती के पश्चिम और गंगा के, उत्तर सम्पूर्ण विशाल क्षेत्र में प्रसेनजित का राजतान्त्रिक एकाधिकार स्थापित हो चुका था।

प्रसेनजित वेदनिष्ठ ब्राह्मणों का आश्रयदाता था और वे उसके एकाधिकार के पोषक थे। उसकी राजधानी श्रावस्ती राप्ती नदी के पश्चिमी तट पर हिमालय की तलहटी में एक सुरम्य महानगर था। वहाँ सेठ अनाथपिंडिक और सेठ मृगार जैसे धनवान रहते थे जिनके पास धन की थाह नहीं थी।

श्रावस्ती के समीप ही नंगलर सन्निवेश था। यह वेदनिष्ठ ब्राह्मणों का केन्द्र था। ब्राह्मण-श्रेष्ठ अपने सैकड़ों अन्तेवासी ब्रह्मचारियों को वेदाभ्यास कराते थे और यज्ञ-कर्म में लीन रहते थे। सन्निवेश के बाहर यज्ञ-पशुओं का हाट था जिसमें वेद-विहित पंच-पशु बंधे होते थे और यजमान दाम चुकाकर अपने होतृ के लिए इन मूक पशुओं को यज्ञबलि हेतु ले जाते थे।

(पशुओं, बकरों, मेढ़ों की चीत्कार और बन्धन-मुक्त होने पर धमा-चौकड़ी)

(ब्राह्मणों एवं अन्तेवासियों द्वारा गायत्री मंत्र का पाठ—

ओं भूर्भुवा स्वाहा। तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि ध्योयोनः प्रचोदयात्।)

यजमान बिना यज्ञ-बलि के चले आ रहे हैं। अन्तेवासी चिन्तित हैं। हविर्अग्नि मन्द पड़ती जा रही है। विप्र-श्रेष्ठ पौष्करसादि अपने आसन से मन्त्र-पाठ जारी रखने का संकेत करते हैं।

अन्तेवासी व्यग्रता से निवेदन करते हैं—"आर्य श्रेष्ठ ! अग्निदेव रुष्ट हैं। बलि का समय निकला जा रहा है। यज्ञ भंग हो रहा है। यजमान पशु लाने में असमर्थ हैं।"

पौष्करसादि—प्रसेनज़ित के राज्य में अग्निदेव शान्त रहेंगे। यज्ञ विधि-पूर्वक होगा। अग्नि को पंच-पशु की बलि मिलेगी। यजमान पशु प्रस्तुत करें।

यजमान (सामूहिकनाद)—"विप्र-श्रेष्ठ ! क्षमा करें। आज हाट खाली है। एक बकरा भी नहीं हैं। सभी पशु श्रेष्ठि मृगार ने प्रत्यूष काल में ही क्रय करके बन्धन मुक्त कर दिये।"

पौष्करसादि—"असम्भव ! श्रेष्ठि मृगार धार्मिक है, धर्म कार्य में बाधा नहीं देगा।"

एक यजमान—"हाँ महाराज। वह कहता है पशुओं को बन्धन मुक्त करना धार्मिक है।"

(श्रेष्ठि मृगार अपने अनुचरों के साथ यज्ञ-भूमि में आता है। पालकी से उतर कर विनयपूर्वक विप्र-श्रेष्ठ को नमस्कार करता है और निवेदन की आज्ञा चाहता है। विप्र-श्रेष्ठ उठकर उसको "तथास्तु" कहते हैं और आसन देते हैं।)

श्रेष्ठि मृगार—"विप्र-श्रेष्ठ ! आपकी शंका का निवारण मेरे शास्ता कर सकते हैं। कल ही वह नगर के बाहर विहार करते हुए आये हैं। अग्निदेव को नैवेद्य अर्पण करें, वह प्रसन्न होंगे। यज्ञ-कार्य में व्यवधान न होने दें।"

पौष्करसादि—"श्रेष्ठि ! तू धार्मिक है। मैं तेरे शास्ता से अभी मिलना चाहता हूँ।"

(अन्तेवासियों से)—"घृत-नैवेद्य से अग्निदेव को शान्त करो। मंत्रोच्चार जारी रखो।"

(२)

मृगार और पौष्करसादि बस्ती से बाहर वन-प्रखण्ड के समीप एक तेजस्वी पुरुष को पद्मासन लगाये ध्यानमुद्रा में निमग्न देखते हैं। उसकी दृष्टि नासाग्र है और आँखें अधखुली हैं। अपने चतुर्दिक वातावरण से वह अलिप्त है और आत्मलीन है।

श्रेष्ठि और विप्र-श्रेष्ठ उसके सामने जाकर उसे नमस्कार करते हैं। वह तपस्वी उनकी शंका जानता है और नमस्कार के उत्तर में कहता है—

अज्झत्थं सव्वओ सव्वं, दिस्स पाणे पियामए ।
न हणं पाणिणो पाणे, भय-वेराओ उवरए ।।

तब पौष्किरसादि विचार करता है—"सभी प्राणियों में एक जैसी आत्मा है और सभी प्राणियों को अपना-अपना जीवन प्यारा लगता है। इसलिये भय और वैर की भावना का परित्याग कर किसी प्राणी को न तो मारा जाय और न तो उसे किसी प्रकार का कष्ट ही दिया जाये।"

मृगार—"हे विप्र-श्रेष्ठ ! मेरे शास्ता तीर्थंकर महावीर की वाणी तुमने सुनी और उसे विचारा। यज्ञ-कर्म में पशु-बलि धार्मिक नहीं है।"

पौष्करसादि—"श्रेष्ठि ! साधु-साधु ! अब मैं घृत-नैवेद्य से ही अग्नि को प्रसन्न करूंगा। मेरी शाला में पशु बलि नहीं होगी।"

(३)

वत्स जनपद की राजधानी कौशाम्बी यमुना नदी के उत्तरी तट पर एक अत्यन्त सम्पन्न महानगर था। राजा शतानीक की अजेय सेना भग्ग जनतंत्र को पराभूत कर चुकी थी और सोन नदी पार अंग के राजा दधिवाहन को परास्त कर तत्कालीन राजनीति में अपनी शक्ति का सिक्का जमा चुकी थी। कौशाम्बी की हाट में दासियों का क्रय-विक्रय विशेष आकर्षण का विषय होता था। दूर-दूर के देशों से लाये गये बन्दी युवक और युवतियाँ पशुओं की तरह बंधे खड़े होते थे। पुरुष की बलिष्ठता और स्त्री का रूप-लावण्य एवं अंग-सौष्ठव किसी मिट्टी के खिलौने की भाँति आँके और मोल-भाव किये जाते थे। एक व्यापारी आज एक ही रूपसी दासी बेचने आया था। वह शोडषी तन्वङ्गी थी, मुख लज्जा से क्लान्त था परन्तु अभिजातीय दमक से उद्दीप्त भी था। उसके खड़े होने की मुद्रा में एक संस्कारी नागरिकता झलक रही थी। एक ही वस्त्र इस प्रकार लपेट दिया गया था कि ग्राहक उसके हर अंग-उपांग का भरपूर निरीक्षण कर ले। व्यापारी ने उसका मूल्य एक सहस्र रौप्य कार्षापण नियत किया। व्यापारी को अपने माल के खरेपन का विश्वास था। उसने उद्घोष किया—"राजपुरुष, श्रेष्ठि और नागरिक ! इस अस्पृश्या तन्वङ्गी को देखें। भाग्यशाली ही इसे दासी रूप में ग्रहण कर सकेगा। एक सहस्र रौप्य कार्षापण मात्र उसकी स्वर्ण-बालुका सदृश रोम-राजि का ही मूल्य है।" ग्राहकों को आकर्षित करने के लिये वह अक्सर अपने दण्ड से बाला के अंग-उपांगों को संकेत करता था और लोलुप दृष्टियां बाला की क्लान्ति में वृद्धि करती थीं।

ग्राहक भौंरों की तरह उसके गिर्द मंडराते पर मूल्य सुनकर उदास हो चल देते। कौशाम्बी का विख्यात सेठ धन्ना भी अपनी दूसरी पत्नी मूला के लिये एक सहचरी दासी की खोज में था। उसने इस कन्या को देखा और क्रय कर लिया।

(४)

धन्ना एक अधेड़ सौम्य नागरिक है। उसे दूसरी पत्नी से भी सन्तान नहीं है। वह कन्या से कहता है—"भद्रे ! तू कुलीन वंशजा प्रतीत होती है, अपनी विपत्ति कह।"

दासी--"स्वामी ! मैं दासी हूँ। कुल नष्ट हो गया। शील की रक्षा करें।"

धन्ना--"भद्रे ! मैं संतान सुख से वंचित हूँ। तू मेरी पोषिता होगी। मेरी पत्नी को संतान-सुख दे।"

दासी--"पितृव्य, आपकी आज्ञा शिरोधार्य।"

इस प्रकार सेठ उस कन्या को अपनी पोषिता पुत्री बनाकर घर ले आया, परन्तु सेठानी मूला उसे सौत ही समझी और एक दिन सेठ की अनुपस्थिति में उसने उसे सिर मुड़ाकर, बेड़ी-हथकड़ी पहनाकर, दहलीज में बन्द कर दिया। तीन दिन के निराहार के बाद एक सूप में उड़द के कच्चे बाकले उसे खाने को दिये।

संयोग से उसी समय एक तपस्वी, जो छः माह से निराहार विचर रहा था, धन्ना के घर के सामने से निकला और उसने कन्या की यह करुण दशा देखी। कन्या ने उड़द के कच्चे बाकले ही साधु की ओर बढ़ा दिये और उस करुणा के अवतार ने उन्हें प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण कर लिया और कहा—

"दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं। अभितुर पारं गमिए।"

कन्या ने विचार किया—"मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है और सभी प्राणियों को दीर्घकाल के बाद प्राप्त होता है। इसी जन्म में मनुष्य संसार सागर से पार निकलने का यत्न कर सकता है। अतः जीवन-मरण के चक्र से मुक्त होने का यत्न करो।"

सेठ ने यह दृश्य देखा और विस्मय से कन्या को भी देखा। कन्या ने बताया—"मैं अंगराज दधिवाहन की पुत्री चन्दनबाला हूँ और वह तपस्वी तीर्थंकर महावीर हैं।"

चन्दनबाला अन्ततः महावीर के संघ में दीक्षित हो गई और आर्यिका या साध्वी संघ की प्रमुख बनी।

(५)

वत्स जनपद में ही तुंगिय सन्निवेश था जहाँ दत्त ब्राह्मण की यज्ञशाला थी। दत्त की पत्नी करुणा ने मेतार्य नामक पुत्र को जन्म दिया। मेतार्य अपने पिता का अनुगामी था और उसने शीघ्र ही सम्पूर्ण वेद-साहित्य का पारायण कर लिया एवं एक नैष्ठिक याजक बन गया। उसकी शाला में सैकड़ों अन्तेवासी थे। उसने अपने पिता से सुना था—"पूर्व भारत में एक श्रमण परम्परा है जो तपस्या पर बल देती है और याज्ञिक कर्मकाण्ड को व्यर्थ बताती है। श्रमण साधु बस्ती से बाहर ठहरते हैं, केवल एक बार आहार के लिये बस्ती में जाते हैं, एक स्थान पर तीन दिन से अधिक नहीं ठहरते, अपने पास परिग्रह नहीं रखते और अक्सर वस्त्र भी धारण नहीं करते, तप-संयम में दृढ़ रहते हैं और मांसाहार नहीं करते। वह जाति-पांति में विश्वास नहीं करते और सभी को उपदेश भी देते हैं और सभी से भिक्षा भी लेते हैं। वह वेद की निन्दा नहीं करते, ब्राह्मण की भी निन्दा नहीं करते, परन्तु वर्णाश्रम को गर्हित बताते हैं और कर्मकण्ड को वृथा बताते हैं।"

मेतार्य ने अपने अन्तेवासियों से सुना—"श्रमणों में अन्तिम तीर्थंकर के इस काल में होने की अनुश्रुति है और सात तपस्वी तीर्थंकरत्व का दावा करते हैं।"

मेतार्य ने पूछा—"कौन हैं वे तपस्वी और क्या है उनकी प्रकृति ?"

अन्तेवासी—"आर्य ! एक हैं कपिलवस्तु के शाक्य मुनि गौतम बुद्ध जो भोग और त्याग के मध्य का मार्ग दुख से मुक्ति के लिये बताते हैं। उनका एक संघ है और मगधराज बिम्बिसार तथा कोसलराज प्रसेनजित उनके भक्त हैं।

दूसरे हैं पूरन कास्सप जो अक्रियावाद का प्रतिपादन करते हैं। उनका कहना है कि दुष्कर्म से पाप और सत्कर्म से पुण्य नहीं होता क्योंकि इन कर्मों का आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं होता।

तीसरे हैं मक्खलि गोसाल जो नियतिवादी हैं। वे नग्न रहते हैं और उनके अनुयायी आजीवक कहलाते हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार सूत का गोला फेंकने पर उसके पूरी तरह खुल जाने तक वह आगे बढ़ता जायेगा, उसी प्रकार बुद्धिमानों और मूर्खों के दुखों का नाश तभी होगा जब वे संसार का समग्र चक्कर पूरा कर चुकेंगे।

चौथे हैं अजित केसकम्बलिन जो उच्छेदवादी हैं। उनका कहना है कि शरीर के भेद के पश्चात् विद्वानों और मूर्खों का उच्छेद होता है, वे नष्ट होते हैं, और मृत्यु के बाद उनका कुछ भी शेष नहीं रहता।

पांचवें हैं पकुध कच्चायन जो अन्योन्यवादी हैं। उनका कहना है कि पृथ्वी, अप, तेज, वायु, सुख, दुख एवं जीव, सात शाश्वत पदार्थ हैं जो किसी के किये, करवाये, बनवाये या बनाये हुए नहीं हैं।

छठे हैं संजय बेलट्ठिपुत्र जो विक्षेपवादी हैं। उनकी परलोक, कर्मफल और मृत्यु के बाद जीव की स्थिति के विषय में कोई निश्चित धारणा नहीं है।

सातवें हैं निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र वर्धमान महावीर। उनके अनुयायी उन्हें २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परम्परा का सूचित करते हैं। नग्न दिगम्बर रहते हैं और पांच महाव्रतों का कठोर पालन करते हैं। उनका चतुर्विध संघ हैं जिसमें मुनि, आर्यिका, श्रावक एवं श्राविकायें हैं। मुनिसंघ के प्रधान विप्रवर इन्द्रभूति गौतम हैं और आर्यिका संघ की प्रधान सती चन्दना हैं। मगधराज श्रेणिक-बिम्बिसार और उनकी रानी चेलना, वत्स की राजमाता मृगावती, अवन्ति की राज-महिषी, वज्जिसंघ के अधिनायक चेटक, मल्ल गण, श्रेष्ठि धन्ना, श्रेष्ठि मृगार, नागरिक सूरदेव और उसकी भार्या धन्या आदि गणमान्य नर-नारी उनके श्रावक-संघ और श्राविका-संघ के सदस्य हैं।"

मेतार्य—"साधु ! क्या इन्द्रभूति मगध देशीय वसुभूति गौतम का पुत्र है ?"

अन्तेवासी—"हां, विप्र-श्रेष्ठ !"

मेतार्य—"साधु ! क्या चन्दना वही देवी है जिसे एक तपस्वी ने बन्धनमुक्त किया था ?"

अन्तेवासी--"हाँ, विप्रवर ! और वह तपस्वी यही वर्धमान महावीर थे।"

मेतार्य--"साधु !"

अन्तेवासी--"विप्र-श्रेष्ठ ! कम्पिलपुर से कुन्दकौलित और उसकी भार्या पुष्पा आये हैं और यह समाचार लाये हैं कि निर्ग्रन्थ महावीर कौशाम्बी से विहार कर चुके हैं और कल इस सन्निवेश के निकट आयेंगे।"

मेतार्य--"कुन्दकोलित और उसकी भार्या को अतिथिशाला में विश्राम कराओ। कल हम सब अन्तेवासियों के साथ महावीर से भेंट करने चलेंगे।"

(६)

तुंगिय सन्निवेश के ईशानकोण में श्मशान के कोने पर महावीर कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानमग्न खड़े हैं। उनकी दृष्टि नासाग्र है, ओठों पर मन्द स्मित है और उनकी आभा से चतुर्दिक वातावरण में एक अपूर्व शान्ति है।

कुन्दकोलित और पुष्पा के साथ मेतार्य और उसके अन्तेवासी नमस्कार कर विनयपूर्वक खड़े हो जाते हैं। महावीर उनकी शंका का बोध कर लेते हैं और कहते हैं—

चउहिं ठाणेंहि जीवामणुस्सत्ताते कम्मं पगरेंति ,
तंजहा पगतिभद्दयाए, पगतिविणीयाए ,
साणुक्कोसयाए अमच्छरियाए ।

मेतार्य विचार करता है—"चार कारणों से जीव को मनुष्य जन्म मिलता है। एक तो वह प्रकृति से भद्र हो, दूसरे वह प्रकृति से विनयी हो, तीसरे वह दूसरे के दुःख को दूर करे और चौथे वह दूसरे की समृद्धि देखकर ईर्ष्या न करे।"

महावीर पुनः कहते हैं—

नाणं व दंसणं चेव चरित्तं च तवोतहा ।
एस मग्गोति पन्नत्तो जिणेंहि वरदंसिहि ।।

मेतार्य पुनः विचार करता है—

"सम्यक् दृष्टि जिन अर्थात् जितेन्द्रिय तीर्थंकरों ने जीव के संसार से बन्धन मुक्त होने का मार्ग यह बताया है कि उसे आत्मा के स्वरूप का सम्यक् ज्ञान हो, उसके बारे में सम्यक् श्रद्धान हो, उसका चरित्र कर्मों की निर्जरा के योग्य हो और वह तपश्चरण द्वारा पूर्व कर्मों की निर्जरा करता जाये तथा नये कर्मों का बन्ध न करे।"

मेतार्य (कुन्दकोलित से)--"हे कुन्दकोलित ! भगवान यथार्थ कहते हैं। मैं आज से उनका शिष्य हूँ।"

(अन्तेवासियों से):--"तुम अब जा सकते हो। गुरु-पत्नी से कहना कि मेतार्य अब मुनि हो गया, उसका मोह न करे।"

(महावीर से)--"भगवन ! मुझे भी भव-बन्धन से मुक्त करो—दीक्षा दो।" मेतार्य अपने वस्त्र उतार देता है और अपनी मुट्ठी से केश-लोंच करके महावीर के पीछे-पीछे विहार कर जाता है।

मेतार्य महावीर के ग्यारहवें गणधर या मुख्य शिष्य हुये।

(७)

काशी जनपद की राजधानी वाराणसी में बड़ी हलचल है। नगर के बाहर कोष्ठक चैत्य में एक दिगम्बर साधु आकर ठहरे हैं। वह दो शताब्दी पूर्व हुये तीर्थंकर पार्श्व के चातुर्याम संवर का परिष्कार कर श्रमण संघ की पुनर्व्यवस्था कर रहे हैं। चूलनिप्रिय और उसकी पत्नी श्यामा तथा सूरदेव और उसकी भार्या धन्या तीर्थंकर पार्श्व के अनुयायियों के साथ कोष्ठक चैत्य जाते हैं। मुनि ध्यानावस्थित हैं। श्रावकों की शंका का समाधान करते हुये भगवान कहते हैं—

हिंसा पावं तिमदो, दयापहाणो जहो धम्मो।
जह ते ण पियं दुक्खं, तहेव तेंसिपि जाण जीवार्ण ॥

चूलनिप्रिय विचार करता है—

"हिंसा पाप है, क्योंकि दया सब धर्मों में प्रधान है, क्योंकि जिस प्रकार हमें दुख प्रिय नहीं है उसी प्रकार अन्य जीवों को भी नहीं है। यह अहिंसा नाम का प्रथम व्रत है जिसे तीर्थंकर पार्श्व ने भी बताया था।"

भगवान पुनः कहते हैं—

अविस्सासो य भूयाणं, तम्हा मोसं विवज्जए।
असच्च मोसं सच्चं च अणवज्जमकक्कसं।
समुप्पेहमसंदिद्धं गिरं भासेज्ज पन्नवं।

श्यामा विचार करती है:—

"झूठ बोलने वाला सभी का विश्वास खो देता है। इसलिए झूठ बोलना उचित नहीं है। ऐसी भाषा बोलनी चाहिये जो व्यवहार में भी सत्य हो और निश्चय में भी सत्य हो अर्थात् प्रिय हो, हितकारी हो और असंदिग्ध हो। यह सत्य नाम का दूसरा व्रत है जिसे तीर्थंकर पार्श्व ने भी बताया था।"

भगवान आगे कहते हैं—

इच्छा मुच्छा तण्हा गेहि असंजमो कंखां।
हत्थलहुत्तणं परहडं तेणिक्कं कूडयाअदत्ते॥

सूरदेव विचार करता है—

"परधन की इच्छा, मूर्छा, तृष्णा, गुप्ति, असंयम, आकांक्षा, हाथ की सफाई, पर-धन-हरण, कूट-तोल-माप और बिना दी हुई वस्तु लेना—ये सब काम चोरी हैं। इनसे विरत रहो। यह अस्तेय नाम का तीसरा व्रत है जिसे तीर्थंकर पार्श्व ने भी बताया था।"

भगवान पुनः कहते हैं—

अब्भंतर बहिरए सव्वे गंथे तुमं विवज्जेहि।
सव्वत्थ अप्पवसिओ णिस्संगोणिब्भओ य सव्वत्थ।।

चुल्लनिसतक विचार करता है—

"भीतर और बाहर की सब ग्रन्थियों के उन्मोचन का नाम अपरिग्रह है। परिग्रह से रहित व्यक्ति स्वाधीन और निर्भय रहता है। अतः परिग्रह छोड़ो। यह अपरिग्रह नाम का चौथा व्रत है जिसे तीर्थंकर पार्श्व ने भी बताया था।"

भगवान आगे कहते हैं—

सीलगुणवज्जिदाणं निरत्थयं माणुसं जम्म।
सीलं मोक्खस्स सोपाणं।

धन्या विचार करती है—

"शील से विहीन व्यक्ति के लिये मनुष्य-जन्म निरर्थक है क्योंकि शील ही मोक्ष की सीढ़ी है। शील का पालन करो। यह ब्रह्मचर्य नाम का पांचवा व्रत है जिसे महावीर ने बताया है।"

अन्त में भगवान कहते हैं—

चत्तारि धम्मदारा-खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे।
उत्थरई जा ण जरओ रोयग्गी जा ण डहइ देहउंडि।
इंदियबलं ण वियलइ ताव तुमं कुणहि अप्पहियं।।

सभी जन विचार करते हैं—

"धर्म के चार द्वार हैं—क्षमा, संतोष, सरलता और विनय। वृद्धावस्था, इन्द्रिय-शिथिलता और रोग, ये शारीरिक धर्म हैं जिनके कारण मनुष्य आत्म-कल्याण में असमर्थ हो जाता है। अतः जब तक शरीर वृद्ध नहीं हो जाता, रोग शरीर को नष्ट नहीं कर देता और इन्द्रियों की शक्ति क्षीण नहीं होती, तब तक धर्माराधना द्वारा आत्म-कल्याण कर लो।"

श्रावक समुदाय (धीर-गम्भीर सम्वेत स्वर से उद्घोष करता है)—"धन्य, धन्य, प्रभो! हमारा भ्रम दूर हुआ। महावीर, आप हमारे शास्ता हैं। पार्श्व की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले हैं। आप ही हमारी परम्परा के २४वें तीर्थंकर हैं।"

उत्तर प्रदेश के उत्कीर्ण जैन लेख और उनका महत्व

—श्री शैलेन्द्रकुमार रस्तोगी

भारत-हृदय उत्तर प्रदेश अपनी पुरा-सम्पदा के कारण विश्वविख्यात है । जैन, बौद्ध एवं ब्राह्मण संस्कृति का संगम यह भूमि रही है । यूँतो पूरे प्रदेश में हजारों की संख्या में जैन मंदिर नगरों और ग्रामों में बिखरे पड़े हैं । कितने तो खण्डहर मात्र हैं और कितने ही सुन्दर अवस्था में हैं । इन मंदिरों में लेखयुक्त एवं लेख रहित, प्राचीन एवं अर्वाचीन जिनविग्रह प्राप्त होते हैं । पहले प्रकार की प्रतिमाओं की संख्या उसमें अपेक्षाकृत कम है, किन्तु मध्यकालीन एवं आधुनिक लेखयुक्त बहुत मूर्तियाँ मिलेंगी ।

जैन बिम्ब इस प्रदेश में राजघाट व चन्द्रावती (वाराणसी); श्रावस्ती (गोंडा-बहराइच); ककुभ (कहाँयू) और खुखुन्द (गोरखपुर); शौरीपुर (आगरा); मथुरा-चौरासी व कंकालीटीला आदि; एटा; कम्पिल, संकिसा, कन्नौज (फर्रुखाबाद); चन्दवाडदुर्ग (फिरोजाबाद); द्वाराहाट (अल्मोड़ा); श्रीनगर (गढ़वाल); नैनीताल; गोविषाण-काशीपुर; हस्तिनापुर (मेरठ); पुरिमताल[1] (प्रयाग), पभोसा, कौशाम्बी; इटावा; रौनाई (रत्नपुरी), अयोध्या, तिलोकपुर (बाराबंकी); उन्नाव; महोबा, झांसी, ललितपुर जिलों के बानपुर, चाँदपुर, दुधई, देवगढ़ प्रभृति से प्राप्त होती हैं ।[2] पुरातात्त्विक समृद्धि को देखते हुए संग्रहालयों की संख्या अति न्यून है । मुख्य संग्रहालय जहाँ जैन कलाकृतियाँ संग्रहीत हैं वे हैं भारत कला भवन (वाराणसी), इलाहाबाद संग्रहालय, राजकीय संग्रहालय मथुरा और राज्य संग्रहालय लखनऊ ।

भारत कला भवन की कुछ अभिलिखित जैन प्रतिमाएँ प्रकाशित हुई हैं ।[3]

इलाहाबाद संग्रहालय में यूँ तो उ० प्र० एवं मध्य प्रदेश की जैन प्रतिमाएँ आदि हैं किन्तु मूर्त्ति लेखों की दृष्टि से पतियानदाई (म०प्र० सतना) से प्राप्त अम्बिका की मूर्त्ति है ।[4] यह अनुपम कृति है क्योंकि इसी पर तेईस अन्य शासन देवियाँ भी बनी हैं । उनके नीचे उनके नाम भी उत्कीर्ण हैं । मध्य में "रामदास" "पद्मावती"

१—मुनिकान्तिसागर, खण्डहरों का वैभव, पृ० १८७

२—उपरोक्त सूचना के लिए मैं पूज्य डा० ज्योति प्रसाद जैन जी का हृदय से आभारी हूँ ।

३—श्री मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी ने विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित कराया है ।

४—जैन नीरज, पतियान दाई मंदिर की मूर्त्ति, अनेकान्त अग० ६३, पृ० ९९
श्री प्रमोद चन्द्र, स्टोन स्कलपचर इन इला० चित्र-४७० CLX ।

लिखा है। विद्वानों का मत है कि रामदास ने इसे स्थापित कराया। पद्मावती उसकी स्त्री का नाम है या वह पद्मावती का रहने वाला होगा। यहीं की एक बैठी बड़ी जिनप्रतिमा की चौकी पर "बलात्कार गण, वीरनंदी, वर्द्धमान, १२१४ फाल्गुन सुदी ९ अंकित है। इससे इस प्रतिमा की स्थापना तिथि ज्ञात हो जाती है।[५]

राजकीय संग्रहालय मथुरा में अभिलिखित जैन मूर्त्तियों का क्रम इस प्रकार है :—

कुषाणकाल—क्यू-२ लोणशोभिका का आयागपट्ट; बी० ७१ अभिलिखित चौमुखी सं० ५; नं० १५६५ बैठी प्रतिमा सं० ३०; बी० ७०; बी० २९ हुविष्क सं० ५०; नं० ४९० (पैर मात्र शेष) वर्धमान प्रतिमा सं० ८०; बी-२ बैठी जिनप्रतिमा—वासुदेव सं० ८३; बी-३ व बी० ४ वासुदेव सं० ८३, ८४; बी० ५, बैठी सं० ९०; नं० २१२६ खंडित बैठी, वर्धमान, तथा शक संवत ९२, ९० एवं १०७ की प्रतिमाएँ।

गुप्तकाल :—बी-३१ जिनप्रतिमा बाँया भाग सं० ९७; तथा नं० २६८

(i) सिद्धम् ऋषभस्य समुद्र

(ii) सागराभ्यां सङ्करस्य

(iii) दत्तासागरस्य प्रतिमा।

मध्ययुग की लेख युक्त जैन प्रतिमाएँ :—बी० २५ श्वेत, बैठी, संवत[६] १८२६; बी० २२ नेमिनाथ, संवत ११०४ भदेश्वरायगच्छ महिल; नं० २८२५ सुपार्श्वनाथ[७], संवत १८२६=१७६९ ई०; नं० ३५४५ सिरहीन बैठी जिनमूर्त्ति संवत १८२६ ई०=१७६९ ई०।

राज्य संग्रहालय लखनऊ में जैन मूर्त्ति लेखों का वृहत् संग्रह है। जैन धातु प्रतिमाएँ लेख युक्त तथा कुछ लेख रहित हैं। किन्तु हैं सभी मध्ययुगीन। लेख युक्त जैन धातु प्रतिमाओं की संख्या तेइस है।[८]

एक मृण्मूर्ति (५३-६९) है। इसे लखीमपुरखीरी से पाया गया है। इस पर गुप्त लिपि में "सुपार्श्व" स्पष्ट उत्कीर्ण है। मिट्टी की जैन मूर्त्तियाँ वैसे ही दुर्लभ हैं, किन्तु लिखित होने के कारण यह और अधिक महत्व की हो जाती है।

संग्रह में मध्ययुगीन दो शिलालेख ई-१६ एवं ई-१७ हैं। दोनों ही कच्छपघात कालीन हैं और संवत ११६१ व ११६५ के हैं, जो ग्वालियर से प्राप्त हुए हैं। प्रथम में तो रतनपाल द्वारा जैन मंदिर के निर्माण का उल्लेख है तथा दूसरे में "निर्ग्रन्थनाथ" (दिगम्वर साधु) का उल्लेख है जो किसी शैव साधु का मित्र था।

इस संग्रहालय में जैनमूर्त्ति लेखों की संख्या १८० हैं, जो कुषाण, गुप्त, मध्य एवं आधुनिक कालीन हैं। इनके प्राप्ति स्थल मथुरा, श्रावस्ती, बटेश्वर, उन्नाव, महोबा आदि उ० प्र० के स्थानों के अतिरिक्त दूबकुंड—ग्वालियर एवं छतरपुर—मध्य प्रदेश भी हैं। कतिपय विशिष्ट महत्व के जैन प्रतिमा अभिलेख नीचे दिये जा रहे हैं :—सर्वप्रथम है द्वार तोरण (जे-५३२) जिसमें कुषाणलिपि में "नमो अरहतानं श्रवण श्राविकाये........" अर्थात् अर्हन्तों को नमन किया गया है। इसी काल के दो आयागपट्ट जे-२४८ पर "नमो महावीर........" तथा जे २५६ पर—

५—मुनिकान्तिसागर, खण्डहरों का वैभव, पृ० २२१

६—अग्रवाल, डा० वसुदेवशरण, कैटालाग आफ दी मथुरा म्यूजियम, यू०पी० हिस्टा० सोसा० न, XXIII, १–२, पृ० ३६–६५

७—श्रीवास्तव, वी०एन० एण्ड मिश्र शिवाधार—इन्वेटरी आफ मथुरा म्यु० स्कल्प्चरस, सिन्स १९३९ अपटूडेट, म्यू० बुलेटिन ११–१२ वर्ष ७३, पृ० ९९

८—जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, मेटल इमेजेज इन स्टेट म्यू लख०, संग्र० पत्रिका अं० ९, पृ० ३४

"नमो अरहतो वर्धमानस्य गोतिपुत्रस्य........" इसमें भी वर्द्धमान का नमन है। इन अपूर्ण लेखों के बाद आता है जे-१—

(i) नमो अरहतो वधमानस ।

(ii) स्वमिस महाक्षत्रपससोडासस संवत्सरे ७२ हेमन्तमासे २ दिवसे ९ हारीति पुत्रस पलस भायाये समसिविना ।

(iii) काछीये अमोहिनी सहापुत्रहिपालघोष पोथघोषेन धनघोषेन, आयावती प्रतिथापिता ।

(iv) आयवत अरहतोपूजाये ॥

अर्थात वर्धमान को नमस्कार है। महाक्षत्रपशोडास के संवत्सर ७२ के हेमन्त मास में अमोहिनी ने आर्यावती अरहतो की पूजा हेतु स्थापित की।

जे-२०—(i) सं ४०, व ४ दि २० एतस्य पूर्व्वायं कोट्टिये गणो वरराया शाखाया ।

(ii) को अर्य्यंवृधहस अरहतो मुनिसुव्रतस्यप्रतिमा निवययति ।

(iii) ···भयाये श्रविकाये दिनस दान प्रतिमा वोद्वे थूपे देवर्निमितो पु············॥

अर्थात सं० ४९ में श्राविका दिन ने मुनिसुव्रत की प्रतिमा स्थापित की। 'वोद्वे' को बाद में 'देव' पढ़ा गया। प्राचीन जैन साहित्य में वर्णित देव निर्मित स्तूप की पुष्टि में यह अकाटच प्रमाण है।

जे-२४—(i) [सि] द्ध सवं ५०,४ हेमन्त मासे चतुरथ ४ दिवस १० अ

(ii) स्य पूर्व्वया कोट्टिय तो गणतो स्थानियतो कुलतो ।

(iii) वैरतोशाखातो श्री गृहीतो संभोगतो वाचकस्यार्य्या

(iv) ···हसिस्यं श्रीष्य गणिस्य आर्य्यमघस्तिस्य सधाचारी वाचकस्य [आ]

(v) र्य्य देवस्य निर्व्वत्तनो गोवस्य सीह पुत्रस्य लोहिकाकारू कस्य दानं ।

(vi) [स] र्व सत्त्वान हित सुख एक सरस्वती प्रतिमा स्थापितो अवतले रंगनतनो ।

(vi) मे ।।

अर्थात संवत ५४ में एक सरस्वती की प्रतिमा एक लोहिककारक के दान से स्थापित हुई। यह विश्व की सर्वप्राचीन सरस्वती प्रतिमा है, पुस्तक अक्षमाला लिए है। वीणा हंस बाद के हैं। ऐसा इस प्रतिमा के देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है।

जे-३४—(i) नमो अर्हतो महावीरस्य सं० ९० (३)······

(ii) शिष्य गणिस्य नन्दिये निवतन देवसस्य हैरण्यकस्यधितु

(iii) ······नि······वतो वद्धमान प्रतिमा

(iv) प्रति······पूजाये ॥

इसमें 'महावीर' संवत के साथ है तथा नीचे वर्धमान प्रतिमा स्पष्ट लिखा है। क्या यह नहीं हो सकता कि महावीरस्य संवत ९३ हो। यदि मान लें तो महावीर संवत का प्रयोग उस काल में प्रचलित था, इसका पता चलता है।

तदुपरान्त गुप्त लिपिका मूर्त्ति लेख आता है—

जे–३६ (i) सिद्धम परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तस्य विजयराज्य स १००, १०, ३क ···मस···दिवस २० अस्य पूव्वाय कोट्टियगण।

(ii) दविद्याधरितो शाखातो दतिलाचार्य प्रणापतिये समाढाये भट्टिभावस्य धितु ग्रहमित्र पालित प्रतिरिक स्य[कुटुम्बिनी] ये प्रतिमा प्रतिस्थापित ।

शुभपरम भट्टारक महाराजाधिराज कुमारगुप्त के विजयराज्य ११३ में भक्तिभाव से श्यामाढ्या के परिवार वालों ने प्रतिमा स्थापित कराई, विधाधरिशाखा के दतिलाचार्य की आज्ञा से ।[९] इस स्वर्णयुगीन प्रतिमा लेख के बाद हमें मध्य एवं आधुनिक युग के मूर्ति लेख मिलते हैं जिनमें महोबा से प्राप्त संवत १२११ का—

जे–८२९—गोलापुर्वान्वये साधुसाढेतपुर लाखूतस्य पुत्र वागल्हू देव कतले (?) जाल्ह श्री जील्हणपते नित्य प्रणमति ।

(ii) श्री मन्मदनवम्मदेववर्द्धै सं० १२११ आषाढ़ सुदि ३

(iii) सनौ ११ देव श्री ।।)०(।। देव श्री नेमिनाथ ।। रूपकार लाषण ।।

अर्थात चंदेल शासक मदनवर्मदेव के समय नेमिनाथ की प्रतिमा बनी है । चौकी मात्र काले पत्थर की है । गोलापूर्वान्वये का उल्लेख आहार की कुन्युनाथ एवं अरनाथ की प्रतिमाओं पर जो संवत १२०३ व १२०९ की हैं, पाते हैं ।[१०]

८ (जे० ८२९) में रूपकार लाषण–लषन था जिसका उसने उल्लेख स्वयं किया है ।

इसके बाद आती है गाहड़वाल शासक गोविन्दचन्द्र कालीन प्रतिमा जे—८८४, जो उन्नाव से प्राप्त हुई है:—

जे—८८४ (i) संवत १२१० ज्येष्ठ सुदि ३ श्रीमगद्‌ोविन्द चन्द देवस्यराज्ये

(ii) वामवास्तव्य—अवये ? अनेक मुलग (गु)

नालंकृत विग्रह चतुर्नैव [?] निरत……कुमोहि—कुंभोत्पातक कमथर ।

(iii) श्री साधु सोजन सुधरम नैक [?] इलाचन्द्र नैकपवोव [?] साधु जाल्हण तनक [?] जिननाय (व)[व] प्रतिस्थापिनि ।।

अर्थात साधु जाल्हण ने संवत १२१० में मुनिसुव्रत की प्रतिमा स्थापित कराई । यद्यपि लेख में उनका नाम नहीं है किन्तु कच्छप मूर्तिपीठिका पर अंकित है ।

भगवान नेमिनाथ मन्दिर चौक लखनऊ से प्राप्त पद्मासनस्थ दिगम्बर जिनप्रतिमा [७२-५] जो अखंण्डित, मनोज्ञ एवं तीन तरफ से लेखांकित है ।

[७२-५] (i) संवत १६८८ वर्षेफाल्गुण सुदि ८ श्री मूल सं………

(ii)…भट्टरक श्री णानभूषण देवा तिभट्टारक श्रीवन्दापा ।

(iii)…तुवा जातियोपमाने भार्या थाणागयोपु [र]

(iv)…पासुभा मथुरा [रा] प. पष्ठे पुत्र ४ उये चितामनि पीछे ह्वावचन्द से निमाहिनातात पजामावा व पवनापुत्र भयापरिमगज सुतयो पुत्रवा लेववङ्ग पहीरामपूतप्र प्रेभवाराम नित्य प्रमति ।

अर्थात संवत १६८८ फाल्गुण सुदि ८, मूलसंघ, भट्टारक, श्रीज्ञानभूषण, पहीराम एवं चिन्तामनि (ये शब्द विचार करने योग्य हैं), यद्यपि लाञ्छन का स्थान क्षतिग्रस्त है किन्तु लेख में "चिंतामनि" से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह पार्श्वनाथ प्रतिमा होगी, यद्यपि यह ध्यान देने योग्य है कि सर्पफण का नितान्ता-भाव है ।

९—जैन, हीरालाल, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० ३५

१०—जैन, कस्तूरचन्द, तीर्थंकरों की प्राचीनता, अनेका० ६९, पृ०९९

इन निदर्शनों के अलावा ककुभ-कहाँयू उ० प्र० के गोरखपुर जिला से सम्राट स्कन्दगुप्त (४६०ई०) ज्येष्ठ मास का पञ्च आदि कर्तृन' [आदि, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर] शिलालेख भी उल्लेखनीय है।[११] ललितपुर जिले के देवगढ़ मन्दिर की अभिलिखित जैन प्रतिमाओं के लेख तथा पट्टलेख तथा स्तम्भ लेख हैं। प्रतिमा लेख अधिकांश अपूर्ण हैं। मूर्ति लेख कम सख्या में पूर्ण हैं। पट्ट और स्तम्भ लेख लम्बे हैं। इनमें भोज (८६२ ई०) के समय का लेख महत्वपूर्ण है। सारे लेख ९ वीं से १२ शती तक के हैं। इनकी संख्या चार सौ से ऊपर है।[१२] यहां पर जैन मन्दिरों में यक्षियों की प्रतिमाओं के पट्ट पर उनके नाम उत्कीर्ण किये गये हैं। उत्कीर्ण लेखों की लिपि ९५० ई० के लगभग की प्रतीत होती है।[१३]

इस प्रकार से जैन-प्रतिमाओं के मूर्त्तिलेख, संवत, आचार्य, संघ, गण, शाखा, गच्छ, संस्थापक, शासक, प्रतिष्ठा स्थान, रूपकार का सुन्दर विवेचन करते हैं। स्थान एवं शासक का उल्लेख कराने वाले, चौक लखनऊ के भगवान शान्तिनाथ मन्दिर बहुरन टोले की श्वेत पाषाण चौकी के अभिलेख को देखें:—

संवत १८६३ ·· चरण भराया वृहत्खरतरगछे भट्टारक श्री जिनहर्ष सूरिभिः प्रतिष्ठितं श्रेयार्थं शासन देवी अस्य मंदिरस्य रक्षा कुर्वन्तु ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री लखनऊ नगरमध्ये नवाब साहब सहादत अलि विजय राज्ये ॥[१४]

इससे स्पष्ट विदित होता है कि संवत १८६३ में लखनऊ में नवाब सादतअली का शासन था, उसी समय ये चरण मन्दिर में स्थापित हुए। लेख संस्कृत में है यद्यपि नगर में उर्दू का बोलबाला रहा होगा।

अस्तु चिरकाल से उपेक्षित इन मूक किन्तु तथ्यपूर्ण अभिलेखों के अध्ययन से क्या खोज का मार्ग प्रशस्त नहीं होता है? क्या इन लेखों के विवेचन से जैन इतिहास यथा श्रावकों की जाति, गोत्र, आचार्यो के गच्छ, भाषा व लिपिका क्रमिक विकासादि विषयों पर समुचित प्रकाश नहीं पड़ता हैं? क्या यह कहना कि ये लेख इतिहास तथा जैन संस्कृति के ज्ञान हेतु, रत्नाकर तुल्य है, उचित न होगा।
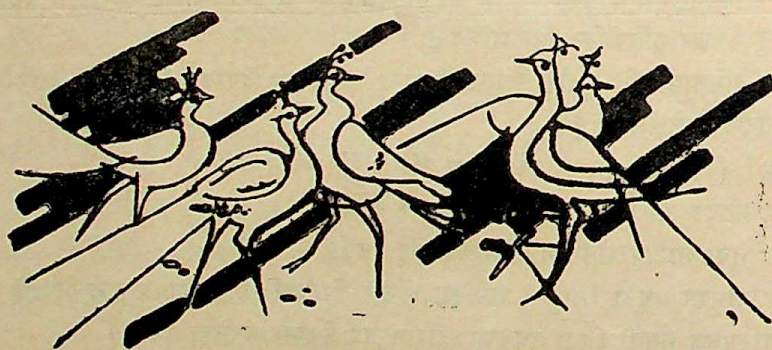
११—फ्लीट, कार्पस इन्सक्रप्शन्सइडकोरम, सरकार डी० सी० स्लेक्टेड इंस्क्रप्शन्स

१२—कलसब्रुन (Klaus Bruhn) दी जैन इमजेज आफ देवगढ़ १०४

१३—जैन, बालचन्द्र, जैन प्रतिमा विज्ञान, खण्ड—१, पृ १०८

१४. नाहर, पूर्णचन्द—जैनलेख संग्रह, भा० २, लेख सं. १५२५, पृ.११९
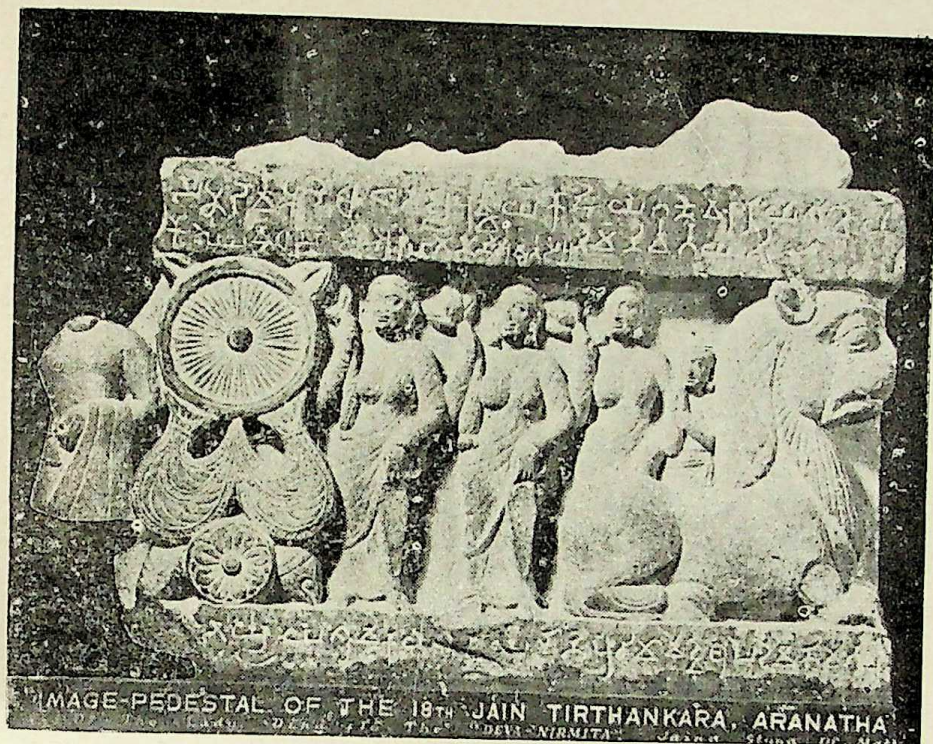
४२—'देवनिर्मित स्तूप' लेखयुत मुनिसुव्रत-प्रतिमा की चरणचौकी, कंकाली टीला मथुरा (रा० सं० लखनऊ)

४३—[illegible] मथुरा (राज्य संग्रहालय लखनऊ)
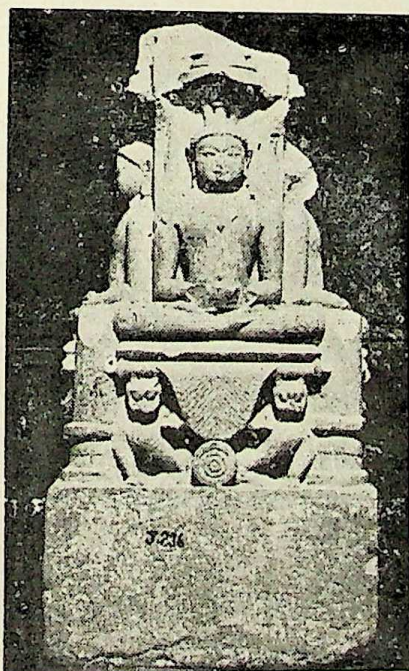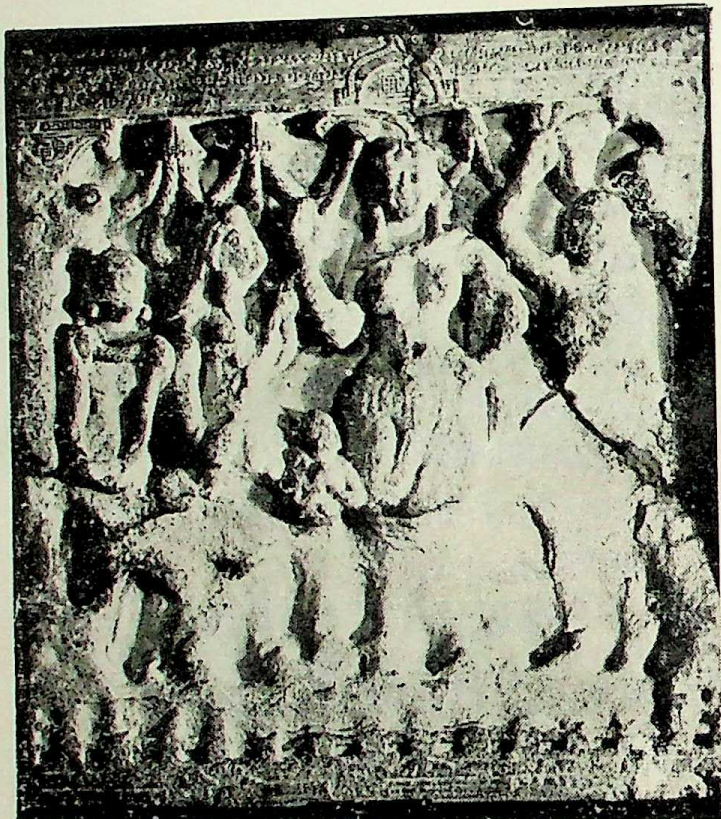
४४—'नमो वर्द्धमान' लेखयुत आर्यावती (भगवान की माता) की प्रतिमा, कंकाली टीला मथुरा (रा० सं० लखनऊ)
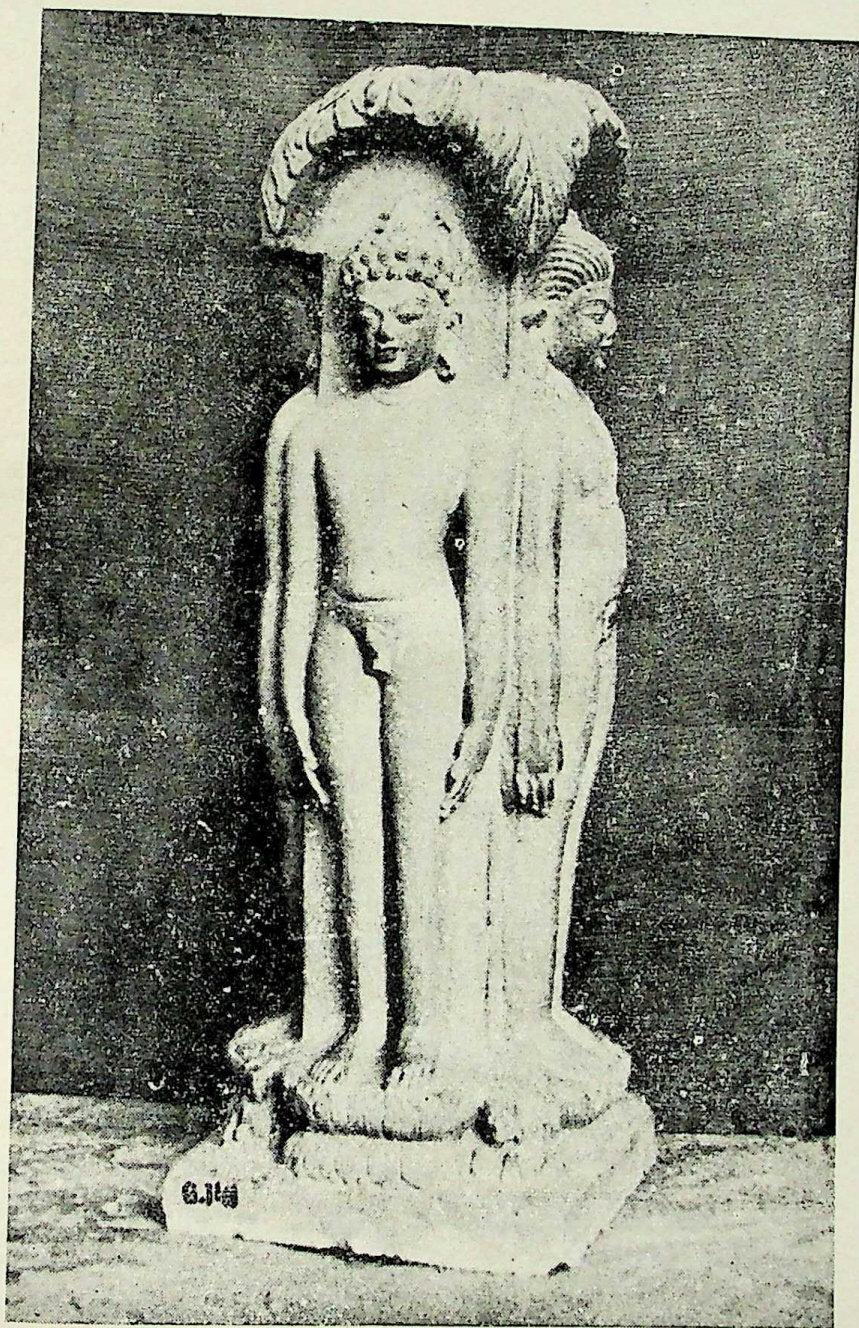
४५—प्रतिमा सर्वतोभद्रिका, एटा, (रा० सं० लखनऊ)

४६—कलापूर्ण भामंडल से युक्त तीर्थङ्कर-प्रतिमा, गुप्तकालीन, मथुरा
(रा० सं० लखनऊ)

राज्य संग्रहालय की महावीर प्रतिमाएँ

राज्य संग्रहालय, लखनऊ में तीर्थंकर महावीर की अनेक प्रस्तर सतिमांए संग्रहीत हैं, जो या तो कायोत्सर्ग (खड्गासन) मुद्रा में, या पद्ममासनस्थ (बैठी हुई ध्यानस्थ), दोनों रूपों में हैं।

संग्रहालय में संग्रहीत कलाकृतियों में काल की दृष्टि से भगवान महावीर का सर्व प्राचीन अंकन उनकी पूजा के हेतु स्थापित शिलाफलक या आयागपट्ट (जे० २४८) में प्राप्त है, जिस पर "नमो अर्हतो महावीरस्य......" अभिलिखित है। इस आयागपट्ट के केन्द्र में उत्कीर्ण धर्मचक्र के द्वारा प्रतीक रूप से भगवान महावीर की उपस्थिति सूचित की गयी है। एक अन्य खण्डित आयागपट्ट (जे० २५६) पर "नमो अर्हतो वर्धमानस्य............" उत्कीर्ण हैं। एक स्तम्भ (जे० २६८) पर सिंह ध्वज का अंकन है। उस पर उसकी प्रदक्षिणा करते हुए स्त्री-पुरुष भी अंकित हैं। इस सिंहध्वज में सिंह द्वारा, जो तीर्थंकर महावीर का विशिष्ट लांछन है, उनकी उपस्थिति सूचित की गयी है। एक अन्य फलक (जे० १) में पूजा के हेतु जाती हुई एक उपासिका अंकित है और "नमो अर्हतो वर्धमानस" लेख है।

'वर्धमान' एवं 'महावीर' विलिखित कुषाणयुगीन बैठी अथवा खड़ी, खण्डित या अखिण्डत प्रतिमांए (जे० २, ५,९,१४,१६ और ३१) विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ प्रतिमाओं पर तो कुषाण शासकों के नाम एवं शासन वर्ष भी उल्लिखित हैं, जिनके कारण उन प्रतिमांओं का ऐतिहासिक महत्व भी बहुत है।

लेख अथवा लांछन (परिचय चिन्ह) से युक्त भगवान महावीर की कोई गुप्तकालीन प्रतिमा संग्रहालय में नहीं हैं, किन्तु मथुरा से प्राप्त जे० ११८, जे० १०४ तथा सीतापुर से प्राप्त ओ० १८१ को भ० महावीर की गुप्तकालीन प्रतिमाओं के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इनमें से जे० ११८ तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी है।

यों तो संग्रहालय में गुप्तकालीन एवं मध्यकालीन चौबीसी-पट्ट भी हैं, परन्तु उन सभी में मूल नायक प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ हैं—गौंण रूप से महावीर का अंकन अवश्य है।

संवत् १०८० की अभिलिखित सर्वतोभद्रिका प्रतिमां (जे० २३६) उल्लेखनीय है। उस पर आचार्य विजय सिंहसूरि और श्री जिनदेवसूरि तथा स्वयं भगवान बर्द्धमान के नाम अंकित हैं। इस चौमुखी प्रतिमा में चारों ओर भगवान वर्द्धमान का ही अंकन है।

संवत् १२२३ की सिंह लांछन से युक्त लेखांकित पद्ममासनस्थ भूरे पाषाण की महावीर प्रतिमा (जे०७८२) इटावा जनपद से प्राप्त हुई। श्रावस्ती (जिला बहराइच) से प्राप्त पंचतीर्थी (जे. ८८०) में भगवान महावीर का लांछन अंकित है और अभिलेख संवत् ११३४ का है। इस मूर्ति के सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उसमें "वीरनाथ" के नाम से भगवान महावीर का परिचय दिया गया है। उस पर आचार्य रामसिंह का भी नामोल्लेख है। श्रावस्ती से ही प्राप्त एक त्रितीर्थी (जे. ८७५) में सिंह लांछन युक्त महावीर की ध्यान मुद्रा की प्रतिमा है। लेख अस्पष्ट है।

कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित, प्रभामण्डल रहित, श्याम पाषाण की एक महावीर प्रतिमा (जी. ३१८) महोबा (जिला हम्मीरपुर) से प्राप्त हुई। लेख से प्रकट है कि उसकी प्रतिष्ठा संवत १२८३ के आषाढ़ मास में हुई थी।

काले पाषाण की, सिंह लांछन युक्त, दिगम्बर (नग्न), अखण्डित तथा प्रभामण्डल से युक्त महावीर प्रतिमा (जे. ८८७) पर संवत १२३६ तथा 'मूल नायक को साधु माडू नमन करता है' लिखा है।

उत्तर प्रदेश के पौराणिक तीर्थ स्थान नेमिषारण्य-मिसरिख (जिला सीतापुर) से प्राप्त पीतवर्ण पाषाण की एक मध्ययुगीन प्रतिमा (ओ. १८२) की पीठिका पर सिंह लांछन खचित है। इस महावीर प्रतिमा की मुख छवि तेजस्वितापूर्ण है।

नेमिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर चौक लखनऊ से हाल में ही भेंट स्वरूप प्राप्त प्रतिमा (७२-४) की पीठिका पर "संवत..................४ बुधवासरे २० चन्द्रमाह" तथा प्रतिमा के पृष्ठ भाग में "वर्द्धमानमंगल प्रतिमा अंकित हैं। संवत की वर्ष संख्या स्पष्ट पढ़ने में नहीं आती। प्रतिमा मध्यकालीन है।

इस प्रकार उत्तर प्रदेश राज्य संग्रहालय लखनऊ में ई० सन् के प्रारम्भ काल से लेकर मध्यकाल पर्यन्त की महावीर प्रतिमाओं की एक अच्छी श्रृंखला सुरक्षित है।

—डा० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी

राज्य संग्रहालय लखनऊ का नीलाञ्जना-पट

उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्थानों में, विशेषकर मथुरा के कंकाली टीला क्षेत्र से प्राचीन जैन कलाकृतियों के अनुपम एवं विविध दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण नूमने प्राप्त हुए हैं। तीर्थङ्करों, देवी देवताओं, धार्मिक प्रतीकों, लोक जीवन सूचक एवं प्राकृतिक दृश्यों के प्रस्तरांकनों के अतिरिक्त कई जैन पौराणिक दृश्यों के महत्त्वपूर्ण अंकन भी प्राप्त हुए हैं। इनमें से विशेष उल्लेखनीय एक खंडित प्रस्तर फलक (जे–३५४) है जो बाद में एक वेदिका के छोर वाले स्तम्भ के रूप में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है जैसा कि उसके सिरे पर पटबल बने खाँचे से विदित होता है। दाँयें छोर के भाग में मंडप के नीचे एक नर्त्तकी नृत्य कर रही है और वादक वृन्द मृदङ्गादि वाद्य बजा रहे हैं। मंडप के बाहर सबसे आगे एक राजपुरुष बैठा है जिसके पीछे तथा बगल में कई अन्य व्यक्ति बैठे अथवा खड़े हैं। बाँये छोर पर ऊपर एक व्यक्ति हाथ जोड़े खड़ा है और उसके आगे-पीछे, कमण्डलधारी एक दिगम्बर मुनि उक्त सभा स्थल से मुड़कर जाता हुआ दिखलाया गया है।

मुझे लगता था कि इस कलाकृति का लुप्त भाग मिल जाय तो दृश्य में अधिक पूर्णता आ जाय, मैं उसकी खोज में लगा रहा और सौभाग्य से अन्ततः उस खोये हुए टुकड़े (जे–६०९) को खोज निकालने में मैं सफल हुआ। इस पर ध्यानस्थ बैठे हुए दो दिगम्बर मुनियों का अंकन है। इनके पीछे दाहिनी ओर एक चवरी वाहक खड़ा है। इससे कुछ आगे एक कायोत्सर्ग नग्नमुनि का ऊपरी भाग दिखलाई देता है। दायीं ओर के सिरे के निकट एक अर्द्ध-फालक (भुजा पर खण्डवस्त्र लटकाए हुए साधु) की जैसी आकृति बनी प्रतीत होती है। मुख्य आकृतियां ऊँची पीठिकाओं पर आसीन हैं और मुंडित केश हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि कलाकृति जैन धर्म से संबंधित है और किसी जैन पौराणिक दृश्य का अंकन है। उक्त नृत्य दृश्य को पहले स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल साहब ने भगवान महावीर के जन्मोत्सव का दृश्यांकन समझा था (जैन एन्टीक्वेरी, X पृ० १–५) किन्तु डा० ज्योति प्रसाद जैन ने उसे प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव की राजसभा में नीलाञ्जना अप्सरा के नृत्य का दृश्य अनुमान किया था और अपना सुझाव डा० अग्रवाल जी पर भी प्रायः प्रकट कर दिया था, बाद में डा० यू० पी० शाह ने भी नीलाञ्जना नृत्य (स्टडीज इन जैन आर्ट, पृ० ११, (फु० नो० ४) का अंकन ही मान्य किया है। मुझे भी यह मान्यता युक्तिसंगत प्रतीत होती है।

इस प्रकार इस कलाकृति के दोनों खण्डों को जोड़ने से जो दृश्य बनता है उसे पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) धुर दाहने छोर पर जहाँ अब सिर्फ आकृति दीख पड़ती है सम्भवतया महाराज ऋषभदेव के सम्मुख असली नीलाञ्जना का अंकन था।

(२) अब जो नृत्य दृश्य उपलब्ध है वह उस समय का प्रतीत होता है जब असली नीलाञ्जना के विलय हो जाने पर इन्द्र ने उसके स्थान पर वैसी ही दूसरी आकृति की रचना कर दी थी, जिसे ऋषभदेव ने लक्ष्य कर लिया था और वह घटना उनके वैराग्य में निमित्त हुई।

(३) ऋषभदेव वैराग्य और लोकान्तिक देवों द्वारा उनकी स्तुति करना।

(४) ऋषभदेव द्वारा दीक्षा लेना और तपस्या करना।

(५) ऋषभ को केवल ज्ञान की प्राप्ति।

ऋषभ वैराग्य की उक्त घटना का विस्तृत एवं रोचक वर्णन आचार्य जिनसेन कृत आदि पुराण (पर्व–१७) में प्राप्त होता है। महाराज ऋषभदेव एकदा जब अयोध्या में अपनी राजसभा में विराजमान थे तो इन्द्र ने उन्हें संसार से विरक्त करने के लिए इस घटना की योजना की थी, जिससे वह तपः साधना द्वारा केवल ज्ञान प्राप्त करके तीर्थङ्कर रूप में लोक कल्याण करें।

—श्री वीरेन्द्रनाथ श्रीवास्तव
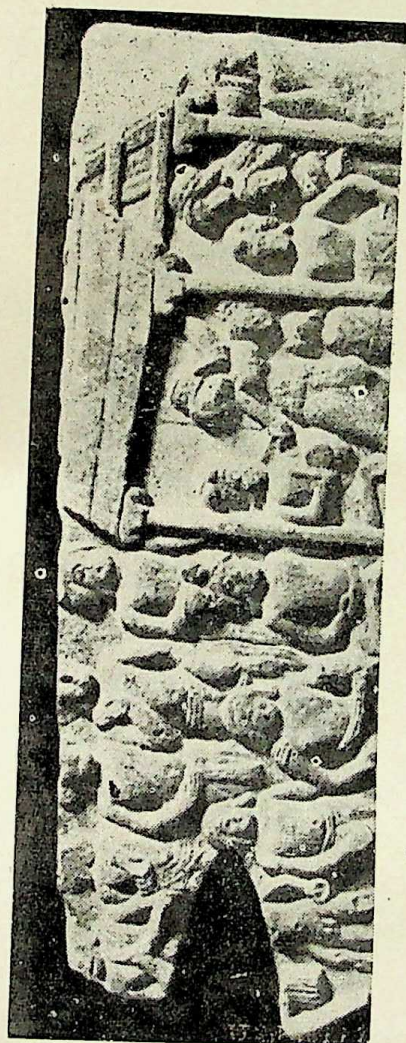
४८—नीलांजना नृत्य पट (अपूर्ण), कंकाली टीला मथुरा (रा० सं० लखनऊ)

४९—नीलांजना नृत्य एवं ऋषभनाथ वैराग्य पट (पूर्ण), मथुरा (रा० सं० लखनऊ)

४७—विश्वविश्रुत महावीर-प्रतिमा, कंकाली टीला मथुरा
(रा० सं० लखनऊ)

मथुरा संग्रहालय की कुषाणकालीन जैन मूर्तियाँ

—श्री रमेशचन्द्र शर्मा, निदेशक, राजकीय संग्रहालय, मथुरा

जैन धर्म का मथुरा से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। प्राचीन अंग-सूत्रों में मथुरा का उल्लेख हुआ है। प्रज्ञापना सूत्र में २५ आर्य देशों में शूरसेन व मथुरा का वर्णन है। पांचवीं शती के वसुदेव हिन्डी प्राकृत कथा-ग्रन्थ के श्यामा विजय लम्भक में कंस का आख्यान है।[1] निशीथ और ठाणांग में मथुरा की गणना भारत की १० प्रमुख राजधानियों में हुई है। इसे अरहंत प्रतिष्ठित चिरकाल प्रतिष्ठित आदि उपाधियों से सम्मानित किया है। महापुराण के प्रणेता आचार्य जिनसेन के अनुसार भगवान ऋषभदेव के आदेश से इन्द्र ने जिन ५२ राज्यों की सृष्टि की थी उनमें शूरसेन भी था जिसकी राजधानी मथुरा थी। जैन हरिवंश पुराण में भी शूरसेन राज्य को भारत के १८ महाराज्यों में बताया है।

सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ जी के जीवन की कोई प्रसिद्ध घटना यहाँ अवश्य घटित प्रतीत होती है क्योंकि उसकी स्मृति में एक प्रचीन स्तूप का निर्माण यहाँ हुआ था। चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथ की पूजा में भी एक स्तूप बनाए जाने की किंवदन्ती है। जैन परम्परा के अनुसार अरिष्टनेमि (२२वें तीर्थंकर) श्रीकृष्ण के ताऊ समुद्र विजय के पुत्र थे। इनका राज्य शौरिपुर (बटेश्वर) जिला आगरा में था। कला में भी इस परम्परा...... मान्यता कृष्ण युग में ही मिल चुकी थी क्योंकि बलराम और श्रीकृष्ण के साथ नेमिनाथ की प्रतिमाएं मथुरा क्षेत्र में कुषाण युग से मध्य काल तक की मिलती हैं। सर्पफणों से आच्छादित अनेक प्रतिमाओं की उपलब्धि २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी का भी व्रजभूमि से सम्बन्ध स्थापित करती है। अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर ने भी व्रज में विहार किया और उनका समवसरण भी यहाँ आया। उस समय यहाँ का राजा उदितोदय अथवा भीदाम था जिसने भगवान महावीर से दीक्षा भी ली। आवश्यक-चूर्णि के अनुसार कंवल और शंवल नामक दो राजकुमार उनकी परिचर्या करते थे। नगर के प्रसिद्ध सेठ अर्हद्दास ने भी महावीर जी से दीक्षा ली।

जैन धर्म में मथुरा को आदर का स्थान मिलने का अन्य विशेष कारण अन्तिम केवली जम्बू स्वामि के कैवल्य लाभ के पश्चात मथुरा में अपने दिव्य उपदेशों से व्रजवासियों को तृप्त करने तथा अन्ततः वहां निर्वाण लाभ करने की घटना है। उनके तप से पवित्र मथुरा की सिद्ध क्षेत्र के रूप में ख्याति हुई और आज भी नगर के पास चौरासी का जैन मन्दिर जम्बूस्वामी सिद्धक्षेत्र के नाम से विख्यात है। कवि राजमल्लकृत जम्बूस्वामी चरित में इसका विस्तृत वर्णन है। इस ग्रन्थ में अन्य मुनियों और सिद्धों को भी व्रज क्षेत्र से सम्बन्धित किया है। आवश्यक चूर्णि से ज्ञात होता है कि आर्यरक्षित ने मथुरा में भूत-गुहा नामक चैत्य में विहार किया था और आर्य मंगु देह त्याग के अनंतर निद्धवण यक्ष बने थे।

जैन आगमों को लिपिबद्ध करने के लिए प्रसिद्ध 'सरस्वती आन्दोलन' का सूत्रपात मथुरा से ही हुआ जो शनैः-शनैः समस्त भारत में व्याप्त हो गया।[२] इसके फलस्वरूप प्रथम शताब्दी से ही ग्रन्थों का प्रणयन आरम्भ हो गया था और अब जैन साहित्य का विपुल भण्डार उपलब्ध है। चौथी शताब्दी में अंग साहित्य को सुव्यवस्थित करने के लिए आर्य स्कन्दिल की अध्यक्षता में यहां एक सभा हुई जिसे माथुरी वांचना कहते है (नन्दी चूर्णी)। वृहत् कल्पभाष्य में उल्लेख है कि व्रज के ९६ गांवों में अर्हन्तों की मूर्तियां स्थापित की जाती थीं और शुभ चिन्हों का अंकन होता था। इनसे भवनों को स्थायित्व प्राप्त होने की मान्यता थी। १४वीं शती में जिन सूरि कृत मथुरा पुरी कल्प में मथुरा का विशद माहात्म्य दिया है।[३]

साहित्यिक परम्पराओं से जैन धर्म में मथुरा के महत्वपूर्ण स्थान की जो सूचनाएँ मिलती हैं, पुरातात्विक सामग्री भी उनका प्रबल समर्थन करती है। जैन धर्मावलम्बियों ने यहां स्तूप, चैत्य, विहार आदि बनवाए और मूर्तियां स्थापित कीं। नगर के निकट ही कंकाली टीला लगभग एक हजार वर्ष तक जैन धर्म का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा। एक मूर्ति लेख के आधार पर तो डा० विन्सेन्ट स्मिथ ने मत व्यक्त किया है कि यहाँ ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व स्तूप निर्माण का कार्य आरम्भ हो गया था क्योंकि जिस स्तूप को देवनिर्मित बताया है, परंपरा के अनुसार २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समय उसकी मरम्मत भी हो गई थी। पार्श्वनाथ का समय ८०० ई० पू० के लगभग माना जाता है अतः मूल स्तूप का समय १००० ई० पू० मान लेना स्वाभाविक है और यदि इसे संगत माना जाय तो मथुरा में निर्मित स्तूप सिन्धु संस्कृति के पश्चात सबसे प्राचीन भवन था।[४]

जैन मूर्तिकला का जो क्रमिक और व्यवस्थित रूप हमें मथुरा में मिलता है वह अन्यत्र नहीं। आरम्भ आयोग पटों से होता है जिसे जर्मन विद्वान बूलर पूजा-शिला मानते हैं। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि आयाग शब्द आर्यक से निकला है जिसका अभिप्राय पूजनीय है। किसी संवत् के न मिलने से इनका ठीक समय बता सकना तो संभव नहीं है किन्तु शैली के आधार पर विद्वानों ने अपना मन्तव्य प्रकट किया है। बी०सी० भट्टाचार्य इन्हें कुषाण युग से पहले का मानते हैं। डा० लाउजन ५० ई० पू० से ५० ई० के बीच निर्धारित करती हैं। डा० अग्रवाल के अनुसार प्रथम शती ई० इनका उचित काल है। ये पूजा-शिलाएं उस संक्रमण काल की हैं जब कि उपासना का माध्यम प्रतीक थे और देवताओं तथा महापुरुषों को मानव रूप में अंकित करने का अभियान भी चल पड़ा था।[५] इनमें बहुत से शोभा चिन्ह उत्कीर्ण हैं और उपास्य देवता या महापुरुष का संकेत भी स्तूप, धर्म, स्वस्तिक आदि प्रतीकों से ही हुआ है। कहीं-कहीं लेख में उपास्य का नाम मिल जाता है। साथ ही कुछ आयाग-पट ऐसे हैं जिनके बीच में प्रतीक के स्थान पर उपास्य की छोटी सी मानवाकृति आ गई है और उसके चारों ओर बड़े-बड़े प्रतीक हैं।

आयाग पटों में जो शुभचिन्ह प्राप्त होते हैं वे अधिकांशतः ये हैं :—स्वस्तिक, दर्पण, पात्र या शराव संपुट (दो सकोरे), भद्रासन, मत्स्य युगल, मंगल कलश और पुस्तक। इन्हें अष्टमांगलिक चिन्ह कहते हैं। इनकी संख्या कम या अधिक भी रहती है और चिन्हों में अन्तर भी मिलता है जैसे श्रीवत्स, चैत्य या बोधिवृक्ष, त्रिरत्न भी प्रायः चिन्हित पाये जाते हैं।

जिन प्रतिमाओं की सामान्य विशेषताएँ :—स्वतन्त्र जिनमूर्तियां ध्यान भाव में पद्मासनासीन अथवा दण्ड की तरह खड़ी जिसे कायोत्सर्ग रूप भी कहते हैं, इन दो रूपों में मिलती हैं। वक्ष पर श्रीवत्स का लांछन मथुरा की जैन मूर्तियों की प्रधान विशेषता है। आरम्भ में यह केवल खुदा रहता है और बाद में, मध्यकाल में, यह उभरा दीखता है। कायोत्सर्ग मुद्रा तीर्थंकर के तप की पराकाष्ठा को व्यक्त करती है। प्राचीन जिन आकृतियां
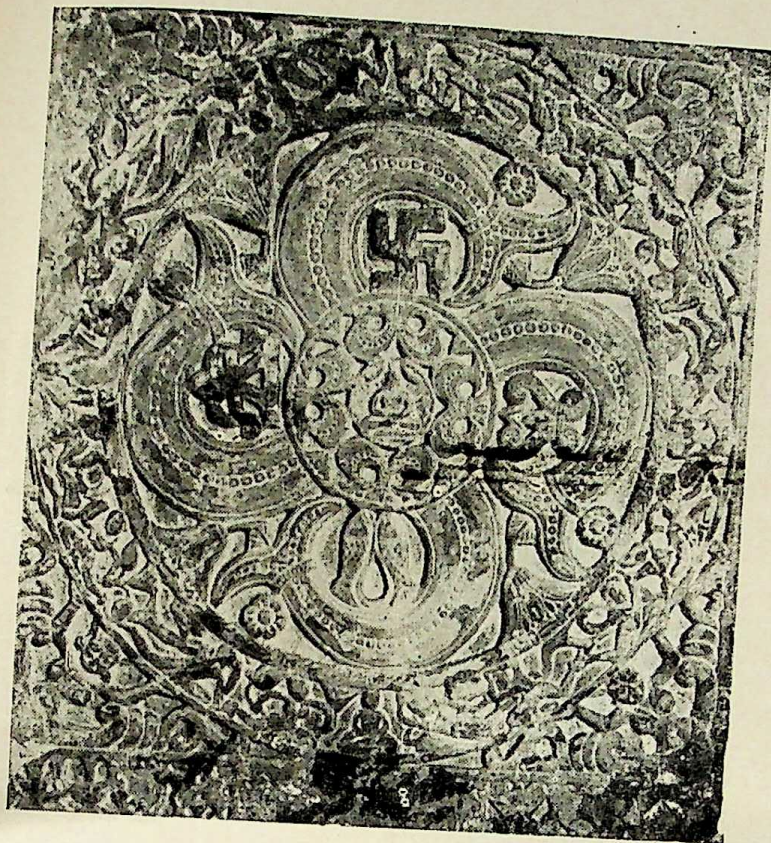
५०–जिनमूर्ति युक्त कुषाणकालीन

आयागपट, मथुरा

(रा० सं० लखनऊ)
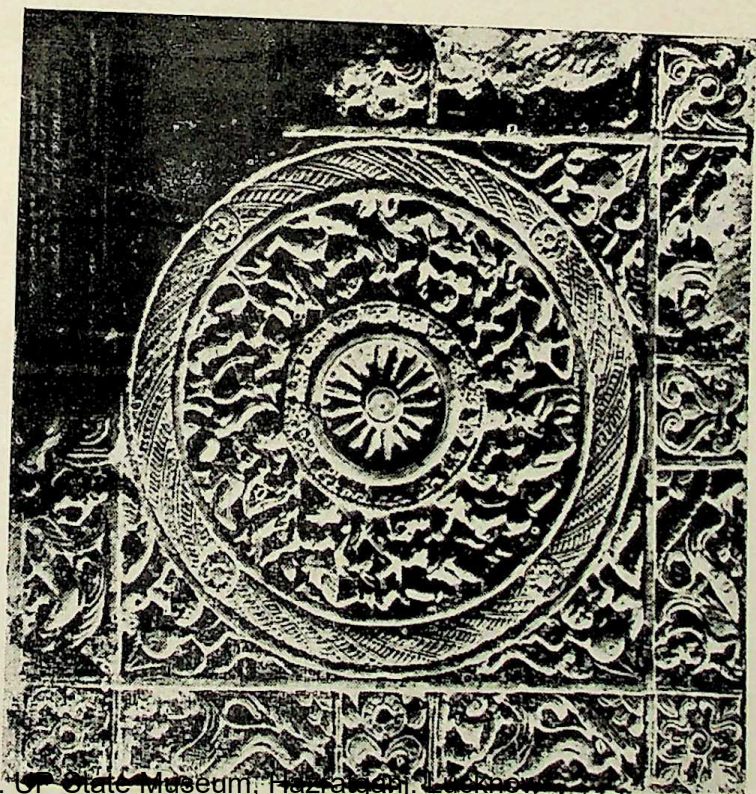
५१—'नमो महावीरस्य'

लेखयुत धर्मचक्रांकित

कुषाणकालीन आयागपट,

रा० सं० मथुरा

५२—अष्ट-जिनेन्द्र-स्तम्भ,
इलाहाबाद, रा० सं०
लखनऊ

दिगम्बर अर्थात नग्न हैं । सिर या तो पूर्णतया सपाट है अथवा छोटे बाल भी हैं, आँखें गोल और खुली हैं, मुख पर कुछ स्मित भाव है । प्रभामण्डल का किनारा केवल हस्तिनख आकृति से उत्कीर्ण है । पैरों के तलवों और हथेलियों पर चक्र, त्रिरत्न आदि शोभा चिन्ह उत्कीर्ण रहते हैं जो उनके महापुरुष होने का संकेत देते हैं । जिन आकृतियां प्रायः सिंहासन पर आरूढ़ दिखाई गई हैं और सिंहाकृतियों के साथ उपासक-उपासिकाएं, श्रावक-श्राविकाएं और लेख उत्कीर्ण होता है, जिसमें संवत, महीना, पक्ष, दिन, राजा का नाम और आचार्य आदि का परिचय भी मिलता है । कभी-कभी तीर्थंकर विशेष का नाम भी लिखा मिलता है अन्यथा २४ तीर्थंकरों में से दो-तीन को छोड़ कर शेष को पहचानना संभव नहीं है । गुप्तोत्तर काल में तीर्थंकरों की पहचान के लिए पृथक-पृथक चिन्हों को निर्धारित किया मिलता है ।।

मथुरा से प्राप्त जैन प्रतिमाएं अधिकांशतः राज्य संग्रहालय लखनऊ में सुरक्षित हैं । डा० फ्यूरर ने कंकाली टीले के उत्खनन से मिली सभी कलाकृतियों को लखनऊ भेज दिया था । मथुरा संग्रहालय में जो जैन प्रतिमाएं हैं उनसे यह धारणा बनती है कि जैनधर्म के स्मारक कंकाली तक ही सीमित नहीं थे अपितु व्रज में अन्यत्र भी उपासना स्थल थे । अवश्य ही कंकाली सर्व प्रधान केन्द्र था ।

मथुरा संग्रहालय में जैन कलाकृतियों की संख्या सौ से अधिक है और उनमें अधिकांश कुषाणयुगीन हैं । इनमें आयागपट, तीर्थंकर प्रतिमाएं, वास्तु अवशेष और मूर्तियों की अभिलिखित चरण-चौकियां, उपदेवता तथा श्रावक-श्राविकाओं की आकृतियां सम्मिलित हैं । यहां अधिक प्रमुख प्रतिमाओं का परिचय दिया जाता है ।

आयागपट्ट—मथुरा से प्राप्त अधिकतर आयागपट्ट लखनऊ संग्रहालय में और सिंहनादिक आयाग पट्ट दिल्ली संग्रहालय में है । मथुरा संग्रहालय में एक सम्पूर्ण, एक आधा और तीन भग्नांश हैं । ये प्रथम शताब्दी के आरम्भ से प्रथम शती ई० के अन्त तक के हैं ।

क्यू० २—यह लगभग पूर्ण तथा सुरक्षित आयागपट्ट है । इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें स्तूप वास्तु का पूरा नकशा उत्कीर्ण है । तदनुसार ऊंची चौकी पर जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं और तोरण है जिससे माला लटकती है । यहांसे प्रथम वेदिका आरम्भ होती है । दोनों ओर स्तम्भों में से एक पर चक्र है और दूसरे पर सिंह । वेदिका के भीतर विशाल ऊंचा स्तूप दीखता है जिस पर दो ओर वेदिकाएं और शिखर पर भी एक छोटी वेदिका तथा छत्रावली है । स्तूप के नीचे के भाग में दो नर्तकियां हैं । उनसे ऊपर माला और पुष्पधारी सुपर्ण और सबसे ऊपर दो नग्न सिद्ध हैं जिनके हाथ में वस्त्र खण्ड है । स्तूप पर एक अभिलेख उत्कीर्ण है जिसके अनुसार गणिका लोण शोभिका की पुत्री गणिका वसुने सभा भवन, देविकुल, प्याऊ और शिलापट की स्थापना की । इसमें अर्हत वर्धमान को अभिवादन किया गया है । देविकुल शब्द विवादास्पद है । लेख में इसे शिलापट कहा गया है ।

४८.३४२६—इस आयागपट का आधे से अधिक भाग सुरक्षित है । केन्द्र में ऊँचे आसन पर ध्यान मुद्रा में तीर्थंकर की आकृति है जिसके दोनों ओर उपासक भी हैं । तत्पश्चात मकर युग्म और पुष्प की शोभा पट्टी है । इसके पश्चात हाथ जोड़े या माला लिए गन्धर्व युगल है और बीच में चैत्य वृक्ष, त्रिरत्न चिन्ह हैं । ऊपर दो कोनों में भारवाही आवक्ष मानव आकृतियां हैं ।

१५.५६९—यह आयागपट्ट का खण्डित भाग है जिसमें एक पट्टी में सपक्ष सिंह और दूसरी में हाथी की सूंड़ और टांगें हैं । बीच में चक्र के होने का अनुमान है । (प्राप्ति स्थान : कंकाली टीला, मथुरा)

३३.२३१३—यह भी आयाग पट्ट का भग्नावशेष है । अभिलेख में इसे अरहत की पूजा के निमित्त शिलापट बताया है ।

३५.२५६३—इस अवशेष की विशेषता है कि इसमें संवत् २१ उत्कीर्ण है । यह कौन सा संवत् है इसका

ठीक अनुमान लगाना कठिन है। यदि कुषाण संवत् मानें तो यह समय ९९ ई० आता है जो आयागपट्ट की परम्परा को बहुत बाद तक प्रचलित सिद्ध करता है। (प्राप्ति स्थान : कठौती कुआ निकट मेंस बहोरा, मथुरा)।

सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएं—संग्रहालय में कुछ ऐसी प्रतिमाएं हैं जो चौकोर स्तम्भ के समान हैं और उनमें चारों ओर तपस्या में तीन-चार जिन आकृतियां बनी हैं। इस प्रकार की मुद्रा दण्ड या कायोत्सर्ग नाम से प्रसिद्ध है। मूर्तियों को सर्वतोभद्र, सर्वतोमंगल या लोक भाषा में चौमुखी कहते हैं। इनमें प्रदर्शित तीर्थंकरों में से आदिनाथ को कन्धों तक लटकती जटाओं से और सुपार्श्व या पार्श्वनाथ कों सर्पफण की छतरी से पहचाना जा सकता है। अन्य दो कौन हैं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, किन्तु अनुमान है कि इनमें से एक वर्धमान या महावीर अवश्य होने चाहिएं क्योंकि प्राप्त अभिलिखित मूर्तियों से ज्ञात होता है कि भगवान् महावीर ब्रज में अधिक लोक प्रिय थे। चौथे के बारे में अनुमान लगाना कठिन है। सभी के वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न अंकित रहता है। नीचे उपासकों में कुछ उदीच्य वेष में बटनदार लम्बा कोट और जूते पहने हुए भी हैं (बी० ६७)। संभव है ये जैनधर्म के अनुयायी शक पुरुष हों। ऐसी मूर्तियों के ऊपर गोल अथवा चौकोर छेद रहता है और नीचे खूंटी निकली रहती है जिससे यह प्रकट है कि ये किसी वास्तु स्तूप, चैत्य या देवालय का भाग थीं और इन्हें इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता था कि भक्त जन इनका चारों ओर से दर्शन और परिक्रमा कर सकें। चौमुखी मूर्तियों में सबसे प्राचीन है मूर्ति बी० ७१ जिसके अभिलेख के अनुसार सं० ५ में इसकी प्रतिष्ठा हुई। यह समय ८३ ई० आता है।[११] संग्रहालय की मूर्ति सं० बी० ६७, बी० ६८, बी० ७२ और ४५.३२०९ भी उल्लेखनीय है। मूर्ति सं० १२.२७६ चौमुखी का अधोभाग है जिसके अभिलेख से ज्ञात होता है कि इसे ऋषिदास की प्रेरणा पर अभिसारिक के भट्टिदाम ने स्थापित कराया। अभिसारक को पेशावर के पास हजारा बताया है। अनुमान है कि मट्टिदामन् कोई विदेशी था जिसने मथुरा आकर जैन धर्म स्वीकार किया। यह मूर्ति खण्ड भूतेश्वर से मिला।

तीर्थंकर—मथुरा जैसे विशाल कला केन्द्र और प्रसिद्ध जैन स्थल में प्रायः सभी तीर्थंकरों की उपासना होती होंगी और उनकी मूर्तियां स्थापित हुई होंगी। किन्तु जैसा कि संकेत दिया जा चुका है चिह्न अथवा अभिलेख के अभाव में यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि वे समस्त मूतियां किस-किस का प्रतिनिधित्व करती हैं तथापि चरण चौकियों के लेख हमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ, पांचवे तीर्थंकर सुमतिनाथ तथा २४वें तीर्थंकर वर्धमान महावीर का परिचय देते हैं। वर्धमान का उल्लेख अधिक है। इनके अतिरिक्त सातवें तीर्थंकर सुपार्श्व और तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ को सर्वफणों की छतरी और २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ को बलराम तथा कृष्ण की आकृतियों के साथ पहचान संकते हैं। मथुरा संग्रहालय की निश्चित संवत् से अंकित प्रतिमाओं में कुषाण संवत् ५ (८३ ई०) की चौमुखी मूर्ति बी० ७१ सबसे प्राचीन है। सामान्य जिन प्रतिमाओं में प्राचीन है कनिष्क के संवत् १७ अर्थात् ९५ ई० की चरण चौकी (सं० ५८.३३८५) और सबसे बाद की है संवत् ९२ अर्थात् १७० ई० की वासुदेव के शासनकाल की।

संवत् सहित जिन प्रतिमाएं—४८.३३८५-यह जिन प्रतिमा की चौकी है जिसमें बने चरणों से आभास मिलता है कि मूर्ति खड़ी होगी। बीच में धर्मचक्र बना है जिसके एक ओर बाएं हाथ पर वस्त्र खण्ड लिए जैन मुनि है। इसके पीछे तीन पुरुष उपासक हैं। अन्तिम व्यक्ति परिधान से शक प्रतीत होता है। चक्र के दूसरी ओर तीन महिला उपासिकाएं माला और पुष्प लिए हैं। अभिलेख का भाव है कि देवपुत्र शाहि कनिष्क के १७वें वर्ष के शीत ऋतु के दूसरे महीने के २५वें दिन कोट्टियगण की बईरा शाखा के सांतिनिक कुल की कौशिकी गृहरक्षिता की प्रेरणा पर इस प्रतिमा की स्थापना हुई (प्राप्ति स्थान : चौबिया पाड़ा मथुरा)।

१४.३९६—जिन चरणचौकी का भाग जिसके अभिलेख से सूचना मिलती है कि यह कनिष्क के समय स्थापित हुई (प्राप्ति स्थान : कंकाली टीला, मथुरा)।

१९.१५६५—यह भी चरणचौकी का भाग है जो सं० ३३ (१११ ई०) का है। यह हुविष्क का समय था (प्राप्ति स्थान : मुहल्ला रानीपुरा, मथुरा)।

बी० २९—चरणचौकी जिस पर ध्यानस्थ जिन की टांगें भी हैं। नीचे धर्मचक्र और उपासक हैं। अभिलेख से सूचना मिलती है कि सं० ५० में महाराज देवपुत्र हुविष्क अर्थात् १२८ ई० में इसकी स्थापना हुई।

४५.३२०८—जिन चरणचौकी का आधार जिसमें धर्मचक्र और उपासक हैं। यह संवत् ८२ (१६० ई०) की है जो वासुदेव के राज्य का है। इसमें तीर्थंकर का नाम वर्धमान दिया है।

बी० २—यह ध्यान भाव में बैठे जिन की प्रतिमा है, सिर और बायां हाथ लुप्त है। वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न है। हथेली और पैरों के तलवों पर भी शोभा लक्षण बने हैं। नीचे अभिलेख से ज्ञात होता है कि महाराज वासुदेव के राज्यकाल में सं० ८३ अर्थात् १६१ ई० में जिनदासी ने इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराई। जिनदासी सेन की पुत्री, दत्त की पुत्रबधू और गन्धी व्य······च की पत्नी थी। (प्रांप्ति स्थान : संभवतः कंकाली टीला, मथुरा)

बी० ३—यह प्रतिमा भी लगभग पूर्वोक्त की भांति ही है और संवत् भी वही है। (प्राप्ति स्थान : संभवतः कंकाली टीला, मथुरा)।

बी० ४—यह मूर्ति महत्वपूर्ण इसलिए है कि इसमें तीर्थंकर का नाम ऋषभनाथ दिया है। तीर्थंकर ध्यान भाव में आसीन हैं, सिर और भुजा लुप्त है, हस्तिनख प्रणाली से उत्कीर्ण प्रभामण्डल का कुछ भाग शेष है। वक्ष पर श्री वत्स का चिह्न है तथा हथेली और तलवों पर महापुरुष लक्षण सुशोभित हैं। चरणचौकी पर धर्मचक्र और १० पुरुष व स्त्री उपासक हैं। लेख के अनुसार भगवान् अर्हत ऋाषभदेव की इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा महाराज राजाधिराज देवपुत्र शाही वासुदेव के राज्यकाल सं० ८४ अर्थात् १६२ ई० में कुमारदत्त की प्रेरणा से भटदत्त उगभिनक की पुत्रवधू····· ने कराई। (प्राप्ति स्थान : बलभद्र कुण्ड, मथुरा)।

१४.४९०—यह मूर्ति वर्धमान् महावीर की है किन्तु केवल अवशिष्ट टांगों और पैरों से ध्यान भाव का भान होता है। नीचे चौकी पर धर्मचक्र और उपासक हैं। अभिलेख के अनुसार वर्धमान की यह प्रतिमा कोट्टिय गण के धरवृद्धि और सत्यसेन के परामर्श पर दमित की पुत्री ओखारिका ने सं० ८४ (१६२ ई०) में प्रतिष्ठित कराई। मूर्ति का महत्व तीर्थंकर के नाम से बढ़ जाता। ओखारिका नाम भी उल्लेखनीय है जो सं० २९९ की एक अन्य मूर्ति में भी मिलता है। इस पर विद्वानों ने अनेक मत व्यक्त किये हैं [१२] (प्राप्ति स्थान : कंकाली टीला, मथुरा)

बी० ५—ध्यानस्थ सिर तथा बाहुविहीन तीर्थंकर जो सिंहासन पर पूर्वोक्त प्रतिमाओं के समान विराजमान है। इसे सं० ९० (१६८ ई०) में दिन की बधु कुटुम्बिनी ने कोट्टिय गण के पवहक कुल की मझम शाखा के सैनिक भट्टिबल की प्रेरणा से स्थापित किया। यह वासुदेव का राज्यकाल था। (प्राप्ति स्थान : मथुरा)

४६.३२२३—संवत् ९२ अर्थात् १७० ई० में स्थापित वर्धमान् महावीर की मूर्ति का यह भग्नांश है जिस पर धर्मचक्र और उपसकों की आकृतियां बनी हैं। अभिलेख अपूर्ण है। यह वासुदेव का शासन काल था क्योंकि उसके समय के संवत् ९८ (१७६ ई०) तक की जानकारी हमें अन्य अभिलेख से मिलती है (प्राप्ति स्थान: मोक्ष गली, मथुरा)।

संवत् रहित अभिलिखित जिन प्रतिमाएं—संवत् तथा तिथि से अंकित इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य तीर्थंकर प्रतिमाएं भी महत्वपूर्ण हैं और इनमें से कुछ में तीर्थंकरों के नाम भी दिए हैं।

४७.३३३३—यह चरण चौकी का अंश मात्र है जिसमें सिंहासन के शेर का मुख और एक महिला उपासिका का मुख है। लेख से सूचना मिलती है कि सोमगुप्त की पुत्री (?) मित्रा ने भगवान सुमतिनाथ की मूर्ति स्थापित की। इस प्रकार ५वें तीर्थंकर सुमतिनाथ की मथुरा में उपासना का एक प्रबल प्रमाण मिल जाता है। संवत् स्पष्ट

नहीं है लेकिन जो पढ़ा जा सका है उससे सं० ८४ की संभावना अधिक है। (प्राप्ति स्थान : कटरा केशव देव, मथुरा)।

बी० १८—वर्धमान की छोटी प्रतिमा जिसमें वह सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में आसीन है, केवल टांगें और हाथ अवशिष्ट हैं। स्तम्भ पर रखे धर्मचक्र की दो पुरुष और दो महिला उपासक पूजा कर रहे हैं और नीचे उत्कीर्ण लेख के अनुसार कोट्टिय गण और बच्छलिक कुल के चोड ने ऋषिदास के साथ वर्धमान् की प्रतिमा स्थापित की। (प्राप्ति स्थान : माता मठ, होली दरवाजा, मथुरा)

वच्छलिज्ज कुल का उल्लेख कंकाली से प्राप्त अन्य जैन अभिलेख में भी हुआ है। यह अब लखनऊ संग्रहालय में है।

३२.२१२६—यह भी तीर्थंकर प्रतिमा की चरणचौकी का अंश मात्र है जिस पर चार पंक्तियों का छोटा अभिलेख है। इसके अनुसार वर्धमान की इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा दल की पत्नी, धर्मदेव की पुत्री ने भवदेव के लिए कराई (प्राप्ति स्थान : यमुना, मथुरा)।

अन्य जिन प्रतिमाएं—कुछ ऐसी भी तीर्थंकर प्रतिमाएं हैं जिसमें न तो संवत् या शासक का नाम है और न तीर्थंकर का ही नाम है, फिर भी कला और मूर्ति शास्त्र की दृष्टि से उनका स्वतन्त्र महत्व है।

बी० १२—पद्मासन में ध्यान भाव में आसीन शिरविहीन जिन प्रतिमा। चरणचौकी सिंहासन का रूप लिए है जिस पर पुरुष, स्त्री और बाल उपासक हैं। इसी से मिलती-जुलती प्रतिमा बी० ६३ है।

बी० ३७—यह तीर्थंकर की आवक्ष प्रतिमा है। प्रभामण्डल के चिह्न नहीं हैं। शिर पर छोटे घुंघराले बाल हैं।

१५.४८८—यह भी तीर्थंकर की आवक्ष प्रतिमा है। प्रभामण्डल का जो भाग अवशिष्ट है उससे ज्ञात होता है कि यह पर्याप्त विकसित था जिसमें हस्तिनख प्रणाली के अतिरिक्त पूर्ण कमल और एकावली भी है अतः इसे कुषाण और गुप्त काल के बीच का माना जा सकता है।

बी० ३२—सिर तथा पैर विहीन तीर्थंकर की खड़ी प्रतिमा जिसमें नीचे चंवर लिये दो पार्श्वचर भी बने हैं। अन्य मूर्ति बी० ३५ भी इसी प्रकार की है किन्तु पार्श्वचर नहीं हैं।

बी० ६२—सर्पफणों से आच्छादित पट्ट २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की आवक्ष प्रतिमा है। प्रत्येक सर्पफण पर भिन्न शोभा प्रतीकों का अंकन इसकी मुख्य विशेषता है ये चिह्न हैं। स्वस्तिक, शराव सम्पुट, श्रीवत्स, त्रिरत्न, पूर्णघट तथा मीन मिथुन।

नेमिनाथ—यह स्पष्ट किया जा चुका है कि २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ को श्रीकृष्ण के ताऊ समुद्रविजय का पुत्र माना जाता है और इस जैन परम्परा का अंकन कुषाण काल से ही मिलता है। संग्रहालय में कुछ ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें नेमिनाथ बीच में ध्यान भाव में आसीन हैं और उनके एक ओर सर्पफणों की छतरी से युक्त बलराम और दूसरी ओर कृष्ण खड़े हैं। कालान्तर में तो बलराम के आयुध और मुद्राएं और भी स्पष्ट हो गए हैं। कुषाण युगीन एक प्रतिमा (३४.२४८८) में ध्यान मुद्रा में आसीन जिन के मस्तक के पीछे हस्तिनख प्रणाली का प्रभा मण्डल है। मूर्ति के दाहिनी ओर सर्पफणों से युक्त बलराम हैं और बाईं ओर मुकुट पहने श्रीकृष्ण, ऊपर एक कोने पर मालाधारी गन्धर्व है। अन्य मूर्ति (३४.२५०२) में मध्य में आवक्ष नेमिनाथ के दाहिनी ओर सात सर्पफणधारी चर्तुभुजी बलराम हैं जिनके ऊपर के बाएं हाथ में हल है जो बलराम की मुख्य पहचान है। बाईं ओर श्रीकृष्ण को विष्णु रूप में दिखाया है जिनके चार भुजा हैं, ऊपर के दाहिने हाथ में लम्बी गदा है, एक बाएं हाथ में चक्र है, अन्य दो हाथ अप्राप्य हैं। ऊपर दोनों कोनों में उड़ते विद्याधर हैं। यह प्रतिमा कुषाण काल के अन्त और गुप्त युग के आरम्भ की प्रतीत होती है।
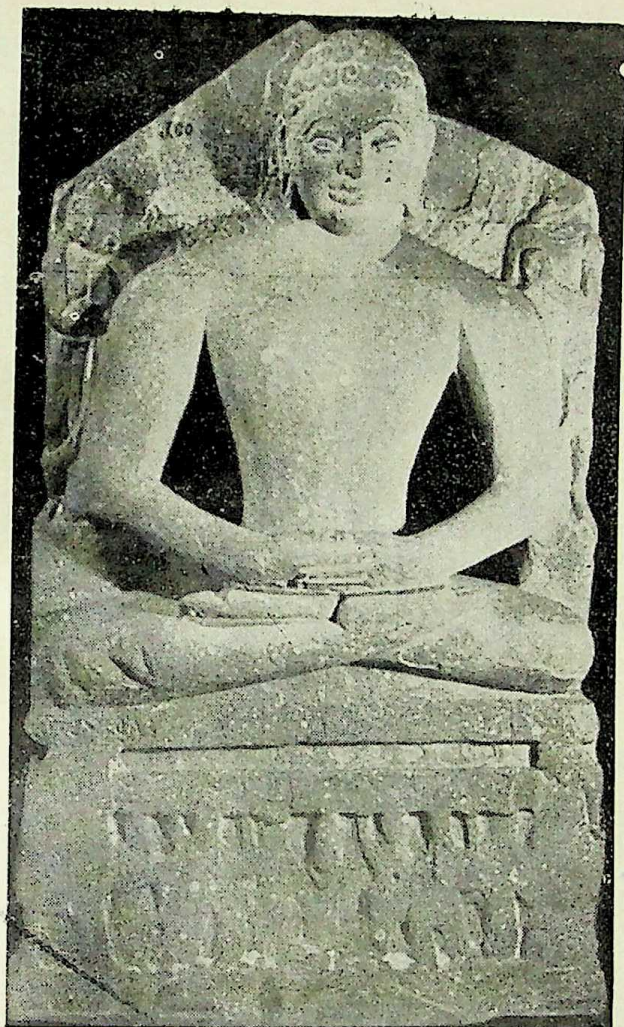
५३—कृष्ण-बलराम सहित नेमिनाथ, कंकाली टीला मथुरा
(रा० सं० लखनऊ)

५४—तीर्थङ्कर नेमिनाथ के पार्श्व में कृष्ण एवं बलराम, कंकाली टीला मथुरा
(रा० सं० लखनऊ)

नैगमेश प्रतिमाएं—अजमुखी मानव आकृतियां कुषाण काल में लोकप्रिय थीं। जैन परम्परा में ये नेगमेश का प्रतिनिधित्व करती हैं जो बच्चों के रक्षक देवता हैं और शिशु जन्म से इनका अधिक सम्बन्ध था। इनके साथ कुछ बच्चे भी बनाए जाते हैं। संग्रहालय की मूर्तियाँ ई० १,१५,१११५, ३४.२४८२ और ३४.२५४७ उल्लेखनीय हैं।

संग्रहालय में कुषाणकालीन अनेक जैन प्रतिमाओं के मस्तक भी सुरक्षित हैं।[१३]

१—अगरचन्द नाहटा संदर्भ–, ब्रज भारती वर्ष ११ सं० २

२—Dr. J. P. Jain, The Jain a Sources of the History of Ancient India, ch. VI

३—ब्रजभारती वर्ष १२ अंक २ पृ० १८-१९

४—Tho Jain Stup a and other antipuities of Mathura, 1901, Introduction l.e. 1

५—डा० हीरा लाल जैन, भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ० ३४२

६—विभिन्न विद्वानों के संक्षिप्त विचार के लिए लेखक का निबन्ध 'Early phase of Jain Iconography', Chhote Lal Commemoration Vol. Cal. p. 59-60 देखें

७—R. C. Sharma, Mathura Museum Introductinn l.e. 25

८—कंकाली पर विस्तृत लेख के लिए लेखक की पुस्तिका 'मथुरा का जैन तीर्थ कंकाली' देखें

९—रविषेणाचार्य कृत पद्म पुराण ३। २८८, सन्दर्भ ५ पृ० ३४४

१०—पार्श्वनाथ की धरणेन्द्र नाग द्वारा सेवा समन्तभद्र के स्वयंभूस्तोत्र में इंगित है, सन्दर्भ ५ पृ० ३४४

११—कुषाण संवत् के बारे में मतैक्य नहीं है। रोजन फील्ड इस मूर्ति को दूसरी कोटि में रखते हैं जिसमें दूसरा कुषाण संवत् प्रयुक्त है The Dynastic Art of the Kushanas, पृ० २७०–७१

१२—R. C. Sharma, Jain sculptures of the Gupta Age in the State Museum, Lucknow, Mahavir Jain Vidyalaya Bombay Golden Jubilee Volume Part I P. 146

१३—संग्रहालय में १९४० से पूर्व तक अधिग्रहीत जैन प्रतिमाएं डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के J. U. P. H. S. 1950 में प्रकाशित सूची पत्र में दी हैं।

—:o:—
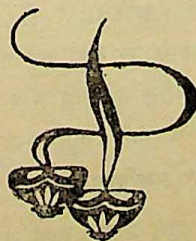
उत्तर भारत के तीन प्राचीन तीर्थ

—मुनि जयानन्द विजय

युग-युगों से आर्य, धर्मानुष्ठानों में जागरुक रहे हैं, अनार्य नहीं । अनार्यों ने जिसे उखाड़ा है, आर्यों ने उसे बसाया है । यहां बस जाने के कारण शायद यह भारत आर्यावर्त के नाम से इतिहास में अभिहित हुआ हो । आर्य सभी जातियों के साथ हिलमिल कर चलते थे तभी आज यह आर्यावर्त अनेक धर्मों का स्थान बना हुआ है । पवित्र पूजनीय स्थानों का, तीर्थों का केन्द्र बना हुआ है । तीर्थ दो विभागों में विभक्त है—पहला स्थावर तीर्थ तथा दूसरा जंगम तीर्थ । सर्व प्रथम तीर्थ जंगम होते थे, उनकी अनुपस्थिति में स्थावर तीर्थों का निर्माण हुआ, जिसमें उत्तर भारत भी अछूता न रहा ।

बाराणसी

वैदिक साहित्य के कथनानुसार वारणा और असि नदी के बीच में महर्षि भरद्वाज की प्रेरणा से महाराजा दिवोदास ने वाराणसी की स्थापना की । तत्पश्चात यह नगरी संस्कृति की सुप्रतिष्ठित स्थली बनी । इस नगरी में श्रमण संस्कृति एवं वैदिक संस्कृति का वर्चस्व युग-युगों तक रहा । फिर गंगा नदी भारत की पूण्यतोया सरिता मानी गई । उसका महात्म्य किस से अज्ञात रहा है । इसी धरा पर श्री पार्श्वनाथ स्वामी के तीन (च्यवन, जन्म तथा दीक्षा) कल्याणक हुए थे । श्रमण भगवान श्री महावीर के समान काशीनरेश महाराजा अश्वसेन की महारानी बामा देवी के नन्द श्री पार्श्व कुमार का यौवनकाल संदिग्ध है । उभय के पाणिग्रहण की विडम्बनाएँ परम्पराओं में विकीर्ण हैं, परम्परा अर्थात प्रमणा । भगवान के जीवन चित्रण करने वाले अक्षर चञ्चु उनकी जीवन घटनाओं से अपरिचित थे या भावावेग के कारण वह घटनाएँ उनसे अछूती रह गईं, अथवा लोक प्रवाद में प्रचलित लोक कथाओं का चित्रण किया गया हो, तथा लिखने के बाद उसे पुनः देख न पाये हों ? कालान्तर में वही उन्हीं को बांट कर बैठ गये । भगवान बटें नहीं, भगवान का जीवन बट गया । बिना साहित्य के आज दिन कोई बंटा नहीं साहित्य परम्पराओं के अंकुर को समाये बैठा है । चरित्रों में श्री पार्श्वकुमार को विवाहित माना गया है । पाणि-ग्रहण के लिए कुशलस्थल (कन्नौज) प्रदेश में जाने पर वहाँ कलिंगादि देशों के यवनों ने संघर्ष की ठानी । राजकुमार पार्श्व की ललकार के समक्ष सभी यवन विनीत हो गये और परस्पर मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया । इत्यादि घटनाएँ चरित्रों में उल्लिखित हैं परन्तु मूल में तो इन्हें कुमार नाम से पाया जाता है । राज्य भार वहन न करने पर इन्हें कुमार मान लिया गया हो तो यह बात असंदिग्ध है ।

कुमाराणामराजभावेन वास कुमार वास ।।

—स्थाणाङ्गसूत्र ठाणा ५ उद्देश्य ३

कौशाम्बी

आचार्य पर्दलिप्त सूरि ने अपनी "तरंगवती" कथा में कौशाम्बी के प्राकृतिक प्रकरणों का एवं सांस्कृतिक सुषमाओं का जो दिग्दर्शन किया है वह खूब ही हृदयग्राही है। धर्म और वैभव से समृद्ध इस नगरी में जो श्रमण संस्कृति का अलौकिक वर्णन चित्रित किया है वह कथनातीत है। प्रागैतिहासिक काल में कौशाम्बी वत्स देश की राजधानी मानी जाती थी परन्तु समयानुसार सीमा विभाजन के कारण अधुना उत्तर प्रदेश में मानी जाती है। कौशाम्बी इलाहाबाद से दक्षिण और पश्चिम में इकत्तीस मील की दूरी पर कोसम नाम से बसी हुई है। कौशाम्बी शाखा की उत्पत्ति इसी स्थान से हुई। श्रमण भगवान, महावीर के छद्मस्थ बेला में सूर्य-चन्द्र मूल विमान में दर्शनार्थ आये। श्री शीतलनाथ स्वामी के तीर्थकाल में हरिवंश की उत्पत्ति, एवं पांच मास पचीस दिन के अनशन का पारणा श्री महावीर स्वामी का धनदत्त सेठ के घर पर रही हुई चन्दना दासी के हाथ से इसी नगरी में सम्पन्न हुआ।

हस्तिनापुर

इन्द्रप्रस्थ-हस्तिनापुर—यह हस्तिनापुर के भौगौलिक राजनैतिक अभिधान क्रमों का क्रमिक संस्थान है। पाण्डवों के पूर्ववर्ती राजा महाराजाओं का हस्तिपुर से गाढ सम्बन्ध रहा है। जिन सम्बन्धों में भगवान श्री ऋषभ देव का आगमन एक धर्ममय इतिहास की श्रद्धेय घटना है। भगवान श्री ऋषभदेव स्वामीजी का श्रेयांस के हाथों से वार्षिक तप का पारणा होना। वह दिन आज भी अक्षय तृतीया के नाम से समाज प्रतिष्ठित है, तथा श्री शान्ति नाथ जी, श्री कुन्थुनाथ जी एवं श्री अरनाथ जी के चार (च्यवन, जन्म, दीक्षा तथा केवलज्ञान) कल्याणक इसी नगरी में हुये।

●

स्वतन्त्रता संग्राम में उत्तर प्रदेश के जैनों का योगदान

—बा० रतनलाल जैन, वकील बिजनौर

महात्मा गांधी ने भारतवर्षीय कांग्रेस की बागडोर सन १९१८ में सम्भाली। उनके नेतृत्व में अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन ने सन् १९२० में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध अहिंसात्मक सत्याग्रह करने का निश्चय किया। सन १९२१ में चौरीचौरा में सत्याग्रह का हिंसा का रूप धारण कर लेने पर सत्याग्रह को रोक दिया। सन १९३० में नमक सत्याग्रह को सफलतापूर्वक चलाया जिसके फलस्वरूप मार्च १९३१ में गांधी-इरविन पैक्ट हुआ। सन १९३२ में अंग्रेजी शासन ने सत्याग्रहियों को कुचलने की दृष्टि से कांग्रेसियों की धर पकड़ व घर में बन्द रहने के आदेश जारी किये। कांग्रेसियों ने सत्याग्रह जारी किया जो सन १९३६तक चलता रहा।

महात्मा गांधी ने १९४० में वैयक्तिक व १९४२ में **'भारत छोड़ो'** सत्याग्रह चलाये।

जैन समाज यद्यपि संख्या में कम है परन्तु वह एक प्रभावशाली व्यापारिक समाज भारतवर्ष व उत्तर प्रदेश में है। उसने खुलकर पूरे उत्साह के साथ स्वतन्त्रता संग्राम में भाग भारतवर्ष व उत्तर प्रदेश में लिया।

उदाहरण के तौर पर उत्तर प्रदेश का बिजनौर जनपद लीजिए। उसकी जनसंख्या सत्याग्रहों के समय १० लाख थी और जैन समाज की केवल डेढ़ हजार थी। बिजनौर जनपद में कारावास जाने वाले लगभग १ हजार थे जो अनुपात से १ हजार में एक आता है। जबकि जैन सत्याग्रहियों की संख्या लगभग २५ थी जो अनुपात से १ हजार में १६ आते हैं।

बिजनौर जनपद के सत्याग्रहों का संचालन करने वाले श्री रतन लाल जैन व श्री नेमिशरण जैन थे जिन्होंने वकालत छोड़कर कांग्रेस के कार्य को संभाला था।

उसी प्रकार निकटवर्ती मेरठ मंडल के सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ आदि के जैनों ने—जहाँ वे काफी संख्या में हैं—पूरे उत्साह से भाग लिया। सहारनपुर के श्री अजितप्रसाद जैन (जो केन्द्रीय मंत्री रहे), मुजफ्फरनगर के श्री सुमतप्रसाद जैन मुख्य संचालक अपने-अपने जिलों के रहे। इन जनपदों में जैन बड़ी संख्या में सत्याग्रह में भाग लेकर कारावास गये। यही दशा आगरा मंडल की है। उस मंडल में भी जैन काफी संख्या में सत्याग्रह में भाग लेकर कारावास गये। प्रमुख सत्याग्रहियों में सेठ अचलसिंह जैन एम०पी० का नाम विशेष उल्लेखनीय है। बुन्देलखंड के ललितपुर जनपद, कानपुर, बनारस आदि नगरों में भी जैनों ने काफी भाग लिया। बनारस में श्रीखुशालचन्द गोरावाले का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

महात्मा गांधी ने जिनको इंग्लैंड जाते हुये उनकी माता ने एक जैन साधु के द्वारा मांस व मदिरा के प्रयोग न करने के नियम दिलाये थे—जिनके कारण गांधी जी के जीवन में क्रान्ति हुई और पाश्चात्य सस्कृति थोथी व हेय दीखने लगी—अहिंसात्मक सत्याग्रह का अविष्कार किया। अहिंसात्मक सत्याग्रह अब तक धार्मिक क्षेत्र में सीमित था। खासकर साधु जीवन में तपस्या करते हुये उन पर जब मनुष्य या पशु द्वारा आक्रमण होता था, उसका शन्ति पूर्वक, मन को बिना विचलित हुये सहन करते थे, जिसमें कभी-कभी प्राण भी देने पड़ते थे। जैन धर्म के द्वारा अहिंसा सिद्धांत से प्रेरित होकर गांधीजी ने अहिंसात्मक सत्याग्रह राजनैतिक क्षेत्र में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध सफलता पूर्वक चलाया। अहिंसात्मक सत्याग्रह आध्यात्मिक अस्त्र है। उसके प्रयोग से भारत जनता, जो कितनी ही शताब्दियों से दूसरों के आधीन रही थी और जो डरपोक व साहसहीन हो गई थी, उसमें उस सत्याग्रह से जीवन व आत्म स्फूर्ति आ गई। आत्म विश्वास के साथ अंग्रेजी शासन का वीरता के साथ मुकाबला किया।

जैन समाज जो कभी भारत का मुख्य समाज रही है, जिसने भारतीय संस्कृति को अपने अहिंसा व अनेकान्त सिद्धांतों पर आधारित भावनाओं से प्रभावित किया, जिसके कारण भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न धर्मानुयायी व जातियां एक साथ प्रेमपूर्वक रहती हैं और अपने-अपने इष्टदेवों की उपासना अपने ढंग से करती हैं, इस प्रेमपूर्वक साथ-साथ रहने का श्रेय जैन समाज को है।

जैन समाज जिसका ह्रास मुसलिम शासन के मारकाट युग में बड़ी तेजी से हुआ, जैन क्षत्रीय जो लाखों की संख्या में थे, मांसाहारी बनकर साधारण हिन्दु समाज में मिल गये। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही जैन समाज में उत्थान की भावना उत्पन्न हुई। महात्मा गांधी के अहिंसात्मक सत्याग्रह ने जैन समाज में निर्भीकता, आत्म विश्वास की भावना जागृत की जिस कारण भा०दि० जैन परिषद ने अन्तंजातीय विवाह, दस्से जैनों को पूजा के अधिकार, श्रद्धायुक्त हरिजनों का मंदिर प्रवेश आदि प्रस्तावों के पास करने व कार्यान्वित करने से जैन सामाज में नया जीवन व स्फूर्ति उत्पन्न कर दी।

द्वादशांगवाणी विमल, चतुरानुयोग आधार ।
आत्मदीप ज्योति अमल, ज्ञान प्रकाशन सार ।।

ज्योति निकुंज
चारबाग, लखनऊ—१
म० नि० स० २५०२ (१९७६ ई०)